

सम्पदा



गुरुदत्त



गुरुदत्त (1894-1989) शिक्षा : एम. एस-सी.

8 दिसम्बर, 1894 को लाहौर (अब पाकिस्तान) में जन्मे श्री गुरुदत्त हिन्दी साहित्य के एक दैदीप्यमान नक्षत्र थे। प्रथम उपन्यास 'स्वाधीनता के पथ पर' से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं। विज्ञान की पृष्ठभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये। वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है। साहित्य के माध्यम से वेद-ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाने का उनका प्रयास निस्सन्देह सराहनीय रहा है।

वह उपन्यास-जगत के बेताज बादशाह थे। अपनी अनूठी साधना के बल पर उन्होंने लगभग दो सौ से अधिक उपन्यासों की रचना की और भारतीय संस्कृति का सरल एवं बोधगम्य भाषा में विवेचन किया। उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नही जा सकता।

श्री गुरुदत्त के साहित्य को पढ़कर भारत की कोटि-कोटि जनता ने सम्मान का जीवन जीना सीखा है। उनके सभी उपन्यासों के कथानक अत्यन्त रोचक, भाषा अत्यन्त सरल और उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं, अपितु जन-शिक्षा भी है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के साहित्य-संस्कृति संगठन 'यूनेस्को' के अनुसार श्री गुरुदत्त हिन्दी भाषा के सर्वाधिक पढ़े जाने वाले लेखक रहे।

प्रकाशकः
सत्यबोध
(इंप्रिन्ट ऑफ नीलम जासूस कार्यालय)
40, ज्योति अपार्टमेण्ट्स, सेक्टर -14 विस्तार,
रोहिणी, दिल्ली-110085
Ph.: 9311377466 | 8595667924
E-mail: neelamjasoos@gmail.com

प्रथम संस्करणः 2021
ISBN: 978-93-91411-61-9

आवरणः गगन शर्मा
मूल्यः 250 रुपये

मुद्रकः
सुबोध भारतीय ग्राफ़िक्स, दिल्ली
Ph.: 9310032466

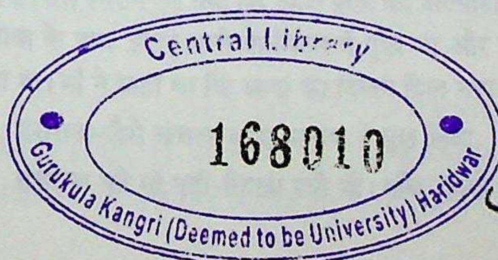
हमारी सभी पुस्तकें निम्न वेबसाइट्स पर उपलब्ध हैं:
www.neelamjasoos.com
www.amazon.in
www.flipkart.in

Sampada (Fiction) by Gurudutt


सत्यबोध
उत्कृष्ट साहित्य प्रकाशन

सम्पदा


081
168010


Central Library
168010
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar



प्रथम परिच्छेद

::1::

'बाबा! हँस किसलिये रहे हो?'

'इसीलिए कि तुम आकर मुझसे पूछो कि मैं ऐसा क्यों कर रहा हूँ?'

बाबा-पोते में वार्तालाप हो रहा था। पोता हंसराज, बाबा धनपतराय के गले में बाँहें डाले हँसते हुए बाबा से पूछ रहा था। धनपतराय पैंसठ वर्ष की आयु का वृद्ध और उसका पोता हंसराज चार वर्ष की वयस का बालक। बालक माँ के कमरे से निकला था कि उसे घर के प्राँगण में तख़्तपोश पर बैठा धनपतराय हँसता दिखायी दिया। बाबा पहले भी हँसता रहता था। उसका इस प्रकार हँसना हंसराज को विचित्र प्रतीत होता था और उसे स्मरण था कि उसने पहले भी कई बार बाबा से यही प्रश्न किया था और बाबा ने उसे यही उत्तर दिया था। परन्तु हंसराज की बाल-बुद्धि को भी यह कोई कारण प्रतीत नहीं होता था कि कोई केवल इसलिये हँसे कि पूछने वाला उससे इस विषय में पूछेगा।

तदपि इच्छा होने पर भी हंसराज अपने संशय का निवारण करने के लिये बात आगे चला नहीं सकता था। उसके शब्द-भण्डार में अपने मन की बात को व्यक्त करने के लिये उपयुक्त शब्द नहीं होते थे। वह चुप रह जाया करता था। आज उसने एक प्रश्न और कर दिया, 'पर क्यों?'

इस पर तो धनपतराय और भी ज़ोर से हँस पड़ा। इस हँसी पर हंसराज भी हँसने लगा। एकाएक हंसराज को प्रतीत हुआ कि वह व्यर्थ में हँस रहा है। इससे वह गम्भीर हो गया। उसे स्मरण आ गया कि आज प्रातः का अल्पाहार करते हुए उसने अपनी माँ से बाबा के प्रायः हँसते रहने के विषय में पूछा था और माँ ने उसे समझाने का यत्न किया था। माँ ने कहा था कि बाबा का दिमाग हिल गया है।

हंसराज-जैसे चंचल-बुद्धि बालक ने पूछ लिया, 'माँ, दिमाग क्या होता है?'

हंसराज की माँ पढ़ी-लिखी स्त्री थी। पाँच बच्चों की माँ थी और वह उनकी

देखभाल में बहुत व्यस्त रहती थी। इस पर भी अपने सबसे छोटे, परन्तु सबसे अधिक चंचल-बुद्धि बालक के इस प्रश्न को सुन, एक क्षण तक रुकी और फिर अपने लाड़ले प्रिय पुत्र को आग्रह करते देख, इस प्रकार का उत्तर दे बैठी थी। अब उसने बताया, 'दिमाग होता है जिससे मनुष्य विचारकर प्रश्न पूछता है।'

इतने मात्र से हंसराज को सन्तोष नहीं हो सका और उसने पूछ लिया, 'और यह कहाँ होता है?'

अब तो माँ का धीरज छूट गया। हंसराज से बड़ी लड़की स्नानागार से चिल्ला रही थी, 'माँ! आज यहाँ तौलिया नहीं। तौलिया दे जाओ।'

शकुन्तला को स्नान कर अल्पाहार कर स्कूल जाना था। इस कारण माँ ने हंसराज को कह दिया, 'इसका उत्तर तुम जब बड़े हो जाओगे तो स्वयं समझ सकोगे। अभी तुम्हारी उमर बहुत छोटी है।' इतना कह माँ ने खूँटी से तौलिया उतारा और शकुन्तला को देने चली गयी।

शकुन्तला और उसके तीनों बड़े भाई पढ़ने चले गये थे और वह तनिक दिल बहलाने के लिये घर से बाहर गाँव में जाने लगा तो उसकी दृष्टि बाबा पर जा पड़ी और वह अपने स्वभाव-वश हंसराज को देख हँस पड़ा।

हंसराज घर से बाहर जाने की अपेक्षा बाबा के पास जा पहुंचा और उसके गले में बाँहें डाल लाड़ करते हुए पूछने लगा था।

इस समय उसे माँ की बात स्मरण आ गयी। वह बाबा से कहने लगा, 'माँ तो कुछ और ही कहती थी।'

इस पर बाबा ने हँसते हुए पूछ लिया, 'क्या कहती थी?'

'कहती थी कि.....।' वह माँ के शब्दों को स्मरण करने का यत्न करने लगा। यत्न करने पर वह उलटा-सीधा याद कर बोला, 'माँ कहती थी कि बाबा का 'मिदाग' हिल गया है।'

'मिदाग' क्या होता है?'

'माँ कहती थी कि जब मैं बड़ा हो जाऊंगा तो बतायेंगी। और हाँ।' हंसराज को माँ की एक अन्य बात स्मरण हो आयी थी। उसने कहा, 'जिससे मनुष्य प्रश्न पूछते हैं।'

'तो तुम 'मिदाग' से प्रश्न पूछते हो?'

बाबा फिर हँसने लगा। किन्तु हंसराज नहीं हँसा। वह परेशानी अनुभव करने लगा। उसके छोटे-से मस्तिष्क के लिये एक बड़ी समस्या उत्पन्न हो गयी थी कि माँ से

कहे कि वह 'मिदाग' से प्रश्न नहीं पूछ रहा है। वह तो जानता था कि वह मुख से प्रश्न पूछ रहा है। इस कारण उसने मुख को हाथ लगाकर पूछ लिया, 'तो यह है मिदाग?'

बाबा ने पुनः हँसकर कहा, 'इसके भीतर है।'

अब हंसराज ने मुख चौड़ा कर और उसमें अँगुली डाल कर कहा, 'आ.....आ....।' मुख में अँगुली डालने से वह बोल नहीं सका तो अंगुली बाहर कर पूछने लगा, 'यहाँ?'

अब बाबा ने ध्यान से पोते की ओर देखते हुए कहा, 'हाँ। पूछने वाला वहाँ छिपा बैठा है।'

एकाएक बाबा ने बालक को समझाने के लिये हँसना बन्द करके उससे पूछा, 'वह तुम्हारा भौंपू कहाँ है?'

हंसराज ने पहले दिन कागज़ और नाड़े से बना 'भूं-भूं' आवाज़ करने वाला दस पैसे में एक बाजा खरीदा था और घण्टा-भर घर-भर में भूं-भूं बजाता हुआ फिरता रहा था। जब बजाता-बजाता थक गया तो उसे घर की बैठक में एक आलने में रख आया था। अब बाबा के उसकी याद दिलाने पर उसने पूछा, 'उसको लाऊँ?'

'हाँ।'

वह बाबा के गले से बाँह निकाल, तख्तपोश से उतर बैठकघर में गया और आलने से भौंपू उठा लाया। बाबा के सम्मुख आते ही उसने बजाना आरम्भ कर दिया।

बाबा ने उसे रोकते हुए कहा, 'ठहरो!'

हंसराज ने भौंपू बजाना बन्द कर बाबा के मुख पर देखा तो बाबा ने उसे तख्तपोश पर अपने समीप बैठाकर पूछा, 'यह भौंपू कौन बजा रहा है?'

'मैं बजा रहा हूँ।'

'मैं समझा था कि भौंपू अपने-आप ही बज रहा है।'

'नहीं बाबा!' हंसराज ने बाबा को समझाने के लिये एक बार बाजे को मुख से लगा ज़ोर-से बजा कर कहा, 'इसे तो मैं बजा रहा हूँ।'

'इसी प्रकार तुम्हारा मुख प्रश्न नहीं पूछता। उसके पीछे फूँक देने वाला पूछता है। मुख तो भौंपू की भाँति आवाज़ करता है।'

'हंसराज की समझ में कुछ ही आया। वह भौंपू और अपने मुख में अन्तर समझता था। यद्यपि उस अन्तर को वह शब्दों में व्यक्त नहीं कर सका। इस पर भी वह प्रसन्न था। आज उसे एक नयी बात का ज्ञान हुआ था कि बातें उसका मुख नहीं

करता। मुख के भीतर कोई अन्य है जो बातें करता है और मुख तो भौंपू की भाँति ध्वनि प्रकट करता है।'

बाबा ने बात बदल कर उससे पूछा, 'तुम्हें कल तुम्हारी माँ पीट रही थी?'

'हाँ, बाबा।'

'क्यों?'

हंसराज को पीटना तो स्मरण था, क्योंकि उससे उसे पीड़ा हुई थी, परन्तु कारण वह भूल गया था। उसने कह दिया, 'क्या जाने, माँ कभी-कभी पीटती रहती है।'

'तो तुम नहीं जानते, क्यों?'

'वह माँ है। माँ बच्चों को पीटा ही करती हैं।'

धनपतराय पुनः हँसा। हंसराज को माँ के पीटने से हुई पीड़ा स्मरण आ गयी थी। इस कारण वह हँसा नहीं और गम्भीर हो बाबा का मुख देखता रहा। इस पर बाबा को एक हँसी की बात सूझी, 'तुम्हारी माँ का भी 'मिदाग' हिल गया है।'

'कैसे?' हंसराज ने स्वभाव-वश पूछ लिया।

'जैसे मैं अकारण हँसा करता हूँ और वह कहती है कि मेरा मिदाग हिल गया है। तुम कह रहे हो कि वह भी अकारण पीटा करती है। मैं अकारण हँसता हूँ और वह अकारण पीटती है।'

हंसराज को यह तुलना ठीक प्रतीत नहीं हुई। क्योंकि पीटे जाने का कारण तो था, यद्यपि वह उसे भूल गया था, परन्तु बाबा के हँसने का कारण उसे ज्ञात नहीं था।

उसने कहा, 'बाबा, नहीं। माँ ने मुझे पीटा था क्योंकि......हाँ, मुझे याद आ गया है। मैंने शकुन्तला की पेंसिल से उसकी कापी पर कुछ लिखा था। माँ ने कहा था कि कापी खराब कर दी है। इस कारण दो चपत एक गाल पर और एक मुक्का पीठ पर मारा था। गाल पर बहुत पीड़ा हुई थी।'

'और देखो!' धनपतराय ने गम्भीर भाव में कहा, 'मुझे भी याद आ गया है कि मैं क्यों हँसता हूँ–मैंने अपनी ही स्लेट पर कुछ लिखा था। मेरी दादी माँ ने समझा कि मैंने किसी अन्य की स्लेट पर लिखकर गन्दी कर दी है तो उसने मेरी स्लेट छीन ली और एक चपत मेरे मुख पर लगा दी थी। तब से मैं हँसता हूँ।'

'पर मैं तो चपत खाकर रोया था।'

'रोया तो मैं भी था, परन्तु अब दादी माँ के अन्याय को स्मरण कर हँसता हूँ।'

'तो मुझे भी अब हँसना चाहिये।'

'तुम्हारी माँ ने तो ठीक ही पीटा था। तुमने कसूर किया था। मैंने कसूर नहीं किया था। वह स्लेट मेरी थी और मैंने जो कुछ लिखा था, वह बहुत सुन्दर था। वह यह मानती भी थी, किन्तु वह कहती थी कि मुझे लिखने का अधिकार नहीं। इस कारण मैं हँसता हूँ।'

यह बात हंसराज को समझ में नहीं आयी। वह यह नहीं समझ सका कि वह कसूर करने पर पीटा गया है तो उसे रोना चाहिये और बाबा बेकसूर पीटा गया तो उसे हँसना चाहिये।

बाबा ने बच्चे को बात न समझते हुए परेशान देखा तो कह दिया, 'तुम नहीं समझे न? सुनो, तुमने कसूर किया था। शकुन्तला की स्लेट पर गलत-मलत लकीरें खींची होंगी। यह कसूर था। तुम्हारी माँ ने पीटा। तुमको इस कारण रोना चाहिये जिससे कि तुम फिर ऐसी बात न करो। रोने से अपने किये पर पश्चात्ताप किया जाता है और मन-ही-मन कहा जाता है कि फिर ऐसा नहीं करूँगा।'

'परन्तु हंस! मेरी बात दूसरी थी। मैंने अपनी स्लेट पर लिखा था। दादी माँ की स्लेट नहीं थी। साथ ही मैं जानता हूँ कि मैंने स्लेट पर सुन्दर चित्र बनाया था। इस पर भी उसने स्लेट छीन ली और लिखने से मना करने के लिये पीटा। मुझे उसकी मूर्खता पर हँसी आती है। वह बेचारी नहीं जानती थी कि वह कुछ बुरी बात कर रही है और इसका भयंकर फल उसे भोगना पड़ेगा। मेरे लिये यह हँसी की बात है। मैं तो बेकसूर पीटा गया था।'

इतने में मालती ने हंस को आवाज़ दी और वह बाबा से बात करना छोड़ भागकर माँ के पास चला गया।

मालती ने चीनी का खाली डिब्बा हंसराज के हाथ में पकड़ा, कहा, 'दुकान पर चले जाओ और अपने पिताजी से कहो-'आज घर में खीर बन रही है और चीनी समाप्त हो गयी है। दो किलो चीनी दे दें।'

खीर का नाम सुनते ही हंसराज सब-कुछ भूल चीनी का डिब्बा ले अपने पिता की दुकान की ओर भागा।

::2::

हंसराज के पिता का नाम काहनचन्द था। वह गाँव में अपने पिता की दुकान पर बैठता था। उसका एक बड़ा भाई भी था। नाम था सन्तराम। वह तहसील में नायब तहसीलदार अर्थात् कानूनगो के पद पर नियुक्त था।

काहनचन्द के पिता धनपत राय ने गाँव की दुकान से बहुत धन सम्पदा एकत्रित की थी। वह पिता का एक ही पुत्र था और कुछ अधिक पढ़ा-लिखा भी नहीं था। पिता के देहान्त के समय गाँव के स्कूल की सातवीं श्रेणी में पढ़ता था। परीक्षा के दिनों में पिता बीमार हो गये तो वह परीक्षा देने नहीं जा सका। घर में वह और उसकी विधवा बुआ दो ही प्राणी थे। माँ का देहान्त पहले ही हो चुका था। बुआ घर में भाई की सेवा करती थी और धनपतराय पिता की दुकान की देखभाल करता था। पन्द्रह दिन बीमार रहने के उपरान्त धनपत के पिता फकीरचन्द का देहान्त हो गया। इन दिनों में धनपतराय की परीक्षा निकल गयी और वह श्रेणी में अनुत्तीर्ण रहा।

पिता के क्रिया-कर्म के उपरान्त धनपतराय पिता की गद्दी पर बैठ दुकान करने लगा और उसकी बुआ भाई के लडके के लिये बहू ढूंढ़ने लगी।

धनपत ने दुकान के माल का मोल लगाया जो दस सहस्त्र रुपये के लगभग था। वह दुकान पर 'रेवड़ियों का फेर' चलाने लगा। घर पर गाय थी। दस बीघे का एक खेत था। घर के पिछवाड़े में शाक भाजी के लिये बगिया थी और गाँव में एक ही दुकान थी जहाँ वस्तुएं सस्ती और बढ़िया मिलती थीं। एक-आध दुकान और भी थी, परन्तु पूँजी के अभाव से अथवा प्रबन्ध के दोष से उन दुकानों पर जाकर ग्राहक सन्तुष्ट नहीं होता था। धनपत दिन-दुगुनी रात-चौगुनी उन्नति करने लगा।

धनपत का विवाह उन्नीस वर्ष की वयस में हुआ था। जब उसका बडा पुत्र सन्तराम बी० ए० पास करके गाँव में ही तहसील में लगा तब तक धनपत गाँव के पास ही सात सौ एकड़ के एक फार्म का मालिक हो गया था। गाँव की चीनी मिल में उसके हिस्से थे और अब दुकान भी बहुत सुसज्जित और भरपूर स्टोर के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी।

धनपत ने अपने बड़े लड़के को उच्च शिक्षा देने का यत्न किया। सन्तराम ने बी० ए० पास किया और जब एम० ए० की श्रेणी में प्रवेश नहीं प्राप्त कर सका तो फिर भूमि-सम्बन्धी कानून की पुस्तकें पढ़, सरकारी परीक्षा दे, 'माल' विभाग में नौकरी पा गया और सिफारिश के बल पर अपने ही गाँव में नौकरी पर आ गया था।

नौकरी के समय सन्तराम उन्नीस वर्ष की आयु का था। उस समय धनपत को दुकान पर काम करते हुए अट्ठाईस वर्ष हो चुके थे और इतने काल में वह अपने जिले के चोटी के धनियों में हो गया था। ऐसी स्थिति में धनपतराय ने पुत्र से पूछा, 'सन्तराम! क्या वेतन मिलेगा इस नौकरी से?'

'पिताजी! मँहगाई-भत्ता मिलाकर डेढ़ सौ रुपया।'

'बस! इतना तो मेरे फार्म के जमादार को मिल जाता है।'

'परन्तु वह जमादार है और मैं नायब तहसीलदार हूँ। यह क्या कम है?'

'क्या खूबी है नायब तहसीलदारी में? मुझे तो जमादार अधिक मजे में लगता है। देखो सन्तराम, जमादार की लड़की का विवाह हुआ तो उसके विवाह पर पाँच हजार रुपया मैंने व्यय किया था। तुम्हारा विवाह अब होने वाला है। तुम्हारा अफसर तहसीलदार कितना देगा तुम्हें उस अवसर पर?'

'वह क्यों देगा?'

'और मैंने क्यों दिया है?'

'आपने दिया है इसलिये कि आप उसकी बदौलत लाखों कमाते हैं।'

'वह अपने घर से तो देता नहीं। मेरी सम्पत्ति से ही आय होती है और वह तो केवल प्रबन्ध करता है। तुम भी तो सरकारी तहसील की वसूली करते हो। इस तहसील की पचास लाख की वसूली होती है।'

'पर वह तो सरकारी है। तहसीलदार की नहीं।'

'जहाँ तक तुम्हारा और जमादार का सम्बन्ध है, तुम दोनों एक दर्जे के आदमी हो। दोनों मुलाज़िम हो और दोनों का वेतन बराबर है। अन्तर यह है कि जहाँ उसका मालिक एक व्यक्ति है, वहाँ तुम्हारा मालिक कोई भी नहीं। उसे किसी भी प्रकार का कष्ट हो तो वह मेरे पास आ सकता है और कष्ट-निवारण के लिये सहायता माँग सकता है। तुम्हें कोई कष्ट हो तो तुम किसके पास जाओगे?'

'पिताजी! आप नहीं जानते। आप राजनीति और अथर्शास्त्र नहीं पढ़े। इसी से ऐसी बातें करते हैं। सरकारी नौकरी में शान है, अधिकार है, मान-प्रतिष्ठा है और दबदबा है। यहाँ आप लाखोंपति हैं और कहीं सरकारी उत्सव हो तो आपको कोई पूछता नहीं। सरकारी अफसरों को निमन्त्रण मिलते हैं, उनको चाय-पार्टियाँ दी जाती हैं।'

धनपत को सन्तराम की बातें सार-हीन प्रतीत हुई थीं और वह चिन्तन करने लगा था कि उसने लड़के को पढ़ाकर कुछ ठीक नहीं किया।

इस समय उसका दूसरा लड़का काहनचन्द बारह वर्ष की आयु का था और सातवीं श्रेणी में पढ़ता था। उसने समझा कि एक लड़का तो हाथ से गया, अब दूसरे की तो रक्षा कर ले। उसने काहनचन्द को दुकान पर बैठाना आरम्भ कर दिया। काहनचन्द को दुकान की चटक लगी तो उसने अपने आप ही स्कूल जाना छोड़ दिया।

सन्तराम और काहनचन्द के बीच में धनपतराय की एक लड़की थी। नाम था रेवती। उसका विवाह सोलह वर्ष की आयु में हो गया। वह दसवीं श्रेणी तक पढ़ी थी। रेवती से उसका पति बहुत प्रसन्न था अतः रेवती अपने पिता के घर बहुत कम आती थी।

इस बात को तीस वर्ष व्यतीत हो चुके थे और परिवार में बहुत परिवर्तन हो चुके थे। सन्तराम के लक्ष्मी नाम की एक ही सन्तान थी। लक्ष्मी के उपरान्त कोई सन्तान नहीं हुई। सन्तराम की पत्नी की उत्कट इच्छा थी कि उसके घर एक लड़का हो जाये, परन्तु सन्तराम नगर से सन्तान-निरोध के गुण और उपाय सीख चुका था।

लक्ष्मी के जन्म के उपरान्त पति-पत्नी में भारी वाद-विवाद हुआ और मोहिनी ने अब उन उपायों के प्रयोग का यत्न करना आरम्भ कर दिया। इस पर भी किसी त्रुटि अथवा प्रमाद के कारण पुनः गर्भ ठहर गया। इस पर सन्तराम ने पत्नी को लक्ष्मी के जन्म के समय हुए कष्ट का अति भयंकर रूप में स्मरण कराया और पत्नी गर्भपात के लिये तैयार हो गयी। गर्भपात हो गया, परन्तु उस समय गर्भाशय में किसी प्रकार के दोष रह जाने से पुनः गर्भ नहीं ठहर सका और माता-पिता की एक ही सन्तान रह गई। समय व्यतीत होने के साथ मोहिनी को शोक लगने लगा, परन्तु वह समझती थी कि यह उसके अपनी ही करनी का फल है।

समय पाकर लक्ष्मी का विवाह वहीं गाँव के ही एक युवक से हो गया। कुछ तो मोहिनी के कहने पर और कुछ अपने पति के परिवार की परम्परा के कारण लक्ष्मी की सन्तान-निरोध में रुचि नहीं थी। इस कारण उसके तीन सन्तान हो गयीं। दो लड़के और एक लड़की। इससे मोहिनी को सन्तोष हुआ। वह अपने दोहतों और दोहतियों को अपनी सन्तान समझने की भावना बनाने लगी। उनको अपने घर पर बुलाती रहती थी। दो को तो वह स्थायी रूप में रखे हुए थी।

जब लक्ष्मी की तीसरी सन्तान लड़की हुई और उसके दो बड़े लड़के मोहिनी के घर में आने-जाने लगे तो सन्तराम को किसी बड़े मकान में रहने की आवश्यकता अनुभव हुई। मोहिनी ने ही कहा था कि कोई बड़ा घर हो जाता तो अच्छा था।

'आज अच्छा घर बनवाने के लिये पचास साठ हजार रुपया चाहिये। इतना मेरे पास है नहीं।' सन्तराम ने उत्तर दिया।

'अपने पिताजी से माँग लीजिये। सुना है कि वे नगर में दो लाख की लागत से एक हवेली बनवा रहे हैं।'

'वह नहीं देंगे।'

'क्यों नहीं देंगे? आप उनके बेटे नहीं हैं क्या?'

'तुम्हारे विवाह के समय उन्होंने बीस सहस्त्र रुपया व्यय कर दिया था। मैंने मना किया तो उन्होंने कहा था, 'जब है तो व्यय करने में हानि नहीं।'

'परन्तु मैंने उनको समझाने का यत्न किया था कि 'यह धन उनका नहीं है। यह समाज का है। इस कारण उनको इस प्रकार व्यर्थ गँवाने का अधिकार नहीं।'

इस पर उन्होंने कहा था, 'मैं ऐसा नहीं समझता। समाज का भाग टैक्सों के रूप में समाज को दे दिया है। अब यह मेरा है।' जब मैंने विरोध किया तो उन्होंने कह दिया, 'ठीक है। अब तो जो हो गया सो हो गया। भविष्य में तुम इस जातीय कोष में से कुछ व्यय न करना। जब जाति माँगेगी, मैं उसे वापस कर दूँगा।' इस वार्तालाप के उपरान्त उनसे कुछ माँगने का साहस नहीं होता।'

'आप भी खूब हैं! आपने बात इतनी दूर तक खींची ही क्यों? यदि पिताजी की सम्पत्ति समाज की है तो जब वह हमारे पास आ जायेगी तो क्या वह समाज की नहीं रह जायेगी? हम भी समाज के ही हैं। और जो कुछ मेरे विवाह पर हुआ था, क्या वह विलायत चला गया था? वह क्या भारत के रहने वालों के पास नहीं गया था?'

'नहीं मोहिनी! बात इस प्रकार नहीं। बात है व्यय करने के अधिकार की।'

'यह सब युक्तियाँ बेवकूफों के लिये हैं। इनकी वास्तविकता कुछ नहीं। यदि आपको पिताजी के बीसियों मकानों में से एक माँगने में संकोच होता है तो मैं उनसे माँग लेती हूँ।'

'वह तुम्हारा अपमान कर देंगे।'

'परन्तु वह तो मेरे पिता-तुल्य हैं। वह अपमान क्यों करेंगे?'

'तो जाकर देख लो।'

मोहिनी एक दिन प्रातःकाल अपने श्वसुर के मकान में जा पहुंची। यह अप्रत्याशित बात थी। मोहिनी कई वर्ष के उपरान्त अपने सास-श्वसुर के घर आयी थी। मोहिनी की सास सुखिया ने जब बहू को आकर चरण-स्पर्श करते देखा तो उसने अपने घर वाले

को बुलाने के लिये आवाज़ दे दी, 'ए जी! जरा बाहर आइये! देखो, घर में कौन आया है।'

धनपतराय स्नानादि से निवृत्त हो पूजा समाप्त कर ठाकुरजी की आरती उतार रहा था। काहनचन्द दुकान पर जा चुका था। काहनचन्द की बहू मालती अपने तीन बड़े बच्चों को स्कूल भेजने की तैयारी कर रही थी।

धनपतराय ने सुखिया की पुकार को सुना तो उसने आरती की थाली ठाकूरजी के सामने रख दी और आवाज़ दे दी, 'आया भाग्यवान! उसे बैठाओ।'

धनपतराय का विचार था कि रेवती के लड़के-वालों में से कोई आया है। यद्यपि रेवती के घर से भी लोग बहुत कम अपने नाना-नानी के यहाँ आते थे, परन्तु सन्तराम के घर से तो कभी कोई आता ही नहीं था।

सन्तराम कभी दुकान पर आता था और काहनचन्द को डाँट-डपट जाता था। वह अपने भाई को सदा यह कहता था, 'यह सब कुछ जो लूट-खसूट कर रहे हो, एक दिन छिन जाने वाला है। कोई भी काम साहूकारों के हाथ में नहीं रहेगा।'

काहनचन्द मुस्करा दिया करता था और पूछ लेता था, 'भैया। तो इस धन्धे को कौन करेगा?'

'सरकारी मुलाज़िम करेंगे। और इतनी बड़ी दुकान नहीं रहेगी। सब दुनिया भर का कबाड़खाना इकट्ठा कर रखा है। तुम्हारी दुकान की बीस छोटी-छोटी दुकानें होंगी और इस दुकान की आय बीस परिवारों में बँट जायेगी।'

फकीरचन्द द्वारा आरम्भ की हुई यह दुकानदारी सत्तासी वर्ष से उन्नति कर रही थी। आरम्भ हुआ था एक दस फुट मुरब्बा की दुकान से और दो सौ रुपये की पूँजी से। और अब यह बीस बड़े-बड़े कमरों में एक बहुत बड़ा स्टोर था। इसमें कपड़ा सीने की सुई से लेकर मोटरगाड़ी और ट्रैक्टरों के कल-पुर्जे तक बिकते थे। इनके अतिरिक्त जब गाँव के किसी समृद्ध व्यक्ति को किसी ऐसी वस्तु की आवश्यकता होती, जो इस स्टोर में नहीं होती तो वह अपनी माँग लिखा जाता और वह वस्तु उस व्यक्ति के लिये मँगवा दी जाती थी।

काहनचन्द ने कहा, 'तब तो ठीक है। काम बँट जायेगा तो ज़िम्मेदारी भी तो कम हो जायेगी।'

'और ये हवेलियाँ भी बँट जायेंगी।'

'परन्तु हमारी अपने रहने की हवेली तो रहेगी?'

'हाँ, वह तो रहेगी। परन्तु उसमें भी यदि स्थान आवश्यकता से अधिक हुआ तो

उसमें दूसरे लोग बैठा दिये जायेंगे।'

दोनों भाइयों के वार्तालाप को एक ग्राहक खड़ा सुन रहा था। उसके मुख से अनायास निकल गया, 'तब अनर्थ हो जायेगा, बाबू!'

'क्यों?'

'यह दुकान भी अथवा इससे बनने वाली बीस दुकानें भी वैसे ही हो जायेंगी जैसे कि वह सहकारी समिति का स्टोर है?'

'क्यों, उसमें क्या है?'

'बाबू! कभी वहाँ से कुछ खरीदा भी है?'

'यह काहन मेरा भाई है। इसकी दुकान छोड़कर मैं वहाँ जाता ही नहीं।'

'तभी तुम्हें पता नहीं।'

'और तुम कौन हो? तुम्हें पहले कभी देखा नहीं।'

'बाबू! तुमने तो गाँव का को-आपरेटिव स्टोर भी नहीं देखा। मुझे नहीं देखा तो विस्मय करने की बात नहीं।'

'काहन! कौन है यह? इसे बता दो कि मैं कौन हूँ?'

'बाबू, जानता हूँ कि तुम कौन हो।' ग्राहक ने कहा।

'तुम्हारी पिटाई की आवश्यकता दिखायी देने लगी है। तुम्हें यह भी तमीज़ नहीं कि किसी सरकारी-अफसर को 'तुम' नहीं कहा जाता।'

'परन्तु आज तो समाजवाद है न। पूरा समाजवाद। दफ्तर से बाहर आप एक नागरिक से अधिक नहीं।'

'ओह! तुम भूल कर रहे हो। एक सरकारी अफसर चौबीस घण्टे का नौकर होता है।'

'हाँ, स्मरण है, परन्तु बाबू! तुम इस समय सरकारी नौकर तो हो, अधिकारी तो कार्यालय की कुर्सी पर बैठ कर ही हो सकते हो।'

'यह कैसे?'

'इस पर विचार करना। समझ में आ जायेगा।'

::3::

धनपत पूजा का सामान समेट, पूजा-गृह को बन्द कर बाहर आने योग्य वस्त्र पहन वहाँ आ पहुँचा जहाँ मोहिनी अपनी सास के पास बैठी थी। सुखिया काहन के बच्चों को स्कूल जाने के लिये तैयार करा रही थी।

धनपत आया तो मोहिनी ने कुछ झुककर और भूमि को छू कर हाथ माथे से लगा पांय-लागूं कर दी। धनपत ने मोहिनी को पहचाना और कह दिया, 'बहू हो।'

'हाँ!' उत्तर सुखिया ने दिया, 'यह आज बीस-पच्चीस वर्ष उपरान्त इस घर में आयी है। कुछ बाँटो जिससे इसका यहाँ आना स्मरण रह जाये।'

'इसका पति तो कह रहा है कि सरकार ही हमारा सब-कुछ बाँट रही है। उस बटवारे से इसके पति को भी कुछ तो मिलेगा ही।'

मोहिनी इसका अर्थ नहीं समझी। सन्तराम इस बदलती दुनिया का वर्णन घर में नहीं करता था। उसका श्वसुर तो गाँव में अभी भी साहूकारा करता था। इस समय गाँव में दो बैंकों की शाखाएँ थीं। एक 'स्टेट बैंक आफ इण्डिया' की और दूसरी 'सेण्ट्रल बैंक आफ इण्डिया' की। वहाँ अब बिना किसी प्रकार की गारण्टी के ऋण मिलता था। इस पर भी लोग प्राईवेट 'बैंकरों' से ऋण लेते थे और ये ऋण देने वाले ब्याज पहले काट कर ऋण देते थे। अधिकांश लोग किसी प्रकार की चल सम्पत्ति गिरवी रखकर ऋण लेते थे। किसी प्रकार की लिखत-पढ़त नहीं होती थी, परन्तु ब्याज बहुत कड़ा होता था।

इस कारण सन्तराम अपनी पत्नी को समाजवाद की बात नहीं बताता था। मोहिनी ने अपने श्वसुर की बात नहीं समझी। उसने कह दिया, 'पिताजी! सरकार क्या करेगी और क्या नहीं करेगी, उससे मेरा क्या सम्बन्ध है? मैं तो आपसे आपके पुत्र के लिये कुछ माँगने आयी हूँ।'

'क्या चाहती हो?'

'लक्ष्मी के बच्चे भी अब हमारे घर में ही रहते हैं, किन्तु घर में स्थान छोटा पड़ रहा प्रतीत होता है।'

'हाँ, यह तो है। तुमने न तो सन्तान धन एकत्रित किया है और न ही कुछ जमा-पूँजी बनायी है।'

'पिताजी ! सन्तान तो ईश्वर के हाथ में थी। और सरकारी अफसर होने के कारण आय से खर्चा सदा ही अधिक रहता है।'

'यह सब मैं जानता हूँ। तुम भले ही अपने पिता की सुध न लो, परन्तु पिता तो ऐसा नहीं कर सकता। मुझे ज्ञात है कि तुम्हारे घर 'फ्रिज' भी बैंक से ऋण लेकर लिया गया है। पचास रुपये महीना तो उसी की किस्त देनी पड़ती है। सुना है कि तुमने एक रेडियोग्राम के लिये भी बैंक से ऋण की अर्जी की हुई है।'

'आप तो हमारे विषय में बहुत देख-रेख रख रहे हैं। मैं तो पहले ही उनसे कहा करती हूँ कि दूसरे स्थान से ऋण लेने की अपेक्षा आपका द्वार क्यों नहीं खटखटाते?'

'खैर, अब तुम जो इस काम के लिये आयी हो। बताओ, बना बनाया मकान लेना चाहती हो अथवा अपना बनवाना चाहती हो?'

'बनवाना तो अपना चाहती हूँ, परन्तु विचार करती हूँ कि बनवायेगा कौन? आपके सुपुत्र तो सरकारी काम में इतने व्यस्त रहते हैं कि उनको मकान बनवाने का अवकाश ही नहीं होगा।'

'फिर भी मकान तो बन सकता है। काम तो मेरे पास भी बहुत है। इस समय दुकान है जो पिताजी के देहान्त के समय से बीस गुणा बडी हो गयी है। वहाँ चालीस व्यक्ति काम करते हैं। सम्पत्ति की देख-रेख और उससे आय की वसूली के लिये पृथक् मुंशी है। फार्म का भी काम है। आजकल फार्म में से पचास हजार प्रति वर्ष का नकद लाभ होता है। एक अन्य मुंशी है जो मेरे कारखानों में हिस्सों की देखरेख करता है और नगर की सम्पत्ति का प्रबन्ध करता है। इस पर भी यदि कहो तो मैं तुम्हारे लिये भी मकान बनवा सकता हूँ?'

'परन्तु हम तो मकान ऐसा चाहते हैं जिससे कि सब प्रकार की सुख-सुविधा उपलब्ध हों।'

'तो ऐसा करो। सन्तराम को कह दो कि एक मकान का नक्शा बनवा कर मेरे पास भेज दे। तीन-चार मास में मकान बनवा कर उसके नाम कर दूँगा।'

'सच पिताजी ! मैं तो पहले ही कहती थी कि आप इनकार नहीं करेंगे।'

'इनकार तो मैं किसी को भी नहीं करता। केवल माँगने वाले को क्या मिलना चाहिये, इसमें कभी माँगने वाले की इच्छा और मेरी इच्छा में भेद हो जाता है।'

'और वह अब भी हुआ ही है। तुम माँगने आयी थी एक बना बनाया मकान और मैं तुम्हारी अपनी इच्छानुसार मकान बनवा कर देने के लिये तैयार हो गया हूँ। है न मतभेद? ऐसा दूसरों के साथ भी होता रहता है।'

'और पिताजी, सबको उनके माँगने से अधिक देते हैं ?'

'नहीं। सदा ऐसा नहीं होता। कभी यह भी होता है कि माँगने वाला अपनी आवश्यकताओं से अधिक माँगने लगता है तो उसको अपनी मति से उसकी आवश्यकता के अनुसार ही देता हूँ।'

'और किसी को इनकार भी करते हैं आप?'

'बहुत कम। कभी कोई कुपात्र आ जाता है तो उसको नहीं भी देता।'

'फिर भी आपकी सम्पदा बढ़ती जाती है।'

'हाँ, मेरे पास दो प्रकार की सम्पदा है। एक चल है और दूसरी अचल। चल सम्पदा तो मैं देता रहता हूँ। अचल की रक्षा करता हूँ। उस अचल से ही चल का निर्माण होता है। इस कारण बीज बना रहने से फलों में कमी नहीं रहती और फल बाँटता रहता हूँ।'

'परन्तु फलों में भी तो बीज होता है।'

'हाँ, बेटा! यह मैं जानता हूँ। जो इस बात को जानते हैं, वे भी मेरी भाँति मालामाल हो रहे हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो इस साधारण-सी सच्चाई को नहीं जानते। वे फल के साथ बीज को भी खा जाते हैं। कुछ ऐसे हैं जो आम को चूसते हैं, परन्तु गुठली को भी भून कर खा जाते हैं। उनके यहाँ आम के पेड़ नहीं लग सकते।'

मोहिनी अपने श्वसुर की बात समझ रही थी। उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा। वह विचार कर रही थी कि देने में भी रस आता है, परन्तु देने के लिये एकत्रित तो करना ही होता है।

धनपत मोहिनी के मुख पर बदलते रंगों से उसके अन्तर्मन की भावनाओं का अनुमान लगा रहा था। उसने उसे दीर्घ श्वास छोड़ते देख अपनी सम्पत्ति का एक अन्य रूप प्रकट कर दिया। उसने कहा, 'एक बगिया यहाँ तुम्हारी सास ने भी लगायी है। इस समय उसकी बगिया में बारह से ऊपर पेड़ हो गये हैं और मैं कभी-कभी कल्पना करता हूँ कि मेरे इस संसार को छोड़ने के समय तो इस बगिया के पेड़ भी फल देने लगेंगे। और फिर सम्भव है कि इस बगिया का विस्तार इतना हो कि बगिया का जंगल ही हो जाये। यह मेरी अचल सम्पदा होगी।

'एक अन्य प्रकार की सम्पदा का भी निर्माण कर रहा हूँ। उसका दूसरा नाम सम्पत्ति है। है वह भी सम्पदा ही। परन्तु उसके विषय में तुमको बताऊँगा नहीं। कठिनाई यह है कि वह बँट नहीं सकती। सन्तराम मेरी सम्पत्ति के बँट जाने की बात कह रहा है और मैं समझता हूँ कि उस महान बटवारे के उपरान्त भी मैं सम्पदा-विहीन नहीं

हूँगा। कारण यह कि मेरी यह सम्पत्ति तो बँट सकेगी ही नहीं। यह छिन भी नहीं सकेगी।'

मोहिनी इस नवीन प्रकार की सम्पदा के विषय में कुछ नहीं समझी। अतः वह आश्चर्यवत् अपने श्वसुर का मुख देखती रह गयी।

अब धनपतराय ने उठते हुए कहा, 'सुखिया! मोहिनी को दूध पिलाओ और इसे कह दो कि सन्तराम मकान का नक्शा बनवा कर ले आये। मैं उसे अपने मुंशी के सामने कर दूँगा और मकान उसकी इच्छानुसार बन जायेगा।'

इतना कह धनपतराय ने लाठी ली और फार्म को चल दिया। मोहिनी ने अपने श्वसुर की बात समझने के लिये अपनी सास से पूछ लिया, 'पिताजी किस सम्पत्ति के विषय में कह रहे थे, जो बँट नहीं सकती?'

'उन्हीं से पूछना था। आजकल ये कुछ बहकी-बहकी बातें करने लगे हैं। अब अवस्था भी पैंसठ वर्ष की हो गयी है। बुढ़ापा आने लगा प्रतीत होता है।'

मोहिनी अपनी सास के घर से सर्वथा सन्तुष्ट होकर गयी। मकान मिलने का आश्वासन, खाने और पीने को मिठाई, दूध। और फिर सास का प्यार मिला। साथ ही पुनः लक्ष्मी के बच्चों को लेकर आने का निमन्त्रण मिला। वह घर गयी तो उसका पति उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने छुटते ही कहा, 'बहुत देर कर दी है। मेरे काम पर जाने का समय हो गया है।'

'हाँ। आपके माता-पिताजी ने इतना आग्रह किया कि बिना खाये-पिये और पेट भरे आ ही नहीं सकी।'

'बच्चे भूख के मारे रोने लगे थे।'

'तो उनको दूध गर्म कर पिला देते।'

'पर दूध है कहाँ?'

'ओह! दूध तो रात सब आपके मित्रों को कॉफी पिलाने में ही समाप्त हो गया था। फिर क्या किया है?'

'पड़ोसियों से दूध माँगा था। वह गर्म किया, टोस्ट बनाये और फिर इनको पेट-भर खिला-पिला दिया है। अब वे पिछवाड़े में खेल रहे हैं।'

'और आपने?'

'मैंने भी टोस्ट खा लिये हैं। थोड़े-से दूध की चाय बना ली थी।'

'बहुत अच्छा किया है। खैर, अब आप कार्यालय को जा सकते हैं। मैं आ गयी हूँ।'

'परन्तु मैं तो मकान के विषय में जानना चाहता था। कुछ मिला अथवा कोरा जवाब ही मिला है?'

'मिला है। माँगे से अधिक मिला है। आपके पिताजी ने कहा है कि मकान का अपनी आवश्यकताओं के अनुसार नक्शा बनवा कर उनके पास भिजवा दीजिये और वे अपने मुंशी को कहकर मकान बनवा देंगे।'

'कितना बड़ा मकान बनवाने को कहा है?'

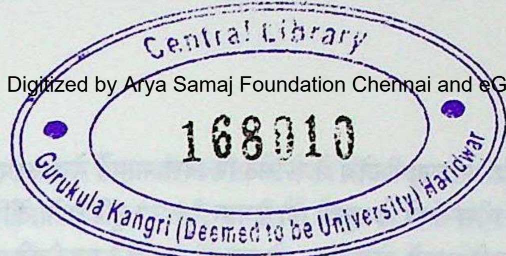
'इस विषय में तो न उन्होंने कुछ कहा है और न ही मैंने पूछा है।'

'तो फिर क्या कर आयी हो? आखिर बेवकूफ ही रहीं। क्या नक्शा बनवाऊँ? कितना बड़ा नक्शा बनवाऊँ? किस ज़मीन पर बनवाऊँ? तुम जब भी जहाँ जाती हो, अधूरी बात ही करके आती हो।'

मोहिनी तो अति प्रसन्न होती हुई अपने 'मिशन' की सफलता पर फूलती हुई आयी थी और यहाँ उसे कहा जा रहा था कि वह बेवकूफ है और अधूरी ही बात करके आयी है। वह मन में विचार कर रही थी कि यह सीमा कि इतना बड़ा मकान तथा इतनी लागत का मकान हो, उसके श्वसुर को बांधनी चाहिये थी। जब सीमा नहीं बांधी तो जितनी हमें आवश्यकता है, उतना बड़ा बनवा लें। यह हम पर ही छोड़ा गया है।

इस कारण उसने कहा, 'देखिये जी! जितनी मेरी बुद्धि है उतना मैं कर आयी हूँ। अब विशेष बुद्धि की बात आप जाकर कर लीजिये।' इतना कहकर वह लक्ष्मी के दोनों लड़कों को मकान के पिछवाड़े में देखने चली गयी।

सन्तराम समझ गया कि पत्नी को अनपढ़ कहे जाने पर रोष है। इस कारण उसने यह समझा कि शेष बात वह तब करेगा, जब उसका रोष कुछ शान्त हो जायेगा। वह भी उठकर अपने कार्यालय को चल दिया।



::4::

तहसील के 'ड्राफ्ट्स मैन' को एक बड़े-से मकान का नक्शा बनाने के लिये कहा तो उसने यह विचार कर कि नक्शा बनाने का कुछ मिलना तो है नहीं, कह दिया, 'बाबू साहब! आजकल मकानों के डिज़ाइनों में बहुत कुछ नया विचार किया गया है। मुझे उनका अनुभव नहीं है। इस कारण किसी नवीन ढँग से शिक्षित 'आर्किटैक्ट' से नक्शा बनवाना चाहिये।'

'तुम किसी को जानते हो?'

'मेरा कोई परिचित तो है नहीं। हाँ, लाला धनपतराय के यहाँ तो एक 'आर्किटैक्ट' पक्की नौकरी पर है। उससे ही नक्शा बनवा लीजिये। आपके तो वह पिता हैं। बिना मूल्य के बनवा देंगे।'

'तो इसका मूल्य भी देना पड़ेगा?'

'जहाँ तक मुझे ज्ञात है कि केवल नक्शा बनाने, ऐस्टीमेट लगाने और देखभाल करने का पाँच-छः प्रतिशत वह लेगा। अभिप्राय यह कि यदि एक लाख रुपये की लागत का मकान बनवाना हो तो छः हज़ार तक आर्किटैक्ट का पारिश्रमिक हो सकता है।'

'छः हज़ार? यह अधिक नहीं है क्या?'

'परन्तु आप अपने पिताजी से क्यों नहीं कहते? वहाँ तो आपको कुछ भी नहीं देना पड़ेगा।'

इस सूचना से ज्ञानवान हो वह सायंकाल घर लौटा तो मोहिनी और दोनों बच्चे चाय, मिठाई इत्यादि तैयार कर मेज़ पर बैठ सन्तराम की प्रतीक्षा कर रहे थे। आज सन्तराम के साथ उसकी तहसील के एक मुहर्रिर भी थे। वह प्रायः उस दिन कानूनगो साहब के घर पर आया करते थे, जिस दिन उनके हिसाब में कुछ रिश्वत प्राप्त होती थी और उसका ब्योरा कानूनगो साहब को देना होता था।

आज तो बहुत बड़ी-बड़ी रकमें प्राप्त हुई थीं। एक फार्म के बटवारे का मामला था। उसमें कानूनी बाधा थी। वह बाधा कानूनगो साहब ने सुलझायी थी और इस परिश्रम के प्रतिकार में मुंशी ने सब लाभान्वित होने वालों से हाथ रंगे थे।

मुंशी हीरालाल को भी चाय पर आमन्त्रित कर दिया गया। चाय पीते समय ही

बात होने लगी। मुंशी ने अपनी जेब में से नोट निकाल सामने मेज़ पर रख दिये। नोट गिने गये। सात सौ बीस रुपये थे। मुंशी को पचहत्तर रुपये मुंशियाना दे दिया गया और शेष रुपये सन्तराम ने अपने जेब में रखते हुए कहा, 'मैंने एक बड़े-से मकान का नक्शा बनाने के लिये करीमबख्श को कहा था। उसने कह दिया है कि वह नक्शा बनाना नहीं जानता।'

'वह मियाँ का बच्चा झूठ बोलता है। तहसीलदार साहब के नगर वाले मकान का नक्शा उसी ने बनाया है। मकान तो आपने भी देखा है। वह बहुत बढ़िया बना है।'

'तो उसने मेरे आगे झूठ बोल दिया है?'

'और क्या?' हीरालाल ने कह दिया।

'इस झूठ का मज़ा उसे चखाऊँगा।'

चाय समाप्त हुई। मुंशी गया तो सन्तराम ने अपनी पत्नी को कह दिया, 'आज घर में जलसा होगा।'

मोहिनी इस कथन की आशा ही कर रही थी। पहले भी जब कभी रिश्वत के कुछ रुपये इकट्ठे हो जाया करते थे तो घर में जशन होता था।

उस रात माँस, अण्डे, मुर्गा, सुरा और सुन्दरी का सेवन खुलकर होता था। ऐसी रातों में मोहिनी अपनी माँ के घर चली जाया करती थी। प्रत्येक बार इस प्रकार जाने के समय वह भारी असमंजस अनुभव किया करती थी। इस बार भी वह दुःख अनुभव करने लगी थी। आज वह अपने श्वसुर से एक बात सुनकर आयी थी। इस कारण उसने अपनी असमंजस की स्थिति का वर्णन कर दिया। उसने कहा, 'देखिये जी! अब मैं दोहते-दोहतियों वाली हो गयी हूँ। इस कारण आपको अब वे बातें जो आप जवानी के दिनों में करते थे, छोड़ देनी चाहिये। आपके पिताजी भी कहते थे कि बीज को सुरक्षित रखना चाहिये। फलों को भले ही बाँटते रहा करो, परन्तु आप तो अपने बीज को ही गन्दी नाली में बहा रहे हैं।'

'परन्तु वह बीज भी तो गला-सड़ा है। उसने तो एक ही लता का रोपण किया है और कोई पेड़ बना नहीं सका।'

'परन्तु आप बीज सुरक्षित रखते तो कोई कारण नहीं था कि कहीं-न-कहीं इसका रोपण हो जाता।'

'तुम्हारा अभिप्राय है कि पिताजी जानते हैं कि इस प्रकार के जशन यहाँ होते हैं?'

'यह तो उन्होंने बताया नहीं। उन्होंने तो मोटे उसूल की बात ही कही है। वह

बता रहे थे कि एक रूप है उनकी चल सम्पत्ति का बीज। दूसरा अचल सम्पत्ति है। यह मकान इत्यादि हैं। तीसरी प्रकार की सम्पत्ति है सन्तान। उन्होंने एक चौथी प्रकार की भी सम्पत्ति बतायी है। यह है सम्पत्ति। परन्तु इस विषय में उन्होंने कुछ अधिक नहीं बताया।'

'मैंने आपकी माताजी से पूछा तो उन्होंने बता दिया कि आपके पिता बूढ़े हो गये हैं और उनकी बहुत बातें कल्पना के घोड़े ही होते हैं।'

'हाँ, यह तो मैं भी मानता हूँ। देखो, तुम आज तो अपने मायके चली जाओ। वहीं से पिताजी के घर फिर जाना और उनको कहना कि अपने आर्किटैक्ट से ही हमारे मकान का नक्शा बनवा दें।'

'मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। अब आपको जाना चाहिये। मैंने आपका वहाँ जाने का मार्ग खोल दिया है।'

'रात के जलसे के उपरान्त तो मैं वहाँ जाऊँगा नहीं। मेरी तो कल समय पर नींद भी नहीं खुलेगी।'

'तो अगले दिन अथवा कल मध्याह्न के समय जा सकते हैं।'

'देखो मोहिनी! यह एक काम और कर दो। मैं जानता था और अब भी समझ रहा हूँ कि पुरुष से जो काम एक स्त्री निकाल सकती है, वह पुरुष नहीं निकाल सकता।'

'परन्तु मैं तो उनकी लड़की समान हूँ।'

'हाँ। यही तो कह रहा हूँ। लड़का होती तो काम नहीं बनता।'

'आप विचित्र व्यक्ति हैं। मुझे आप अपने पिता के पास इसलिये भेज रहे हैं कि मैं एक स्त्री हूँ और वह एक पुरुष हैं।'

'देखिये जी! मैं अब वहाँ कुछ भी माँगने नहीं जाऊँगी। मेरा स्त्रीत्व आपकी स्वार्थ-सिद्धि के लिये प्रदर्शनी का कार्य नहीं करेगा।'

वास्तव में सन्तराम विस्मय कर रहा था कि कितनी सुगमता से उसकी पत्नी उसके पिता से मकान बनवा देने का वचन ले आई है। दिन-भर वह इस बात पर विचार करता रहा, किन्तु उसको कोई कारण नहीं सूझा था। अब रात के जशन की बात मस्तिष्क में आते ही और पत्नी के उसके लिये स्थान रिक्त न करने का हठ सुन वह पत्नी के मन में दोष की कल्पना करने लगा था।

मोहिनी अपने कमरे में बैठी जहाँ यह संकल्प कर रही थी कि वह अपने पति को जीवन बदलने के लिये विवश कर देगी, वहाँ सन्तराम बाहर बैठक में बैठा यह

कल्पना कर रहा था कि उसकी पत्नी के चिकने-चुपड़े मुख को देख, उसका पिता मन से तो पतित हो ही गया है।

मोहिनी रोष में अपने कमरे में चली गयी तो सन्तराम उठकर तहसीलदार के घर चला गया। तहसीलदार के बाल-बच्चे अपने एक सम्बन्धी के घर गये हुए थे। अतः दोनों ने निश्चय कर लिया कि रात का जलसा तहसीलदार के घर पर ही होगा।

सन्तराम तहसीलदार के घर से नहीं लौटा।

::5::

अगले दिन प्रातःकाल ही मोहिनी अपने श्वसुर के घर में गयी और अपनी सास को उसके लड़के के रात-भर घर न आने की बात बता चिन्ता व्यक्त करने लगी।

इस समय धनपतराय पूजा-गृह से निकला और सन्तराम की बहू को अपनी सास के पास बैठा देख हँस पड़ा। हँसते हुए पूछने लगा, 'अब क्या चाहती हो, मोहिनी?'

बात सुखिया ने की। उसने बताया, 'सन्तराम कहीं रात-भर आवारागर्दी करता रहा है और यह चिन्ता करने लगी है कि उसने कहीं आत्म-हत्या न कर ली हो।'

धनपतराय हँस पड़ा और बोला, 'देखो मोहिनी! रात वह उसके घर में रहा है जो उसके जलसों में सम्मिलित होता रहता है।'

'उनके हम-प्याला तो तहसीलदार साहब हैं। परन्तु सुना है कि उनकी पत्नी बहुत ज़बरदस्त है। वह अपने घर में किसी प्रकार की अव्यवस्था सहन नहीं करती।'

धनपतराय ने एक क्षण तक ही विचार किया और खड़े-खड़े ही कह दिया, 'मैं अभी पता करता हूँ।'

वह बाहर गया और घर के नौकर को तहसीलदार के यहाँ से पता करने के लिये भेज आया कि वह घर पर है अथवा नहीं? धनपत का विचार था कि वह भी घर पर नहीं होगा और दोनों मित्र किसी अन्य के घर मुख काला करने गये होंगे।

मोहिनी देख रही थी कि उसके पति के पास ज्योंही कहीं से दस-बीस रुपये आते हैं, वह उनको व्यय करने चल पड़ता है और यहाँ उसके श्वसुर का घर तो सुख-

सुविधाओं से भरा पड़ा है। वह जानती थी कि उसका पति दुकानदारों, साहूकारों, कारखानेदारों इत्यादि को बुरा-भला कहा करता है, परन्तु यहाँ तो उससे सहानुभूति और सहायता की भावना दिखायी दी है। एक बुरा व्यक्ति भला किसलिये स्नेह और सहानुभूति की बात कर रहा है?

इस पर मोहिनी को अपने पति का कहना स्मरण आ गया कि वह स्त्री है और उसके पिता पुरुष हैं। इसी से वह यहाँ सहानुभूति पा रही है। पति की रात की बात को स्मरण कर तो उसके मन में पति के प्रति ग्लानि भर गयी। उसने एकाएक सामने बैठ दूध पी रहे अपने श्वसुर से कहा, 'पिताजी! आप मुझे अपनी बेटी मानते हैं न?'

'हाँ। मेरे लिये तुम रेवती समान ही हो। इसी कारण जब तुम कल मकान के विषय में कहने आयी थी तो मुझे यही समझ आया था कि बेटी के लिये मकान की आवश्यकता है। इस बात के मन में आते ही मैंने तुम्हारे लिये मकान बनाने का निश्चय कर लिया।'

'आपके सुपुत्र कह रहे थे कि मैं आपसे कहूँ कि यदि मकान बनवाने की कृपा कर रहे हैं तो नक्शा भी आप ही बनवा दीजिये।'

'वह मैं कर सकता था। अब भी कर सकता हूँ, परन्तु तुम्हारी आवश्यकतायें क्या हैं, यही जानने के लिये सन्तराम को नक्शा बनवाने की बात कही थी। तुम लोग सरकारी अफ़सर हो और सरकारी अफसरों की आवश्यकतायें मैं जानता नहीं।'

'परन्तु आपके बेटे कहते थे कि आपके आर्किटैक्ट यह बात जानते हैं। कदाचित् घर में रहने वालों से अधिक उनको पता होता है कि एक घर-गृहस्थी में क्या-क्या स्थान होने चाहिये।'

'तुम कहती हो तो मैं एक कच्चा 'प्लान' बनवा कर दिखा सकता हूँ?'

'हाँ, वह कर दीजिये। बात यह है कि आपके पुत्र को तो अपनी नौकरी और मित्रों को खिलाने-पिलाने से अवकाश ही नहीं। वास्तव में मकान की दिक्कत मुझे है। जीवन-भर उस छोटे-से मकान में रहते-रहते मन ऊब गया है।'

धनपत का नौकर वापस आकर समाचार लाया कि तहसीलदार साहब घर में सो रहे हैं।

इस पर धनपत ने कह दिया, 'मुझे विश्वास है कि सन्तराम भी वहीं बदमस्त पड़ा होगा। कहो तो उन लोगों से पता करूँ जो रात वहाँ मनोरंजन की सामग्री उपस्थित कर रहे थे?'

'तो आप उनको भी जानते हैं?'

'मेरा उनसे कभी वास्ता तो नहीं पड़ा, परन्तु, वे भी तो हमारी तरह दुकानदार हैं और एक दुकानदार दूसरे दुकानदार से कुछ तो पूछताछ कर ही सकता है।'

'नहीं पिताजी! इसकी आवश्यकता नहीं। कीचड़ में घूमने से छींटे तो आपके कपड़ों पर भी पड़ सकते हैं।'

लक्ष्मी के बच्चों को वह सोते छोड़ आयी थी। घर पर चौका बासन करने वाली आयी हुई थी और उसे वह अपने लौटने तक ठहरने को कह आयी थी। अतः उसने शीघ्रातिशीघ्र चाय समाप्त की और अपने घर को चल दी।

उसके चले जाने के उपरान्त सुखिया ने कहा, 'ऐसा प्रतीत होता है कि इनके घर में भारी झगड़ा हुआ है। मोहिनी बात करती-करती रुक गयी थी और आँसू बहाने लगी थी।'

'तुम ऐसा करो, जब काहन के बच्चे स्कूल चले जायें तो तुम मोहिनी का समाचार लेने उसके घर चली जाना।'

'पहले तो कभी गयी नहीं।'

'मैं समझता हूँ कि यह हम भूल करते रहे हैं। उसे अब ठीक मार्ग पर लाने का यत्न करना चाहिये।'

'परन्तु सन्तराम ने भी तो कभी बुलाया नहीं। लक्ष्मी के विवाह के समय भी हम स्वयं ही वहाँ जा पहुँचे थे और जो कुछ करना चाहिये था, कर आये थे।'

'वह तो दित्त-दाज के विषय में था। मैं समझता हूँ कि जो कुछ हमें सन्तराम के विषय में करना चाहिये था, वह हमने भूल से नहीं किया।'

'यदि आप कहते हैं तो आज जाऊँगी।'

'हाँ। मध्याह्न के समय जाना और देखो, यदि वहाँ कुछ असुखकर दिखायी दे तो भड़क नहीं उठना। धैर्य से बात को सुलझाने का यत्न करना।'

मोहिनी के घर पहँचने से पहले ही सन्तराम घर आ चुका था, परन्तु अभी पूरी नींद न ले सकने के कारण अपने पलँग पर जा लेटा था। जब मोहिनी ने शयनागार में प्रवेश करते हुए पूछा, 'तो आप आ गये हैं?'

'हाँ। रात तहसीलदार के घर रहा था। उसके बाल-बच्चे गये हुए थे और हमारा जलसा वहीं हुआ था। मैं गुसलखाने से पेशाब कर निकला ही था कि पिताजी का नौकर सरवन तहसीलदार के घर पर होने और जाग पड़ने के विषय में चपरासी से पूछ रहा था। यह समझ कि पिताजी तहसीलदार साहब से मिलने आने वाले हैं, मैं वहाँ से चला आया हूँ।'

'क्यों? आपको वहाँ देख तो प्रसन्नता होती कि उनका सुपुत्र अपने अफसरों से इतना घुल-मिल कर रहता है कि रात को उनके घर भी सो सकता है।'

'परन्तु मेरे मन में चोर जो था।'

'तो चोर को निकालना चाहिये न? चोर के साथ ही भाग निकलने से तो बात बनी नहीं।'

'परन्तु तुम कहाँ गयी थीं?'

'पिताजी को नक्शा बनवाने के लिये कहने।'

'और वे क्या कहते हैं?'

'बनवा देंगे, परन्तु कहते थे कि हमारी क्या-क्या आवश्यकतायें हैं, यह तो आपको उनसे मिलकर समझानी चाहियें।'

'पर रात तुम्हें क्या हो गया था?'

'मुझे तो कुछ नहीं हुआ था। कुछ आपको हो रहा था। अब वह दूर हो गया है। आपकी जेब में हराम की कमाई के कुछ रुपये एकत्रित हो गये थे और वह आपको अपनी सती-साध्वी पत्नी को गाली देने पर प्रोत्साहन दे रहे थे। अब वह व्यय हो गये प्रतीत होते हैं।'

'नहीं, सब खर्च नहीं हुए। कुछ अभी हैं।'

'तो रात अभी फिर तहसीलदार साहब के घर की यात्रा होगी?'

'अब मुझे सोने दो। कार्यालय भी जाना है। शेष बात सायंकाल करेंगे।'

::6::

जब सुखिया आयी, सन्तराम सो रहा था। मोहिनी ने पति के लिये भोजन तैयार कर रखा था जिससे वह ज्यों ही जाने को तैयार हो तो उसे भोजन मिल जाये और वह कार्यालय जाने में विलम्ब अनुभव न करे।

सुखिया आयी तो मोहिनी रसोईघर से निकल आयी और सास को वहाँ आया देख चकित रह गयी। वह पहली बार ही उनके घर पर आयी थी। उसने अपनी सास को घर की बैठक में बैठा कर पूछा, 'माताजी! कुछ विशेष बात है?'

'नहीं। सन्तराम के पिता समझ रहे हैं कि सन्तराम के बिगड़ने में हमारा ही दोष है और हमको उसे अब ठीक मार्ग पर लाने का यत्न करना चाहिये। उनका कहना है कि जब सन्तराम बालक मात्र था तब से ही बिगड़ना आरम्भ हुआ था। वह हमसे मिलने में संकोच अनुभव करता था। यह उसके अपने बालपन के कारण ही था। वैसे तो हमको चाहिए था कि उसको अपनी संगति से वंचित न करते। यदि तब ऐसा करते तो आज यह नौबत न आती।'

'ऐसा क्या हो गया है जो नहीं होना चाहिए था?'

'हम ठीक-ठीक तो वर्णन नहीं कर सकते, परन्तु तुम्हारे पति का रात-भर घर से बाहर रहना, तुम्हारा उसके आत्म-हत्या कर लेने का भयंकर विचार मन में ले आना, आँखों में आँसू भर लेना और फिर जल्दी-जल्दी घर भागना, यही तो प्रकट करता है कि घर में किसी प्रकार का संकट उत्पन्न हो गया है।

'मुझे उन्होंने भेजा है कि यदि कुछ जाना जा सके तो जानूँ और फिर उसके निवारण का उपाय करूँ।'

इस पर मोहिनी ने संक्षेप में अपने पूर्ण विवाहित जीवन की दुर्घटना का वृत्तान्त बता दिया, 'विवाह के पूर्व ही ये अपने पिता से पृथक् मकान ले चुके थे। इनका विचार था कि पक्षी जब उड़कर अपना पेट भरने योग्य एकत्रित करने की सामर्थ्य पा ले तो उसे माता-पिता का घर छोड़, अपने पाँव पर खड़ा हो जाना चाहिये।'

'उस समय मुझे भी यह भला ही प्रतीत हुआ था। तब गर्भ ठहर गया और लक्ष्मी हो गयी। इस पर घर में प्रथम बार झगड़ा हुआ। लड़का न होने पर उनको निराशा हुई और मेरे तीन मास तक उनकी सेवा में न आ सकने पर रोष भी था। वह बाज़ार की मिठाई खाने लगे। बाद में वे गाँव की वह मिठाई घर पर ही लाकर स्वाद लेने लगे।

'मैंने आपत्ति की तो मुझे उस समय के लिये माँ के घर भेजने की योजना हो गयी।

'जब से ये नये तहसीलदार साहब आये हैं, तब से मनोरंजन के ये कर्म बढ़ गये हैं। कल रात वह मुझे माँ के घर जाने की बात कहने लगे तो मैंने इनकार कर दिया। इस पर वह अपने पिता के ही चरित्र पर लांछन लगाने लगे। मैंने घर से जाने से इनकार कर दिया और बाहर से किसी स्त्री के घर में लाने का विरोध करने लगी। इस पर यह मुझे भी जली-कटी सुनाने लगे।

'अब मेरे आपके घर से लौटने के पूर्व वह आ गये थे, परन्तु रात भर जागने के कारण अभी सो रहे हैं।'

सुखिया को एक बात सूझी। उसने कहा, 'मोहिनी! ऐसा करो कि तुम, सन्तराम और बच्चे रात हमारे घर पर भोजन करो। ठीक है न?'

'मैं तो ठीक समझती हूँ, परन्तु उनके जागने पर उनको कह दूंगी। वह मानेंगे अथवा नहीं, कह नहीं सकती।'

'मैं उसके जागने तक यहीं हूँ।'

मोहिनी को सास का घर में आना सुखद अनुभव हो रहा था।

उसने चाय-पानी के विषय में पूछ लिया। सुखिया ने बताया कि वह खा-पीकर आयी है। मोहिनी ने लक्ष्मी के बच्चों को बुला लिया। बच्चे बैठ गये तो मोहिनी ने कहा, 'जानते हो, यह कौन हैं?'

दोनों बच्चे अपनी माँ का मुख देखने लगे। उत्तर सुखिया ने दिया, 'मैं तुम्हारी दादी लगती हूँ।'

'हमारी दादी? वह तो चली गयी है।'

'कहाँ चली गयी है?' सुखिया ने पूछा।

'पता नहीं। माँ कहती थी बहुत दूर। अब वह नहीं आयेगी।'

सुखिया ने मोहिनी से कहा, 'इसे स्कूल क्यों नहीं भेजती? क्या आयु है इसकी?'

'मैं इसे घर पर पढ़ाती हूँ।'

'और यह दादी की बात भी तुमने पढ़ायी है?'

'यह इसे इसकी माँ ने बतायी थी। जब इसकी दादी को चिता पर रखकर आग लगाने लगे तो यह रोने लगा था।'

'तो यह बात है।' सुखिया ने निक्कू की ओर देखकर कहा, 'मैं तुम्हारी एक दूसरी दादी हूँ।'

'ओह! पर वह तो मुझे नित्य एक खोये का लड्डू खिलाया करती थीं।'

'जब तुम अपनी दादी के घर में जाते थे तब न? अथवा यहाँ खिलाने आती थीं?'

'नहीं। जब मैं वहाँ माँ के घर में होता था।'

'और नानी लड्डू नहीं खिलाती?'

'नानी तो मक्खन-टोस्ट खिलाती हैं।'

'तुमको क्या पसन्द है?'

'मैं लड्डू खाना चाहता हूँ।'

'तो मेरे घर में आओ। मैं नित्य लड्डू खिलाया करूँगी।'

'वहाँ माँ भी होगी?'

'वहाँ एक अन्य माँ है। वह तुमको पसन्द करेगी तो बहुत प्यार करेगी।'

'कैसे पसन्द करेंगी?'

'तुम सदा सत्य बोलोगे, चोरी नहीं करोगे, नित्य स्नान कर साफ सुथरे कपड़े पहना करोगे और दूसरों से लड़ोगे नहीं तो वह माँ तुमसे बहुत प्यार करेगी।'

'हमारी माँ तो कहती हैं कि नानी के घर में रहा करो। यह बहुत प्यार करेंगी।'

'ठीक है। यह तो बहुत प्यार करती हैं, परन्तु जब एक और प्यार करने वाली मिल जाये तो प्यार दुगुना हो जायेगा। जैसे एक के स्थान पर दो लड्डू मिल जाने से होता है।'

निक्कू नयी दादी की बात को समझ कर पूछने वाला था कि दादी और नयी माँ का मकान किधर है, परन्तु इस समय सन्तराम अँगड़ाई लेता हुआ बैठकघर में आ गया। बैठकघर में किसी के बातें करने का शब्द सुन, वह आँख खुलते ही वहाँ आया था। ज्यों ही बैठकघर में पाँव रखा तो माँ को वहाँ बैठा देख वह स्तब्ध खड़ा रह गया। एकाएक उसके मुख से निकल गया, 'माँ! तुम? कैसे आयी हो?'

'तुम्हारे पिता ने भेजा है।'

'यह मोहिनी की शरारत प्रतीत होती है।'

'इसमें शरारत क्या है? तुमने इसके द्वारा मकान बनवाने का प्रस्ताव भेजा है। उसी के सम्बन्ध में मैं यहाँ आयी हूँ?'

मकान की बात सुन, सन्तराम माँ के सामने बैठ गया और बोला, 'तो जल्दी बताओ! मैं दफ्तर जाना चाहता हूँ। पहले ही बहुत देर हो गयी है।'

'बहुत लम्बी बात नहीं। तुम्हारे पिता ने यह विचार किया है कि तुम लोग रात का भोजन हमारे घर पर करना। उस समय आर्किटैक्ट भी वहाँ होगा। वह तुम्हारे मकान के विषय में कुछ बातें तुमसे जानना चाहेगा। तब नक्शा बन सकेगा।'

'पर आज तो मुझे कुछ काम है। मैं आ नहीं सकूँगा।'

'देखो सन्तराम!' माँ ने कहा, 'मकान का प्रत्येक कार्य मुहूर्त से आरम्भ किया जाता है और नक्शे के विषय में बातचीत करने का मुहूर्त आज रात दस बजे है। इस कारण भोजन पहले होगा। फिर नक्शे पर विचार का मुहूर्त है। यदि मुहूर्त टल गया तो फिर न जाने यह पुनः कब अनुकूल हो।'

'पर मैं तो मुहूर्त मानता नहीं।'

'ठीक है। तुम्हारे पिता तो इस बात पर विश्वास करते हैं। तुम्हारा मकान वही बनवा रहे हैं न?'

सन्तराम निरुत्तर हो गया। वह तो पिताजी से एक कौड़ी पाने की भी आशा नहीं करता था। अब उसकी इच्छानुसार मकान बन रहा था। प्रलोभन बहुत प्रबल था। इस कारण वह मान गया। सुखिया उठी और बोली, 'तुम, मोहिनी और बच्चे सब लोग साढ़े आठ बजे आ जाना।'

'आ जायेंगे।' सन्तराम ने कह दिया।

अब सुखिया निक्कू से बोली, 'देखो निक्कू! हमारे घर आकर रहोगे तो तुमको नित्य लड्डू खाने को मिलेंगे।'

'बड़ी दादी! आऊँगा।'

'ओह!' अनायास सन्तराम के मुख से निकल गया।

सुखिया गयी तो सन्तराम ने मोहिनी को डाँट के भाव में कहा, 'क्या-क्या सिखा आयी हो पिताजी को?'

'कुछ बुरी बात तो सिखायी नहीं।' मोहिनी ने भी अब साहस पकड़ पति की आँखों में देख कह दिया, 'मकान की बाबत कहा है, नक्शे की बात कही है और साथ ही आपके रात घर न आने की बात कही है।'

'तो यह बात है। तुम मेरी चुगली कर आयी हो।'

'यह चुगली की बात है?'

'हाँ, जो बात मैं बताना नहीं चाहता था, तुम बता आयी हो। यही तो चुगली करना होता है।'

'मैं इसे चुगली करना नहीं समझती। घर के लोग काम-धन्धे पर घर से बाहर आते-जाते रहते हैं।'

'तो क्या काम बताया है। मेरे रात घर से बाहर जाने का?'

'मैंने आपके रात वाले काम के विषय में कुछ नहीं बताया। मैंने तो यही कहा था कि आप रात घर पर नहीं आये।'

इससे सन्तराम को सन्तोष नहीं हुआ। परन्तु बैठक में रखे टाईम पीस में दस बज रहे थे। उसे कार्यालय में जाना था।

::7::

सत्य ही पिताजी के घर में भोजन पर एक बाहरी व्यक्ति भी था। धनपतराय ने उसका परिचय करा दिया। उसने कहा, 'यह हैं रघुवीर शरण आर्किटैक्ट। इनको मैंने तुम्हारे मकान के नक्शे के सिलसिले में बुलाया है। भोजन के उपरान्त मकान के विषय में इनसे बात कर लेना। मैंने लक्खीराम के मकान के बगल में जो रिक्त भूमि है वह तुम्हारे मकान के लिये निश्चय की है।'

'पर पिताजी! वह तो एक एकड़ है। इतना बड़ा मकान में क्या करूँगा?'

'मैंने विचार किया है कि धनपतराय के बड़े लड़के का मकान एक एकड़ भूमि से कम क्या होगा। उसमें बच्चों के खेलने के लिये लॉन होना चाहिये। एक छोटा-सा फलोद्यान और पुष्पोद्यान भी होना चाहिये। मकान में सात कमरे, एक बैठकघर, तीन स्नानागार, शौचालय और दो गोदाम होने चाहियें। रसोईघर भी दो होंगे। नौकरों के रहने के लिये भी मकान से पृथक् कोठरियाँ होनी चाहियें।'

'यह ठीक है पिताजी! परन्तु आप नहीं जानते और मैं जानता हूँ कि इतनी बड़ी कोठी दो प्राणियों के लिये सरकार स्वीकार नहीं करेगी। वह एक-दो कमरे मेरे लिये छोड़कर शेष पर स्वयं अधिकार कर लेगी।'

'पर सरकार ऐसा क्यों करेगी?'

'अन्य लोग, जिनके पास मकान नहीं, उनको वे कमरे दे देगी और बाहर का खुला लॉन अन्य बेघर वाले गरीबों के लिये लेगी।'

'मैं इसका कोई कारण नहीं समझता। यह भूमि मैंने पूरा दाम देकर सरकार से ही मोल ली है। गरीबों के लिये अभी सरकार के पास बहुत भूमि है। जब वह समाप्त हो जायेगी तो सरकार मेरी मोल ली हुई भूमि का दाम देकर वापस ले सकती है।'

सन्तराम ने कह दिया, 'हमारी सरकार ने यह निश्चय किया है कि इस देश में समाजवादी राज्य होगा। अर्थात् ऐसा राज्य होगा जो ऊँच-नीच में भेद मिटायेगा।'

'मैंने इसके विरुद्ध कुछ नहीं कहा। मैं तो यह कह रहा है कि सरकार के पास भूमि है, धन है, और जन हैं। वह पूर्ण जनता के लिए मकान बना दे। भला मैं कौन हूँ आपत्ति करने वाला?'

'मेरी आपत्ति यह है कि बेघरों में वे जो अपने किसी भूल के कारण निर्धन हैं, उन्हें मकान नहीं बनवा कर देने चाहिये। पहले उनको मकान मिलने चाहिये जो मेहनत-मजदूरी कर भी मकान नहीं बना सके। बाद में निकम्मे, निखट्टों और बुद्धि-विहीनों के लिये भी विचार कर लिया जायेगा।'

'परन्तु आपका यह सब-कुछ क्या आपकी अपनी कमाई का है?'

'तो और किसका है?'

'आपकी दुकान पर, खेतों और बगिया में काम करने वालों की मेहनत का फल है। आपने उनसे उपार्जित धन को अपने अधिकार में कर रखा है।'

धनपतराय हँस पड़ा। हँसकर बोला, 'देखो सन्तराम! एक कथा है। एक बार मनुष्य-शरीर के अंग परस्पर झगड़ने लगे थे। झगड़े का कारण यह था कि हाथ और पाँव कहने लगे कि मेहनत मज़दूरी तो वे करते हैं, परन्तु खाता, स्वाद लेता और तृप्त होता है मुख, ज़िह्वा और पेट। इस कारण जब तक उनकी मेहनत-मजदूरी का फल उनको नहीं मिलेगा, वे काम नहीं करेंगे।

'उन्होंने काम से हड़ताल कर दी। शरीर को अन्न मिलना बन्द हो गया और परिणाम यह हुआ कि पूर्ण शरीर दुर्बल होने लगा। विवश मुख और जिह्वा ने हाथ और पाँव का आग्रह मान लिया। उन्होंने स्वीकार कर लिया कि जितना कुछ भी हाथ-पाँव कमा कर लायेंगे, सब उनको ही दे दिया जायेगा। वे कुछ भी नहीं लेंगे।

'हाथ और पाँव पुनः काम करने लगे। पाँव शरीर को दुकान पर ले गये। हाथ वहाँ जा काम करने लगे। धनोपार्जन होने लगा। मध्याह्न के समय उपार्जित धन से अन्न, मिठाई और दूध इत्यादि लिया गया और वह हाथ और पाँव के सामने रख दिया गया।

'अब हाथ और पाँव उस मिठाई, दूध तथा अन्न को देखने लगे। परन्तु खाने के लिये मुख बना था। स्वाद लेने के लिये जिह्वा बनी थी। मेहनत करने से अर्जित अन्न, अन्य खाने की सामग्री हाथों और पाँवों के सामने रखी थी। हाथ, अन्न और मिठाई को छूते थे, परन्तु न तो स्वाद आता था और न ही मिठाई इत्यादि को हाथ में पकड़ लेने से तथा मुख की भाँति हाथ में मसलने से तृप्ति होती थी।

'आधा घण्टा-भर खाद्यान्न से कल्लोल करने के उपरान्त हाथ ने मुख को कहा, 'भैया! इसे खाओ।' मुख ने स्पष्ट कह दिया, 'मैंने इसका उपार्जन नहीं किया। अतः मैं इसका भोग नहीं करूँगा।' जिह्वा और दाँतों ने भी उसे लेने से इन्कार कर दिया। वे बोले, 'हम तो तब ही इसका ग्रहण करेंगे, जब हम स्वतः इसका उपार्जन कर पायेंगे।

'और परिणाम यह हुआ कि शरीर मृत-प्रायः हो गया। यही तुम चाहते हो कि दुकान और खेतों की कमाई काम करने वालों को दे दी जाये। परन्तु वे हाथ और पाँव की भाँति खाद्यान्न को पकड़ कर मलीदा तो कर देंगे और उनके ऐसा करने से समाज-रूपी शरीर की पुष्टि नहीं होगी।'

सन्तराम ने उद्विग्न हो कह दिया, 'यह कथा किसी मूर्ख ने कही है।'

'तुम्हारे मूर्ख बाप ने कही है और उसने यह अपने एक धर्म-ग्रन्थ में से पढी है।'

'देखिये, पिताजी! मैं बताता हूँ। दुकान के नौकर और खेतों तथा बगिया में काम करने वाले कर्मचारियों के मुख हैं, पेट हैं। वे खायेंगे तो तृप्त भी होंगे और स्वाद भी लेंगे। आपका यह उदाहरण कि मज़दूर पाँव के समान हैं, ठीक नहीं बैठता।'

'उनका अपना मुख तो है, परन्तु मज़दूर समाज का मुख और पेट नहीं है। और फिर पेट खाता है तो वह खाये हुए को पचा कर पूर्ण शरीर में रक्त का संचार करता है। मज़दूर खायेगा तो वह समाज के दूसरे अंगों को ऐसे नहीं पहुँचा सकेगा जैसे कि हाथ और पाँव नहीं पहुँचा सकेंगे।'

'वह काम सरकार कर देगी।'

'ठीक है। परन्तु सरकार तो उपार्जन नहीं करती। सरकार तो वितरण करने वाली है। आपत्ति तो वही रहेगी जो मुझ पर कर रहे हो। जो उपार्जन नहीं करता, वह वितरण क्यों करता है?'

'परन्तु पिताजी! आप वितरण तो करते नहीं। आप तो सब कुछ अपने पास ही रख लेते हैं।'

'यह तुम कैसे कहते हो? महीने की पहली तारीख को आकर देखना। मैं सबको जितना-जितना उसका भाग में बनता है, बाँटता हूँ।'

'कभी यह होता था कि बाँटने वाले मालिक भूल से अधिकारियों को कम और अनधिकारियों को अधिक दे देते थे, परन्तु अब सरकारी नियमोपनियमों से उस वितरण में गलती नहीं की जा सकती।'

'न्यूनातिन्यून वेतन नियत हैं। काम सीखने वाले के लिये भी एलाउंस निश्चय किया हुआ है। बोनस और अन्य प्रकार की सुविधाएँ भी नियत हैं।'

'इस पर भी पिताजी, आपके पास इतना बच जाता है कि आज मेरे लिये डेढ़ लाख लागत की कोठी बनवाकर दे सकते हैं।'

'हाँ, देखो सन्त, मैं तो यह रुपया किसी पर व्यय करने ही वाला हूँ। तुम्हारी बहू ने बताया कि वह मकान के बिना कष्ट में है। इस पर मैंने इस मकान की योजना विचार

ली। तुमसे पूछा था कि तुम अपनी आवश्यकताएँ बताओ। तुम बता नहीं सके। इस कारण मैंने अपने विचार से यह निश्चय किया है जो मैं बता चुका हूँ।'

'परन्तु पिताजी! यह मेरे लिये बहुत अधिक है।'

'तो तुम स्वयं रघुवीरशरणजी को बता दो कि कितने बड़े मकान से तुम्हारा काम चल जायेगा। उतना बड़ा ही बनवा दूँगा।'

'मुझे एक छोटा-सा मकान जिसमें तीन कमरे, टट्टी, गुसलखाना और रसोईघर हो। बस यही चाहिये।'

'ठीक है। इतना बड़ा ही बन जायेगा। भोजनोपरान्त रघुवीरजी तुमको एक कच्चा 'प्लान' बनाकर दिखा देंगे और तब तुम विचार कर लेना।'

'और आप बचे हुए धन का क्या करेंगे?'

'किसी अन्य के लिये मकान बनवा दूँगा।'

'और उनको भी ऐसे ही दे देंगे जैसे मुझे दे रहे हैं?'

'उनसे भाड़ा लूँगा जैसे तुमसे ले रहा हूँ।'

'मुझसे भाड़ा ले रहे हैं? कब और किस प्रकार?'

'तुम मेरी पोती लक्ष्मी के बच्चों का पालन-पोषण करते हो। यह मैं भाड़े के रूप में ही समझता हूँ।'

इस पर तो सन्तराम हँस पड़ा। पिता ने पुनः कहा, 'उस दिन तुम काहन की दुकान पर गये थे और उसे समाजवाद का भूत दिखाकर डाँट-डपट आये थे। इससे मैंने तुम्हारे समाजवाद पर चिन्तन किया है और एक परिणाम पर पहुंचा हूँ।'

'मेरा विचार है कि यह समाजवाद मृग-मरीचिका है। तुम्हारी सरकार न तो निर्धनों को काम दिला सकेगी और न ही उनको ठीक उजरत दे सकेगी। सरकारी अधिकारी भारी वेतन लेंगे, उससे मज़ा उठायेंगे; परन्तु वे धन का ठीक-ठीक वितरण नहीं कर सकेंगे। पिछले वर्ष केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों का वेतन बढ़ा था और उससे अधिक अनुपात में खाने-पीने की तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का दाम बढ़ गया। सरकारी वेतनधारियों का वेतन बढ़ा तो असरकारी कर्मचारियों ने भी हल्ला-गुल्ला किया और उनके भी वेतन बढ़ गये। इससे अन्न, साबुन, तेल और कपड़े इत्यादि का भी दाम बढ़ गया है।'

'तुम यह बताओ कि कितने सरकारी कर्मचारियों ने वेतन बढ़ने से अपने मकान बनवाने की योजना की है। कुछ ने अवश्य बनवाये होंगे, परन्तु इतने तो जब

वेतन नहीं बढ़े थे, तब भी बनवाते रहते थे।'

'और इससे भी अधिक आवश्यक प्रश्न यह है कि कितने कर्मचारियों ने अपने दान-दक्षिणा के बजट में वृद्धि की है?'

'इसकी क्या आवश्यकता है? दान-दक्षिणा का काम सरकार ने अपने हाथ में ले रखा है।'

'तो फिर मेरे पास मकान के लिये किसलिये आये हो? तुम्हें सरकार के पास जाना चाहिये था। तुम्हारे अतिरिक्त भी मेरे पास लोग आते रहते हैं और मैं यथासम्भव उनको मकान बनवा कर दे रहा हूँ। इस समय तक मैंने लगभग साठ छोटे-बड़े मकान बनवा कर अपने कर्मचारियों और अन्य को रहने के लिये दिए हैं।'

'परन्तु आप तो उनका भाड़ा लेते हैं?'

'वह तो सरकार भी लेती है। इस दिशा में भी मैं सरकार से कुछ अधिक ही कर रहा हूँ।'

'क्या कर रहे हैं?'

'मैं मकान-भाड़ा सरकार से कुछ अधिक लेता हूँ। परन्तु जो यह अधिक भाड़ा देते हैं और फिर मकान की मरम्मत स्वयमेव करवाते हैं, उनका अधिक भाड़ा तथा मरम्मत का दाम बैंक में उनके नाम ही जमा करवा देता हूँ और जब वह धन ब्याज डालकर मकान पर लगे दाम के बराबर हो जाता है तब मकान भाड़े पर रहने वाले का अपना हो जाता है। तदनन्तर उसे भाड़ा देना नहीं पड़ता और मकान की रजिस्ट्री उसके नाम हो जाती है।'

'यह योजना बैंक की है। मैं तो केवल 'कस्टोडियन' के रूप में काम करता हूँ। मेरा इसमें इतना योगदान है कि मकानों की मेरी इस योजना में सम्मिलित होने वाले अपने कर्मचारियों को मैं उनकी मितव्ययता का पुरस्कार प्रति वर्ष देता हूँ और साथ ही उनको यह सुविधा देता हूँ कि वे अपने नियमित बोनस की रकम मकान के दाम में सम्मिलित कर शीघ्र मकान के मालिक बन सकें। कुछ लोग इस योजना से भी लाभ उठा रहे हैं।'

'आपके कितने कर्मचारी हैं जो आपकी मकान बनाने की योजना से लाभ उठा रहे हैं?'

'छोटे-बड़े साठ के लगभग मकान बनवा चुका हूँ। पिछले एक वर्ष में दस मकान बनवाये हैं। इस वर्ष भी लगभग इतने ही और बनवाने का विचार है। उनमें ही एक तुम्हारे लिये भी है।'

सन्तराम निरुत्तर हो चुका था। यद्यपि उसे अपने पिता की सब बातों पर विश्वास नहीं आया था, परन्तु वह उनके मुख पर कह नहीं सका कि वह झूठ बोल रहे हैं।

::8::

मकान के भीतर मोहिनी अपनी सास सुखिया और देवरानी मालती के साथ बैठी खाना खा रही थी। लक्ष्मी के बच्चे निक्कू और मिट्ठू काहन के बच्चों में बैठे भोजन कर रहे थे।

स्त्रियों में भी इसी विषय पर चर्चा चल रही थी। चर्चा आरम्भ तो मकान के विषय में ही हुई थी। सुखिया ने मोहिनी को बताया था, तुम्हारे श्वसुर अपने बड़े लड़के के लिये एक सात कमरों का मकान बनवाने की बात कह रहे हैं।'

मोहिनी भौंचक्की हो मुख देखती रह गयी। सुखिया ने कहा, 'क्यों मुख क्या देख रही हो? खाना किसलिये छोड़ दिया है?'

'माँ जी!' मोहिनी ने झिझकते हुए कहा, 'इतना बड़ा मकान क्या करूंगी?'

'तो कितना बड़ा मकान चाहिये तुमको?'

'तीन कमरों का। इतने बड़े मकान की सफाई और देखभाल कौन करेगा?'

'मैं समझती हूँ कि तीन-चार नौकर रखने पड़ेंगे।'

'और उनका वेतन कौन देगा?'

'तुम्हारे श्वसुर कह रहे थे कि सन्त इतनी रिश्वत लेता है कि उसके लिये तीन-चार नौकर रखना कठिन नहीं।'

'रिश्वत के धन में से यह कुछ नहीं हो सकेगा। तब तो वह घूस लेने की बात सिद्ध हो सकेगी और सरकार नौकरी से निकाल देगी। इस प्रकार की कमाई तो नाच-रंग, खेल-तमाशों में ही व्यय हो सकती है। न तो वह मकान बनाने में और न ही किसी अन्य दृष्ट मद में व्यय की जा संकती है।'

'तो फिर रिश्वत लेने से लाभ क्या हुआ? मद्य-सेवन से तो बुद्धि कुण्ठित ही होती है। अर्थात् यह तो ऐसा चूहा है जो पेड़ की जड़ों को ही काट रहा है।'

विवश मोहिनी ने बात बदल दी। वह पेड़ की जड़ काटने वाले चूहे का दृष्टान्त

सुन घबरा उठी थी। उसने बात बदल मालती से पूछ लिया, 'मालती बहन! तुमको तुम्हारे घर वाले ने कितने भूषण बनवा दिये हैं?'

'जब से सोने का नियन्त्रण हुआ है तब से तो मैंने बाज़ार से सोना लेकर एक भी भूषण नहीं बनवाया। हाँ, घर से सोना निकाल-निकाल, उसमें रत्न जड़वा कर तो कई भूषण बनवाये हैं। पिछले वर्ष कंगन बनवाये थे। उनमें तीन सहस्र रुपये के रत्न ही लग गये हैं।'

मोहिनी के मुख में पानी भरने लगा था। वह विचार करती थी कि उसका पति भी अपनी अनियमित आय इस काम में व्यय कर ही सकता है।

सास ने बात पुनः मकान के विषय पर ही घुमा दी। उसने पूछा, 'तुम्हारे पास मकान बनाने के लिये कुछ अपने पास भी जमा-पूँजी है अथवा नहीं?'

'मैं समझती हूँ कि कुछ भी नहीं है। उनके बैंक की पास-बुक मेरे पास है। उसमें तो उनकी जमा रकम सत्तर रुपये है। वह सेविंग बैंक की पास-बुक है। पिछले वर्ष एक रुपया भी जमा नहीं हुआ। केवल सूद के बारह अथवा तेरह रुपये जमा हुए हैं।'

अब मालती ने कहा, 'पर तुम्हारे पति यह नौकरी छोड़ क्यों नहीं देते? खाली जल मथने से क्या बनता है?'

'परन्तु वह कुछ अन्य काम भी तो नहीं कर सकते। यह नौकरी करते-करते जीवन व्यतीत हो गया है। अतः अब वह कुछ अन्य काम करने के योग्य भी तो नहीं।'

'परन्तु नौकरी करने के भी तो वह शीघ्र ही अयोग्य होने वाले होंगे?'

'हाँ। उनके सेवा-मुक्त होने में चौदह-पन्द्रह वर्ष और हैं।'

'तब क्या करोगी?'

'जो करूंगी उसका पहला चरण तो मैंने आरम्भ कर दिया है। अर्थात् माताजी तथा पिताजी की शरण में आ गयी हूँ।'

अब पुनः मालती ने पूछा, 'वे तो बिना किसी प्रकार का काम किये किसी को कुछ नहीं देते।' मोहिनी ने उत्तर दे दिया, 'मैं भी वह कर दूंगी जो तुम कर रही हो।'

मालती ने मुस्कराते हुए कहा, 'कर सकोगी क्या?'

'क्यों नहीं?'

'मैंने पिताजी के चार पोते और एक पोती को जन्म दिया है। वैसे मैं समझती हूँ कि यदि चाहूँ तो दो सन्तान और दे सकती हूँ, परन्तु पिताजी ने कहा है कि समाजवाद आ रहा है और इसमें गुड़, खल एक ही भाव पर बिकने वाले हैं। इसलिये गुड़ भी

बनाऊंगी तो वह खल के भाव ही बिकेगा। इस कारण जितना गुड़ बनाया है, उतने का ही स्वाद लूँ। अपनी आवश्यकता से अधिक बनाया तो खल के भाव बिकेगा।'

मोहिनी इस उपमा का अर्थ समझने के लिये अपनी देवरानी का मुख देखने लगी। मालती मुस्करा रही थी और वह अधिक व्याख्या में जाना नहीं चाहती थी, परन्तु सुखिया को अपनी बड़ी बहू को कुछ शिक्षा देनी उचित प्रतीत हो रही थी। वह इसी प्रयोजन से उसे अपने घर लायी थी। उसकी योजना तो यह थी कि यदि कुछ काल तक दोनों भाइयों के परिवारों में मेल-जोल रहा तो अनभिज्ञ भी ज्ञानवान हो जायेंगे।

इस कारण मालती की बात की व्याख्या सुखिया ने कर दी। उसने कहा, 'देखो मोहिनी! मालती की पाँच सन्तान हैं। चार लड़के हैं और एक लड़की है। इनके पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा में इनके माता-पिता और बाबा, दादी को भारी परिश्रम करना पड़ रहा है। आने वाले समाजवाद में यह परिश्रम भी बहुत हो जायेगा। तुम्हारे श्वसुर का विचार है कि यदि बच्चों की संख्या अधिक हो गयी तो इनके माता-पिता को परिश्रम अधिक करना पड़ेगा। समाजवाद में आय और सुविधाएँ अधिक नहीं रहेंगी। अतः अधिक बच्चों को ठीक ढँग पर शिक्षा देनी प्रायः असम्भव हो जायेगी। इस कारण उन्होंने मालती को कह दिया है कि बस।'

'तो फिर बस कैसे करेगी?'

'यह तुम इससे पृथक् में पूछोगी तो बता देगी। परन्तु तुम्हें इससे पूछने की आवश्यकता नहीं। तुम्हें तो परमात्मा ने ही बस कर रखी है।'

इस 'बस' का मोहिनी को बहुत रोष था, परन्तु वह अपना रोष अपनी सास को बता नहीं सकी। वह चुप रही।

::9::

सन्तराम और उसकी पत्नी मोहिनी रात के ग्यारह बजे घर पहुँचे तो दोनों के कमरे में जाते ही मकान के विषय पर चर्चा होने लगी। सन्तराम ने बताया, 'मैं आर्किटैक्ट को इतने बड़े मकान का नाक्शा बनाने के लिये कह आया हूँ जिस पर तीन लाख रुपये से ऊपर व्यय आयेगा।'

'और मैं आपकी माताजी से कह आयी हूँ कि तीस-चालीस हजार से अधिक

मकान पर व्यय नहीं होना चाहिये। यदि मकान के साथ पिताजी कुछ नकद भी दे दें तो हमें बहुत सुख पहुँचेगा।'

'और माताजी ने क्या कहा है?'

'उन्होंने तो यही कहा है कि जैसा हम चाहेंगे, हो जायेगा।'

'तो तुम मुझसे भिन्न इच्छा प्रकट कर आयी हो?'

'मैंने यह विचार किया है कि जितना बड़ा मकान होगा, उतना ही उसका भोग महँगा होगा। आपके वेतन में से तो कुछ बचता नहीं। ऊपर की आय को आप प्रत्यक्ष रूप में व्यय करना चाहते नहीं। परिणाम-स्वरूप मकान गन्दा रहेगा और टूट-फूट जायेगा। यह सुख के स्थान दुःख देने वाला हो जायेगा।'

'मैंने तो यह विचार किया था कि मकान का एक भाग ही अपने प्रयोग में लाऊँगा। शेष भाड़े पर उठा दूँगा। इससे अपनी प्रत्यक्ष आय में वृद्धि कर लूँगा।'

'अर्थात् आप वही करेंगे जिसकी आप दिन-रात निन्दा करते रहते हैं?'

'निन्दा तो इसलिये करता था कि वैसा मैं स्वयं कर नहीं सकता। निन्दनीय वस्तु थी पूँजी। यह मेरे पास कभी हुई नहीं। अन्य को पूँजी के बल पर धनवान होते देख मुझे ईर्ष्या होती थी।'

'यह तो बहुत बड़ी बेईमानी थी। पूँजी न रखना गुण नहीं था, दोष था। आप गुणहीन थे, इस कारण गुणवानों की निन्दा करते थे।'

'यह नीति है।'

'इसी ईर्ष्या के वश आप अपने पिता की निन्दा करते थे?'

सन्तराम इस प्रकार निरुत्तर हो मन-ही-मन झेंप रहा था। एकाएक उसे एक युक्ति सूझी। उसने कह दिया, 'बात यह है मोहिनी! आज संसार पूँजीवादी है। इसी पूँजीवादी संसार में रहते हुए आदर्शवादिता छोड़नी पड़ रही है। वैसे मैं मन से अभी भी यह विश्वास रखता हूँ कि पूँजीवाद भगानक रोग है। इससे मानव-समाज में भयंकर दोष उत्तर हो रहे है।'

'आपका यह विचार अपने दिल को संतोष देने के लिये ठीक ही हो सकता है, परन्तु मैं क्या समझी हूँ कि आप मन से इस बात के इच्छुक थे कि आपके पास भी धन आ जाए तो आप उसे पूँजी मे रूप में प्रयोग करेंगे। स्वयं इन्द्रिय-लोलुप होने के कारण धन एकत्रित कर नहीं सकते थे। इस कारण जिनके पास धन है, उन्हें आप गालियाँ देते है। आप कितनी बार मेरे पिताजी को भी सूदखोर, निर्धनों का खून चूसने वाला कहकर निन्दा कर चुके हैं। यह तो भारी पाप हो रहा है।'

सन्तराम को आज पत्नी की जली-कटी सुन, क्रोध आने लगा था। झूठे और व्यसनी लोग जब निरुत्तर होते हैं तो क्रुद्ध हो जाते हैं और उनका क्रोध दुर्बलों पर निकलने लगता है। अतः सन्तराम ने क्रोध में कह दिया, 'तो मैं पापी हूँ?'

'हाँ। सर्वथा अयोग्य और दुर्बलात्मा होने से दूसरों से ईर्ष्या करने वाले, महान पापी।'

इतना सुनते ही सन्तराम ने मोहिनी के मुख पर चपत लगा उसकी कमर में एक लात भी जमा दी।

मोहिनी के पीटे जाने का यह पहला ही अवसर नहीं था। पिटाई तो पहले भी कभी-कभी हो जाया करती थी। शराबी पति से और कुछ आशा भी नहीं की जा सकती थी।

पहले मतभेद प्रायः वेश्याओं के तथा मद्य-सेवन के विषय पर हुआ करता था। उसमें मोहिनी उसे धर्म-विहीन कहा करती थी। धर्म की महिमा तो सन्तराम के मन में कभी थी नहीं। इस पर भी जब वह उत्तर नहीं दे सकता था तो पत्नी को पीट दिया करता था, परन्तु आज तो बात सीमा से अधिक हो गयी थी। उसे न केवल धर्म-विहीन ही कहा गया था, वरंच बेईमान और पापी भी सिद्ध कर दिया गया था। इस कारण पिटाई पूर्व से अधिक हुई। मोहिनी ने वहां से भाग बच्चों के कमरे में जा, भीतर से द्वार बन्द कर जान बचायी।

सन्तराम अपने सोने के कमरे में अकेला लेटा-लेटा एक अन्य स्त्री को घर में लाने का विचार करने लगा था। यह बात उसे लुभायमान तो समझ आयी, परन्तु इस समय उसकी अपनी उमर चवालीस वर्ष की हो गयी थी। साथ ही उसे अपने पिताजी से मकान भी मिलने वाला था। नयी पत्नी, विवाहित अथवा अविवाहित, लाने पर पिता नाराज भी हो सकता है और मिलने वाला मकान नहीं भी मिल सकता।

अतः वह दुविधा में पड़ा बहुत रात तक कल्पना के घोड़े दौड़ाता रहा। सबसे बड़ी बात यह थी कि उसके पास अपना रुपया तो एकत्रित होता नहीं था। खाने-पीने और अन्य आवश्यकताओं के पदार्थ इतने महँगे हो गये थे कि वेतन में घर का खर्चा बहुत कठिनाई से होता था। उसकी कमी को पूर्ण करने के लिये कभी-कभी ऊपर की आय में से भी व्यय करना पड़ता था। ऊपर की आय का भोग तो हो सकता था, परन्तु वह जमा नहीं की जा सकती थी।

मद्य-सेवन से बुद्धि इतनी कुण्ठित हो गयी थी कि इस विडम्बना से निकलने का कोई उपाय सूझ नहीं पड़ता था। इससे वह पूँजीपतियों को गाली दे-देकर स्वयं समाजवादी

होने का अभिमान करने का स्वभाव बना बैठा था।

आज तो मोहिनी के मस्तिष्क में भी उबाल आने लगा था। पहले वह समझती थी कि पति के अतिरिक्त उसका कोई आश्रय स्थान नहीं। उसका अपना पिता सूद पर धन देता था और निर्वाह योग्य आय कर रहा था। परन्तु मोहिनी के तीन भाई थे और वे पिता से कुछ भी ठोस सहायता पाने में बाधक थे। उसके पति ने उसे सास-श्वसुर से मिलने से मना कर रखा था। वह भाड़े के मकान में रहते थे और उनका पिता गाँव में और नगर में मकान बनवा-बनवा कर भाड़े पर दे रहा था। इस कारण मोहिनी के पिता ने मोहिनी को उसके श्वसुर की ओर संकेत कर दिया।

तदनन्तर पिता के प्रस्ताव ने सन्तराम के पूर्ण समाजवाद को नाली में बहा दिया तो पत्नी को चेतना हुई कि वह जीवन-भर मूर्ख व्यक्ति की सेवा करती रही है। अब रात-भर वह अपनी सास के पास जाकर रहने की योजना बनाती रही थी।

दिन के समय वह उठी और स्नानादि से निवृत्त हो, रात की विचारी हुई बात पर मनन करने लगी। उसका पति और बच्चे अभी उठे नहीं थे। वह रसोईघर में जा, रसोई का प्रबन्ध करती हुई अपनी योजना पर विचार करने लगी तो उसे इसमें भी बाधा दिखायी दी। वह विचार करती थी कि क्या उसके पति की माँ यह पसन्द करेगी कि उसकी पतोहू उसके पुत्र को छोड़कर उससे पृथक् रहने लगे? क्या वह इसमें सहायक हो सकेगी?

इसके अतिरिक्त लक्ष्मी के बच्चों की समस्या थी। एक वर्ष से वह उसी के पास रहते थे और वह उनसे स्नेह अनुभव करने लगी थी। वह उन्हें लक्ष्मी के घर भेज दे अथवा अपने साथ अपनी सास के घर ले जाये? क्या उसकी सास इसे पसन्द करेगी? लक्ष्मी अपने बच्चों को वहां जाने से मना तो नहीं करेगी? ये सब उसकी विचारित योजना में बाधाएँ थी और उसे योजना चलाने में कठिनाई होने लगी, परन्तु रात उसकी पति से पिटाई इतनी हुई थी कि अभी भी उसकी कमर और पीठ में पीड़ा हो रही थी। यह पीड़ा उसे योजना को चलाने में उत्साहित कर रही थी।

आठ बजे के लगभग बच्चे उठे और सन्तराम भी जगा। बच्चे अपने नित्य-कर्म से निवृत्त हो, रसोईघर में कलेवा लेने के लिये आ गये। सन्तराम उनके उपरान्त वहाँ आया। मोहिनी ने सबके सम्मुख दाल-भात रख दिया और स्वयं मौन बैठी अपनी योजना पर चिन्तन करती रही।

सन्तराम ने भोजन किया और पत्नी को नित्य से अधिक शोकाकुल देख समझ गया कि अभी तक रात की पिटाई की स्मृति है। उसने उसके दुख को कम करने के

लिये कह दिया, 'मोहिनी! रात नित्य से कुछ अधिक बात हो गयी थी।' सन्तराम बच्चों के सम्मुख पिटाई का शब्द उच्चारण नहीं कर सका। बिना पिटाई शब्द का उचारण किये वह अपने कार्य की सफाई देने लगा, 'वास्तव में रात मेरा नशा टूटा हुआ था। पिताजी के घर में तो पी जाती नहीं और रात पीने से पहले ही तुमसे विवाद खड़ा हो गया। व्यर्थ में वह कुछ हो गया।'

मोहिनी को पुनः क्रोध चढ़ आया और बोली, 'उस दिन आपने पीटा था तो कहा था कि आप कुछ अधिक पी गये थे और उचित-अनुचित में भेद नहीं कर सके थे। रात आपको पीने को मिली नहीं थी और नशा टूट जाने से आपको उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं रहा था। मैं तो यह विचार कर रही हूँ कि मेरे लिये तो आप पियें, न पियें एक समान है। मेरी तो पिटाई होनी ही है।'

सन्तराम की हँसी निकल गयी। मोहिनी को यह हँसी का विषय समझ नहीं आ रहा था। इससे उसके मन में बन रही योजना दृढ़ होने लगी। वह बच्चों का मोह छोड़ने के लिये मन को कठोर करने लगी थी। वह सास के मन में अपनी दयनीय अवस्था का प्रभावी ढँग से वर्णन करने के लिये शब्दों का चयन करने लगी थी। इस कारण वह पुनः मौन हो गयी।

::10::

सन्तराम अपने कार्यालय में गया तो मोहिनी ने बच्चों को वस्त्र पहना तैयार करना आरम्भ कर दिया। निक्कू ने पूछा भी, 'नानी माँ! कहाँ जा रही हो?'

'तुम्हारी माँ के घर।'

'वहाँ क्या है?'

'तुम्हारी माँ है, पिता हैं और फिर एक छोटी बहन भी तो आयी है न? उन सबसे मिलना चाहिये।'

यह कहते-कहते मोहिनी की आँखें डबडबा आयीं। यह उसका अपने पति का घर छोड़ने का प्रथम चरण था। उसने यत्न से आँसूओं को रोका और ठण्डा पानी पी चित्त को शान्त करने का यत्न किया। तदनन्तर वह स्वयं वस्त्र पहन तैयार हो बच्चों को लड़की के घर ले गयी। उसे अभी प्रसूति-गृह से निकले एक सप्ताह ही हुआ था।

लक्ष्मी का घर वाला तो बीस बीघा खेत का मालिक था और खेती की आय से ट्रैक्टर खरीद चुका था। ट्रैक्टर वह स्वयं चलाता था और दूसरों के खेतों में भाड़े पर हल चलाने तथा फसल काटने का काम करता था। बढ़िया प्रकार के बीज से अपने खेत में भी अच्छी आय हो रही थी। यद्यपि उपज दस गुना बढ़ गयी थी, परन्तु जीवन की आवश्यकताएँ तो उससे भी अधिक बढ़ गयी थीं। वह घर में अब मेज़ कुर्सी लगा कर बैठता था। उसकी बैठक में भी कालीन और सोफा लगे थे। दीवार के साथ महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू की तस्वीर लगी थी। वह गाँव की पंचायत का सदस्य भी था। इससे सामाजिक जीवन भी चलाना पड़ता था। लोगों के घर आने-जाने के लिये उसने एक ताँगा रखा था और नगर जाने के लिये एक स्कूटर ले लिया था। अतः जो कुछ खेतों में बढ़ रही उपज से प्राप्त होता था, उससे अधिक व्यय हो जाता था।

प्रत्यक्ष में तो प्रतीत होता था कि लक्ष्मी का पति वीरेन्द्र धनीमानी व्यक्ति है, वास्तव में घर में अभाव की पीड़ाएँ होती थीं।

जब लक्ष्मी ने लड़की को जन्म दिया तो उसके पति वीरेन्द्र को पसन्द नहीं आया। वह कहने लगा, 'यह एक और बोझा आ गया है।'

लक्ष्मी ने कहा, 'समाजवाद के होते आप इसे बोझा किसलिये समझ रहे हैं? यह समाज का उत्तरदायित्व है कि बच्चों के पालन पोषण और शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करे।'

'परन्तु समाज में एक ऐसी श्रेणी के घटक की उत्पत्ति जिसकी संख्या अधिक हो गयी तो सब-कुछ व्यर्थ हो जायेगा। यह कुछ अधिक उत्पादन तो कर नहीं सकेगी। इसका बोझा समाज पर ही पड़ेगा। यदि सब स्त्रियाँ लड़कियाँ ही उत्पन्न करने लगे तो समाज का दिवाला पिट जायेगा।'

'यह देश की प्रधान मन्त्री भी तो बन सकती है।'

'इस पर भी यह रहेगी समाज का दायित्व ही। यह उपार्जन तो कर सकेगी नहीं।'

'तो इसका गला घोंट कर समाप्त कर दूं?'

यह वीरेन्द्र कह नहीं सका और मौन रहा। परन्तु लक्ष्मी को यह अनुभव हुआ कि धन-धान्य से सम्पन्न होते हुए भी उसके पति को एक लड़की के आने का बोझ प्रतीत हुआ है। वह विचार करती थी कि क्या वह एक धनी परिवार की बहू है? वह अनुभव करने लगी थी कि सत्य ही लड़की के घर आ जाने से घर का आर्थिक

सन्तुलन बिगड़ सकता है। इससे वह चिन्ता-ग्रस्त रहने लगी थी।

बच्ची अभी बीस दिन की ही हुई थी कि उसकी माँ अन्य बच्चों को लेकर वहां आ पहुंची। लक्ष्मी ने इसका कारण जानने के लिये पूछ लिया, 'मां। कैसे आयी हो?'

'तुमसे मिलने को जी किया था और मैंने समझा कि भाइयों में बहन के प्रति स्नेह उत्पन्न करने के लिए संस्कार डालने चाहिएँ।'

माँ अपने मन में उठ रहे तूफान को प्रकट होने से रोकने के लिये बनायी हुई बात कहने लगी थी।

'ठीक है। इनको यहाँ छोड जाओ, परन्तु सायंकाल ले जाना।'

यह एक नवीन बात थी। लक्ष्मी ने बच्चों को ले जाने के लिये पहले इस प्रकार कभी आग्रह नहीं किया था। मोहिनी मौन थी। वह अपने मन की बात अपने सास-श्वसुर से स्वीकार कराये बिना किसी से भी कहना नहीं चाहती थी।

वह एकाएक उठी और बोली, 'अच्छा, सायंकाल आकर ले जाऊँगी।'

इतना कह वह शीघ्रता से घर के बाहर को चल दी। वह अपनी आँखों के आँसू लक्ष्मी से छुपाने के लिये भागी थी।

घर के फाटक पर खड़ा वीरेन्द्र गाँव के कुछ लोगों से बातें कर रहा था। मोहिनी उनसे आँख बचा निकल जाना चाहती थी, परन्तु वीरेन्द्र की दृष्टि से वह बच नहीं सकी। उसने पूछ लिया, 'माताजी! आयीं और चल दी?'

'हाँ। आज कुछ काम है।'

'मुझे भी आपसे कुछ काम था।'

'मैं बच्चों को लेने के लिये सायंकाल आऊँगी, उस समय बात कर लेंगे।'

'ठीक है। मैं घर पर ही रहूँगा।'

इस प्रकार दामाद से छुट्टी पा मोहिनी अपनी सास से मिलने चली गयी। उसका श्वसुर खेतों पर गया हुआ था। काहन दुकान पर था। काहन के तीन बच्चे स्कूल गये थे। दो घर में थे।

मोहिनी आयी तो सास उसे बैठक में अपने साथ ले गयी और कहने लगी, 'मोहिनी! रात तो तुम एक छोटा-सा मकान और साथ कुछ नकद के लिये कह गयी थी। मैंने सन्तराम के पिता से तुम्हारी बात कही तो वह कहने लगे कि सन्तराम तो एक बड़ी कोठी जिस पर ढाई-तीन लाख व्यय हो, बनवाने की बात कह गया है।'

'हाँ।'

मोहिनी ने कहा और प्रातः से यत्न-पूर्वक रोके आँसू बह निकले। उसका गला रुंध गया और वह आगे कुछ कह नहीं सकी। सुखिया ने उसे कुछ देर रोकर अपने मन को ठण्डा कर लेने दिया। जब वह आँसू बहा कर पोंछ चुकी तो उसने पूछा, 'हाँ, अब बताओ कि क्या बात हुई है और अब तुम क्या चाहती हो?'

सास के इस प्रकार पूछने पर उसने अपने साथ रात-बीती बात बता दी और फिर अपने मन का विचार बताने के लिये कह दिया, 'मैं तो आपके पुत्र के व्यवहार से ऊब गयी हूँ। आत्म-हत्या कर लेने का विचार भी मन में आया है, परन्तु एक अन्य मार्ग भी दिखायी दिया है।'

'क्या?'

'यही कि आपके घर में काम-धन्धा कर जीवन-यापन करूँ।'

सखिया बहू का मुख देखती रह गयी। मोहिनी ने अपनी अन्तर्वेदना का दर्शन कराते हुए कह दिया, 'मेरा विवाह हुए चौबीस वर्ष हो रहे हैं और मैं समझती हूँ कि इन चौबीस वर्षों में मैं दो बातें ही करती रही हूँ। घर का चौका-बासन तथा आपके पुत्र के लिये भोग-सामग्री प्रस्तुत करना। यह सब-कुछ करने पर भी कभी-कभी पिटाई हो जाती है और वह उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।'

'परन्तु तुम्हारे यहाँ आने पर तो तुम्हारा पति और भी अधिक रुष्ट हो जायेगा।'

'हाँ, इस पर भी वह यहाँ आ मुझे पीट नहीं सकेंगे। आप मेरी रक्षा कर सकेंगी।'

'क्यों? मैं क्यों रक्षा करूँगी?'

'तो क्या एक निर्दोष स्त्री को आप पिटने देंगी?'

'मोहिनी! सन्तराम मेरा बेटा है।'

'माताजी! मैं आपकी बहू हूँ। यदि आप अपनी निर्दोष बहू की रक्षा नहीं कर सकतीं तो फिर मेरे लिए विष खाकर जीवनान्त कर लेने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं रह जायेगा।'

सुखिया ने समझा कि रात सन्तराम ने इसे बहुत पीटा है। इस कारण यह बहुत दुःखी है। इस पर भी वह अपने पति से पूछे बिना पतोहू को किसी प्रकार का आश्वासन नहीं दे सकी। उसने बात बदल दी। उसने पूछ लिया, 'बच्चों को कहाँ छोड़ आयी हो?'

'उनको अपनी माँ के घर छोड़ आयी हूँ।'

'मैंने तो सुना था कि तुमने उन दोनों को गोद ले लिया है?'

'हाँ। परन्तु जब मेरा घर ही नहीं तो उनको कहाँ-कहाँ लेकर जाऊँगी। और कहीं सत्य ही दूसरे लोक में जाना पड़ा तो उनको छोड़ना ही पड़ेगा।'

'अच्छा, गुसलखाने में जाओ और अपना मुख धो डालो। ठण्डा पानी पियो और यदि अल्पाहार नहीं किया तो वह कर लो। मालती को कहती हूँ कि तुम्हारे लिये कलेवा तैयार कर दे। बच्चे तो खा-पीकर स्कूल चले गये हैं। काहन दुकान पर है और काहन के पिता खेतों पर गये हैं। वहाँ आज सिंचाई हो रही है।'

मोहिनी ने समझा कि उसकी सास ने उसे घर पर रखने का विचार बना लिया है। उसने यदि मुख से यह स्वीकार नहीं किया तो इस कारण कि घर के मालिक से बात करनी है। इतने से वह सन्तुष्ट और आशान्वित हो, उठकर गुसलखाने में चली गयी। वहाँ मुख धो, वहीं लटके तौलिये से पोंछ, मालती के कमरे में चली गयी।

मालती ने अपनी जेठानी को देखा तो बोली, 'आइये, बहन जी! आज तो बहुत प्रातः ही यहाँ आने का कष्ट किया। भोजन कर आयी हैं?'

'कुछ तो किया है।'

'और कुछ करना है? ठीक है न? तो इसे पकड़ो, मैं अभी दलिया गरम किये देती हूँ।'

मालती ने गोद के बच्चे को मोहिनी को दिया और स्वयं रसोईघर में चली गयी। मोहिनी बच्चे से खेलने लगी।

मध्याह्न के समय धनपतराय खेतों से लौटा। उसने अपने खेतों में ट्यूब-वैल लगवाया हुआ था। वह बिजली से चलता था। प्रातः छः बजे से बारह बजे तक आधे खेत से अधिक में जल दिया जा चुका था। शेष काम अगले दिन के लिये छोड़ वह घर आया तो मोहिनी को सास के पास बैठे मक्की छानते देख पूछने लगा, 'काहन की माँ! इस बाबू की बीवी को काम पर किसलिये लगा रखा है?'

सुखिया और मोहिनी दोनों घर के प्राँगण में बैठी मक्की पछोर रही थीं। सुखिया काम छोड़, पति के साथ घर के भीतर चली गयी।

::11::

मालती ने भी जब श्वसुर को घर पर आये देखा तो वह उसके लिये भोजन तैयार करने चली गयी। जब धनपत घर पहनने योग्य कपड़े पहन बैठक में आया तो काहनचन्द का चौथा बच्चा कृष्ण बाबा के पास आ गया और बोला, 'बाबा! मैं अपने गुड्डे का विवाह करूँगा।'

'किससे करोगे?'

'मोती की गुड़िया से।'

'मोती? वह कौन है?'

'बाबा! तुम नहीं जानते?'

'नहीं।'

'कामिनी मौसी की लड़की है।'

बाबा ने कृष्ण की बात का उत्तर नहीं दिया। वह अपनी पत्नी से पूछने लगा, 'सन्तराम की बहू से घर का काम लेना आरम्भ कर दिया है?'

'वह स्वेच्छा से करने लगी है। वह घरवाले से लड़कर आयी है और अब अपने घर जाने का विचार नहीं रखती।'

'किस बात पर झगड़ आयी है?'

'मकान के विषय में ही झगड़ा हुआ है। सन्तराम के मन में लोभ आ गया है। वह समझता है कि बड़ी कोठी बन गयी तो उसमें कुछ कमरे भाड़े पर दे देगा और अपनी वृद्धावस्था में खाने-पीने का प्रबन्ध हो जायेगा। मोहिनी न तो बड़े मकान में रहना पसन्द करती है और न मकान को भाड़े पर देना।

'वह बता रही है कि सन्तराम ने उसे बहुत बुरी तरह पीटा है। वह तो आत्म-हत्या करने के लिये तैयार हो गयी थी, परन्तु आत्म-हत्या से श्वसुर का आश्रय, पति से पृथक रहने का मार्ग सुगम प्रतीत हुआ है।'

'सन्तराम उसे यहाँ आकर भी तो पीट सकता है। और मैं पति-पत्नी के झगड़े में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझूंगा।'

'मैंने उसे यह सब बात बतायी है। वह कहती है, तब वह दूसरा मार्ग ग्रहण कर लेगी।'

'कौन-सा दूसरा मार्ग?'

'आत्म-हत्या।'

'यह हमें डराने के लिये कह रही है। मरने को किसी का चित्त नहीं चाहता। देखो रानी, जिस दिन लोग मरने के लिये चित्त को तैयार कर लेंगे, उसी दिन देश का उद्धार हो जायेगा। आज देश में दूध पीने वाले मजनूँ बहुत हो गये हैं। त्याग और तपस्या वाला मजनूँ कहीं दिखायी ही नहीं देता। त्याग और तपस्या में सबको दुख, कष्ट और मृत्यु दिखायी देती है।'

'परन्तु मुझे, वह बहुत दुःखी दिखायी दी है। यह बात तो मेरे मन में उस दिन भी फूटी थी, जिस दिन वह मकान के लिये कहने आयी थी। मैं उस दिन कल्पना कर रही थी कि भला सन्तराम को स्वयं पिता से आकर कुछ माँगने में संकोच क्यों है? उसने पत्नी को क्यों भेजा है? उससे तो हमारा उतना गहरा परिचय नहीं, जितना कि सन्तराम से है। मैं समझी थी कि सन्तराम को पिता के सामने आने में लज्जा आती है। इस कारण पत्नी को भेज दिया है। मोहिनी उस दिन भी बात करती-करती झिझक रही थी।'

'यह तो मैं भी समझा था कि वह विवश होकर ही आयी है।'

इसी समय मालती वहीं सास और श्वसुर के लिये एक ही थाल में रोटी आदि रखकर ले आयी। दोनों के बीच में थाल रख वह जल लेने चली गयी। धनपत ने खाना आरम्भ किया तो सुखिया भी उसी थाली में से खाने लगी। ग्रास मुख में चबाते हुए धनपत ने पूछ लिया, 'तो तुम क्या चाहती हो?'

'इसको यहाँ आश्रय देना चाहिये।'

'सन्तराम इसे बलपूर्वक ले जाना चाहेगा। तब क्या करोगी?'

'उसे भी इसी घर में रह जाने का निमन्त्रण दे दूंगी। और यदि वह नहीं मानेगा तो आत्म-हत्या करने की धमकी देने वाली स्त्री से उसके बलात्कार की प्रतिक्रिया देखूंगी। यदि उसने जाने से इन्कार किया और घसीटी जाने पर भूमि पर लेट गयी तो मैं उसका अधिकार समझती हूँ कि वह न जाये। इस पर यदि सन्तराम ने मेरे सम्मुख पत्नी को पीटा तो मैं लाठी ले उसे पीटूंगी और घर से बाहर निकाल दूंगी।'

धनपत हँस पड़ा। उसका हँसना इस बात का संकेत था कि वह पत्नी की योजना को स्वीकार कर रहा है। उसने सुखिया की योजना को स्वीकार करने के लिए कह दिया, 'यह दृश्य तो मैं भी देखना चाहूँगा।'

'क्या देखना चाहेंगे?'

'यही कि माँ किस प्रकार बहू की रक्षा में बेटे पर लाठी चलाती है।'

'यह दृश्य तो बेटे के अधीन है। मुझे ऐसा लग रहा है कि सन्तराम यहाँ रहना स्वीकार कर लेगा। इस बात से भी मुझे भारी प्रसन्नता होगी।'

'तब तो ठीक है। मैं आज सायंकाल घर पर ही रहूँगा और माँ-बेटे का युद्ध देखूंगा।'

सायं दीपक-जले सन्तराम मोहिनी को ढूंढता हुआ पिता के घर में आया तो उसे काहन के बच्चे को गोद में ले, आँगन में टहलते देख उसके सामने खड़ा हो पूछने लगा, 'यहाँ क्या कर रही हो?'

'माताजी से एक बात पूछने आयी थी। अब वही बात आपसे माताजी के सामने ही पूछनी है। इस कारण यहीं आपकी प्रतीक्षा कर रही थी।'

'मेरी बात तो तुम अपने घर पर भी सुना सकती हो। इस मूर्ख के बच्चे को उसकी माँ को दो और चलो।'

'यहीं सुन लीजिये। आइए, भीतर बैठकघर में आ जाइये। आपकी माताजी के सामने ही पूछना चाहती हूँ।'

सन्तराम को यह सब पागलपन के लक्षण प्रतीत हो रहे थे। उसके मन में आया कि बच्चे को वहीं आँगन में पटक, पत्नी को बाँह से पकड़ कर अपने घर ले जाये, परन्तु पत्नी के पागल हो जाने की सम्भावना पर वह उसके साथ बैठकघर में जा पहुँचा। वहाँ सुखिया और मालती बैठी बातें कर रही थीं।

सुखिया ने सन्तराम को देखा तो कह दिया, 'आओ, सन्तराम। आ जाओ। बताओ, चाय पियोगे अथवा अब भोजन ही करोगे?'

'माँ! आज चाय नहीं पी। घर गया तो उसे ताला लगा था। समझा कि यह लक्ष्मी के घर गयी होगी। वहाँ पहुँचा तो पता चला कि यह वहाँ मध्याह्न-पूर्व दस बजे के लगभग गयी थी। बच्चों को वहाँ छोड़ इधर आयी है। अब यहाँ चला आया हूँ। चाहता तो यह हूँ कि यह घर चले तो चाय पिला देगी।'

'चाय तो तुम यहीं पी लो। साथ ही तुम्हारी बहू एक प्रस्ताव लेकर आयी है। तुम भी उसमें सम्मति दे सकते हो।'

काहन की पत्नी को चाय लाने के लिये कह दिया गया। वह रसोईघर में चाय बनाने चली गयी तो सुखिया ने ही बात कही। उसने कहा, 'मोहिनी कह रही है कि जब तक नया मकान नहीं बन जाता, तब तक वह इस घर में आकर रहना चाहती है।'

'यह कैसे हो सकता है?' सन्तराम ने पूछ लिया।

उत्तर मोहिनी ने दिया, 'यह इस प्रकार होगा कि आप यहाँ आए तो हैं ही, बस यहीं रह जाइये।'

'और उस घर में रखा सामान?'

'सरवन को भेज अभी पहनने के कपड़े मँगवा लेते हैं। फिर माताजी जितना स्थान देंगी, उतना सामान धीरे-धीरे यहाँ मँगवा लेंगे।'

'पर वहाँ तुमको क्या कष्ट है? पिताजी मकान बनवा कर दे ही रहे हैं। पाँच-छः महीने में मकान बन जायेगा। तब नये मकान में चले जायेंगे।'

'मैं उस घर में अब नहीं जाऊँगी।'

'क्यों?'

'उस घर में एक भूत रहता है जो कभी-कभी आपके सिर पर सवार हो जाता है और फिर वह आपसे दूसरों पर अत्याचार कराता है।'

'दूसरे कौन?'

'जो भी दूसरा वहाँ रहता था। मेरा अभिप्राय है कि मैं, अब और अधिक अत्याचार सहन नहीं कर सकती।'

'पर वह तो मैं यहाँ भी कर सकता हूँ।'

'करके देखिये।'

विद्रोह की भावना को पत्नी के मुख पर देख सन्तराम परेशानी अनुभव करने लगा था। वह माँ के सामने होने पर अपने क्रोध को दबाने का यत्न कर रहा था।

अब मां ने दोनों की बात में हस्तक्षेप करते हुए कह दिया, 'परन्तु सन्तराम! चौबीस वर्ष तक तुम हमसे पृथक रहे हो। अब हमारे साथ भी कुछ काल तक रह जाओ तो कुछ हानि होगी क्या?'

'तो यह बात आपने ही मोहिनी को सिखायी है?'

'मुख से कह कर तो नहीं। परन्तु अपने व्यवहार और वार्तालाप से तो मैंने कहा ही है। इस घर ने ही उसके मन में यहाँ रहने की लालसा उत्पन्न कर दी है।'

'मैंने तो कालेज में पढ़ते हुए ही यह निश्चय कर लिया था कि पिताजी के घर में नहीं रहूँगा।'

'चलो मोहिनी! बच्चे को माँ को दो और चलो। मैं यहाँ नहीं रहूँगा। इस घर की एक-एक वस्तु में खेतों, दुकान और कारखानों में काम करने वालों के रक्त की गंध

आती है।'

'और जो मकान बनवा रहे हैं, उसमें सुगन्ध आ रही है?'

'पर वह तो तुम्हारी ही योजना थी।'

'तो अब यह भी मेरी योजना है कि हमें यहाँ रहना चाहिये।'

सन्तराम उठ खड़ा हुआ। इस समय मालती ट्रे में चाय और बिस्कुट लेकर आ गई।

मोहिनी ने कहा, 'बैठिये! चाय तो पीते जाइये।'

'ओह! तुम तो अभी से इस घर की मालकिन की भाँति बातें करने लगी हो।'

'यह सब माताजी की कृपा है।'

'कृपा की बच्ची! उठो, भली औरत की भाँति चल दो। नहीं तो.......।'

'चाय तो पी लीजिये।' मोहिनी ने बैठे-बैठे ही कहा।

सन्तराम ने ट्रे पर हाथ मार, ट्रे उलटा दी। गरम-गरम चाय मोहिनी और हंसराज पर पड़ी तो बच्चा चिल्ला उठा। मोहिनी बच्चे को ले भीतर सास के कमरे की ओर भागने लगी तो सन्तराम ने बांह पकड़ ली। बच्चा चिल्ला रहा था। मालती के हाथ से ट्रे तो उलट कर जाजम पर गिर पड़ी थी। वह अपने बच्चे को पति-पत्नी के झगड़े में चोट खा जाने से बचाने के लिये बच्चे को अपनी गोद में ले, अपने कमरे की ओर भागी।

सन्तराम मोहिनी को बाँह से पकड़ घसीटने लगा तो मोहिनी भूमि पर लेट गयी।

सुखिया को अपने पति को कही बात स्मरण आ गयी। वह उठ कर अपने पति के कमरे में गयी और वहाँ रखी लाठी उठा भागती हुई बैठकघर में आ गयी। इस समय सन्तराम पत्नी को घसीटता हुआ बैठक के द्वार तक ले गया था। मोहिनी भूमि पर लेटी-लेटी कह रही थी, 'मैं नहीं जाऊँगी–मैं नहीं जाऊँगी।'

सुखिया ने न आव देखा न ताव और झट से सन्तराम पर लाठी का प्रहार कर दिया।

लाठी सन्तराम के सिर पर लगी। एक बार तो सन्तराम का सिर चकरा गया और मोहिनी की बाँह छूट गयी। माँ पुनः लाठी उठा दूसरा वार करने वाली थी कि धनपत ने आगे आ सुखिया का हाथ पकड़ लिया, 'ठहरो!' उसने सुखिया को रोकते हुए कहा।

सुखिया की लाठी नीचे हो गयी। सन्तराम के सिर से रक्त बहने लगा था।

मोहिनी ने देखा तो एक समय तो उसके मन में पश्चात्ताप की भावना उत्पन्न हुई, परन्तु अब तो माँ-पुत्र में बात चल पड़ी थी।

सन्तराम ने जब माता-पिता दोनों को मोहिनी की रक्षा के लिये लाठियाँ लिये सामने खड़े देखा तो मोहिनी को छोड, अकेला ही घर से बाहर चल पड़ा। धनपत ने आवाज़ दे उसे जाने से रोका, 'सन्तराम! ठहरो, सिर पर पट्टी करवा जाओ।'

सन्तराम नहीं रुका और मकान के फाटक से निकल अन्धेरे में विलीन हो गया। धनपत ने कहा, 'सुखिया! तुम तो बहुत बढ़िया लाठी चलाना जानती हो!'

'पिताजी!' भयभीत मोहिनी ने कहा, 'यह अब मुझे बहुत बुरी तरह पीटेंगे।'

'यहाँ तुमको कोई नहीं पीट सकता। तुम्हारी सास लाठी ताने तुम्हारी रक्षा के लिये खड़ी है।'

द्वितीय परिच्छेद

::1::

वीरेन्द्र के घर में पंचायत हो रही थी। सब पंच उपस्थित थे। मुख्य पंच चौधरी रामावतार जब वहाँ आया तो पंचायत की सभा होने लगी। एक सदस्य ब्रह्मदत्त ने मुखिया के आते ही पूछ लिया, 'यह पंचायत की सभा पंचायतघर में क्यों नहीं बुलायी गई?'

'इस कारण कि वीरजी के यहाँ पीने को चाय मिल जाती है। वहाँ पंचायतघर में तो चाय का प्रबन्ध हो नहीं सकता।'

'मैं समझता हूँ कि यह ठीक नहीं हो रहा।'

'इसमें क्या खराबी है?'

'आज की पंचायत में एक ऐसा विचारणीय विषय है जिसका सीधा सम्बन्ध वीरजी से है। मैं समझता हूँ कि वीरजी की चाय उस विषय के विचार में बाधक होगी।'

इस पर वीरेन्द्र ने कह दिया, 'पण्डित! तुम पंचों को इतना बेईमान समझते हो कि एक चाय के प्याले पर अपना ईमान बेच देंगे?'

'मैं चाहता हूँ कि मेरी यह आपत्ति रजिस्टर पर लिख ली जाये।'

'यही न, कि पंच लोग अपना ईमान एक प्याले पर बेच देने वाले हैं। यह नहीं लिखा जायेगा।' वीरेन्द्र ने ही कहा।

'वीर जी! ऐसा करिये कि मेरी आपत्ति पंचायत की सभा पंचघर में न होने के विषय में लिख लीजिये। और साथ ही यह लिख लीजिये कि यदि सभा यहाँ होती है तो इस सभा में कोई ऐसा विषय उपस्थित नहीं किया जायेगा जिसका सम्बन्ध वीरेन्द्रजी तथा उनके परिवार के किसी सदस्य से हो।'

मुखिया ने अपना निर्णय दे दिया, 'ये सब बातें पंचों के लिये अपमानजनक हैं। इसलिये मैं लिखने की स्वीकृति नहीं देता।'

'तो मुखियाजी महाराज! यह तो लिख लिया जाये कि पंचायत की यह बैठक वीरेन्द्रजी के घर पर हुई और पंचायत वीरेन्द्रजी को उनके चाय पिलाने का धन्यवाद करती है।'

मुखिया ने ब्रह्मदत्त की आपत्ति और आग्रह की अवहेलना करते हुए कार्यवाही आरम्भ कर दी। उसने पूछा, 'हाँ, वीरेन्द्रजी! बताइये, आज की सभा में विचारणीय विषय क्या है?'

'विषय है सम्पत्ति अधिग्रहण के लिये पंचायत को सिफारिश करने का अधिकार। क्योंकि इस गाँव में एक व्यक्ति के पास सीमा से अधिक सम्पत्ति का संग्रह हो रहा है। अतः हमें इस बात की सूचना सरकार को दे देनी चाहिये और आग्रह करना चाहिये कि उस व्यक्ति की सम्पत्ति सरकार अधिग्रहण कर ले। तदनन्तर उसके फार्म को बीस-बीस एकड़ के खेतों में विभक्त कर भूमिहीनों में बाँट दे तथा उसके व्यापार को विभक्त कर बीस दुकानों में बाँट कर उसी दुकान के कर्मचारियों की एक सहकारी समिति के हाथ में दे दे। उसके मकानों पर अधिकार कर उसमें रहने वाले किरायेदारों को वे दे दिये जायें।'

अब ब्रह्मदत्त ने पूछा, 'और उसके पास क्या छोड़ा जाये?'

'जितना उसके परिवार को मेहनत-मजदूरी करके प्राप्त होता हो।'

'और मकानों के किरायेदारों को, मकान तथा दुकान पर काम करने वाले कर्मचारियों को दुकानें बिना किसी प्रकार की मेहनत-मज़दूरी के दे दी जायें?'

'यह उनकी ही मेहनत-मज़दूरी से ही उपार्जित हैं।'

ब्रह्मदत्त वही व्यक्ति था जो कुछ मास पूर्व काहन की दुकान पर सन्तराम कानूनगो से झगड़ पड़ा था। यद्यपि पंचायत की सभा में धनपतराय का नाम नहीं आया था, परन्तु उस दिन की सभा की कार्यसूची में लिखा था कि गाँव के एक साहूकार धनपतराय की सम्पत्ति के अधिग्रहण करने के विषय में विचार। इस कारण सब समझ रहे थे कि क्या और किसके विषय में वार्तालाप चल रहा है।

'देखिये मुखिया साहब! मैं समझता हूँ कि खेतों में काम करने वाले और दुकानों पर काम करने वाले कर्मचारी तथा मकानों में रहने वाले किरायेदार अपने-अपने काम और किराये का प्रतिकार पाते रहे हैं। यदि मैं यह कहूँ कि अपने अधिकार से अधिक पाते रहे हैं तो गलत नहीं होगा। इस कारण यहाँ इस सम्पत्ति में उनका अधिकार नहीं है।'

वीरेन्द्र ने बात बीच में ही टोक कर कहा, 'परन्तु उपार्जन उनके वेतन इत्यादि से

अधिक होता रहा है। तभी तो धनपतराय की सम्पदा दिन-दुगुनी रात-चौगुनी बढ़ती जा रही है। धनपत का पिता फकीरचन्द जब इस गाँव में दुकान करने आया था, तब एक लोटा और डोरी लेकर आया था और अब वह गाँव में ही नहीं, वरन् ज़िले-भर में सबसे धनी व्यक्ति बना हुआ है। यह उसकी अपनी कमाई नहीं हो सकती। मेरा प्रस्ताव है कि सरकार इसकी सम्पत्ति का अधिग्रहण कर ले।'

ब्रह्मदत्त ने कहा, 'मैं इस सिफारिश का विरोध करता हूँ और यह कहता हूँ कि धनपत एक कार्य-कुशल व्यक्ति है। वह दान-दक्षिणा द्वारा अपनी उपार्जित धन-दौलत का वितरण भी कुशलतापूर्वक करता रहता है। इस कारण समाजवाद का उद्देश्य वह भली-भाँति पूर्ण कर रहा है। अतः उसके विषय में यह प्रस्ताव उचित नहीं।'

मुखिया ने कह दिया, 'प्रस्ताव पर मतदान होना चाहिये।'

पंचायत में दो मत प्रस्ताव के पक्ष में और दो मत प्रस्ताव के विरुद्ध हो गये। ब्रह्मदत्त के साथ सिद्ध नाम का एक अन्य पंच भी सम्मिलित हो गया। वह जाति का चमार था और भक्त सिद्ध के नाम से विख्यात था। वह सदा रुद्राक्ष की कण्ठी गले में पहने रहता था और माथे पर तिलक धारण करता था।

मत बराबर-बराबर होने पर मुखिया ने अपना मत प्रस्ताव के पक्ष में देकर प्रस्ताव पारित घोषित कर दिया।

इस प्रस्ताव के पारित होने पर वीरेन्द्र का नौकर चाय की ट्रे ले आया। इसे देख ब्रह्मदत्त ने मुखिया से पूछ लिया, 'तो अब पंचायत समाप्त है?'

'हाँ।' मुखिया का कथन था। परन्तु वीरेन्द्र ने कहा, 'नहीं। चाय का कार्यक्रम अभी शेष है।'

'ठीक है।' ब्रह्मदत्त उठ खड़ा हुआ और बोला, 'वीर जी! मैंने तो आपके प्रस्ताव के विरुद्ध मत दिया है। इस कारण मैं चाय पीने का अधिकारी नहीं हूँ।'

'हाँ।' वीरेन्द्र ने कह दिया, 'मेरे गाढ़े पसीने की कमाई तुम्हारे जैसे कृतघ्न ब्राह्मण के लिये है भी नहीं।'

ब्रह्मदत्त वीरेन्द्र के घर से निकल आया। उसके जाने के उपरान्त सिद्ध भी उठ खड़ा हुआ। अब मुखिया ने पूछ लिया, 'भक्तजी! आप कहाँ जा रहे हैं?'

'भैया रामावतार!' सिद्ध ने हाथ जोड़ कहा, 'मैं तो चाय पीता नहीं। मुझे यह अनुकूल नहीं बैठती।'

वीरेन्द्र ने अब सिद्ध को सम्बोधन कर कहा, 'देखो भक्त! यह मेरा प्रस्ताव तुम

छोटी जाति वालों के पक्ष में ही है और तुमने ही इसके विपरीत मत दिया है। यह तुम्हारे लिये ठीक नहीं होगा। पंचायत के नये चुनाव आ रहे हैं। तुम पंच नहीं रह सकोगे।'

'हाँ, भैया! मैं यह जानता हूँ और इसी कारण यहाँ पर वितरित होने वाली मिठाई का आज ही त्याग कर रहा हूँ।' इतना कह सिद्ध ने चाय की ट्रे की ओर देखा। उसमें चाय के प्याले के साथ एक बड़ी सी प्लेट मिठाई से लदी रखी थी।

सिद्ध भी वीरेन्द्र के मकान की बैठक से निकल गया तो शेष तीनों सदस्य हँस पड़े। मुखिया ने हँसते हुए कहा, 'ये बेचारे जानते नहीं कि मानव-समाज प्रगति कर रहा है। ये अभी भी आज से दस-बीस वर्ष के मुर्दों को पीट रहे हैं।'

गजानन्द ने मिठाई की प्लेट में से दो टुकड़े निकाल कर अपनी प्लेट में रख लिये और खाने लगा। वीरेन्द्र ने तीन प्याले निकाल, सामने रख, उनमें चाय बनानी आरम्भ कर दी।

वीरेन्द्र ने पहला प्याला मुखिया रामावतार को देते हुए कहा, 'यह प्रस्ताव सरकारी वित्त-मन्त्री को देने के लिये मुझे भेज दीजिये। मैं इसे दस्ती देकर कुछ अन्य रहस्योद्घाटन भी कर दूँगा।'

'क्या कहोगे? देखो वीरेन्द्र, कुछ ऐसी बात मत कहना जो बाद में सिद्ध न की जा सके।'

'सब सिद्ध कर दूँगा। मैं इस बूढ़े खूसट को अपनी पतोहू के साथ बैठे ऐश उड़ाने के चित्र उपस्थित कर दूँगा।'

इस पर तो मुखिया भी गम्भीर हो गया। उसने चाय की एक चुस्की लगा, कुछ साहस पकड़ कह दिया, 'परन्तु यह है तो झूठ?'

'आप यह कैसे कहते हैं?'

'मैं कानूनगो साहब के विषय में बहुत बातें जानता हूँ और इससे कहता हूँ कि यह उसके द्वारा फैलायी गई बात ही है। यह झूठ है।'

'भैया!' वीरेन्द्र ने मुखिया को कह दिया, 'झूठ अथवा सत्य की बात तो साक्षियों के आधार पर ही है न? यह मैं भारी संख्या में उपस्थित कर दूँगा।'

'इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। आज किसी धनी-मानी के विरुद्ध तुम जो कुछ भी सरकारी क्षेत्रों में कह दो, वह ब्रह्मवाक्य मान लिया जाता है। कोई साक्षी माँगेगा ही नहीं। परन्तु मैं तो यह कह रहा हूँ कि यह सत्य नहीं और अपनी पत्नी के बाबा के विषय में ही झूठी बात कहोगे तो घोर पाप के भागी बन जाओगे।'

'पाप-पुण्य क्या होता है, भैया! तुम भी बूढ़े हो रहे प्रतीत होते हो। पाप-पुण्य,

धर्म-अधर्म आज सामाजिक हित-अहित के विचार से ही माने जाते हैं। मेरा यह प्रयास समाज के हित में है। इसीलिये मेरी अन्तरात्मा इस कार्य को पुण्य-मय और धर्म-युक्त मान रही है।'

'ठीक है, वीरेन्द्र! मैं अभी इस सिद्धान्त को नहीं मान सका कि ईर्ष्या, द्वेष-वश तथा मित्रता और मिठाई के लोभ में दिया मत तो धर्म हो गया और न्याय-अन्याय के विचार से की गयी बात अधर्म हो गयी।'

'देखो वीरेन्द्र! मैं पंचायत की बात नहीं कह रहा। अपने अनुभव की बात कह रहा हूँ। अपनी लड़की के विवाह के समय तुम्हारे मित्र प्रेम ही वेदी पर बैठे-बैठे कहने लगे, 'मुखियाजी! विवाह तो तब होगा जब दस सहस्र रुपये यहाँ रख दो।'

'मेरे पास इतना था नहीं। मैंने घर के भीतर जाकर देखा और पत्नी तथा लड़के के पास जो कुछ था, सब एकत्रित किया। वह सात हज़ार ही बना। मैंने प्रेमनाथ को जाकर कहा, 'बेटा! अभी सात हैं। तीन फिर कुछ दिन उपरान्त दे दूँगा।'

इस पर वह वेदी से उठ खड़ा हुआ और विवाह-मण्डप से बाहर जाने लगा तो धनपत बोला, 'प्रेम भैया! बैठो, अभी तुम्हारी माँग पूरी कर देता हूँ।' वह उसी समय घर गया और तीन हजार के सौ-सौ रुपये के नोट उठा लाया और दस सहस्र प्रेम के पाँव के पास रख दिया।

'इस बात को अब पाँच वर्ष हो चुके हैं। लड़की के घर दो सन्तान भी हो चुकी हैं, परन्तु मैं धनपतजी का रुपया नहीं दे सका। उसने कभी माँगा भी नहीं। बताओ, यदि धनपतराय हमारे-तुम्हारे जैसा निर्धन होता तो यह रुपया नहीं आता और विवाह रुक जाता।'

'रामावतार भैया!' वीरेन्द्र ने कह दिया, 'तुम थाने में रिपोर्ट लिखा देते तो प्रेम का बच्चा पकड़ कर जेल में डाल दिया जाता। दहेज माँगना तो अपराध है न?'

'मैं यह जानता था, परन्तु माँगने वाले भी जानते हैं कि किस समय माँगा जाता है। वीरेन्द्र, उस समय इन्कार नहीं किया जा सकता।'

'ठीक है। प्रेम ने मुझे विवाह के उपरान्त यह बात बतायी थी। उसके माता-पिता ने उसे धन माँगने के लिये विवश किया था। उनको बैंक का दस सहस्र रुपया देना था और देने की तारीख समीप आ रही थी।'

'कुछ भी हो।' रामावतार ने कहा, 'मैं समझ रहा हूँ कि एक भले व्यक्ति की हत्या हो रही है।'

'तो आपने इस प्रस्ताव के पक्ष में मत क्यों दिया है?' अन्य सदस्य गजानन्द ने

पूछ लिया।

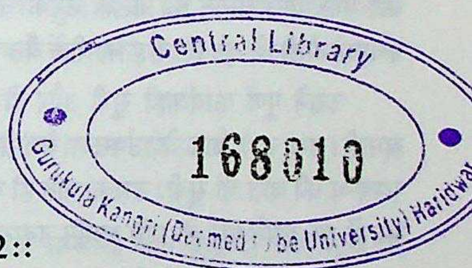
इस बात पर तो रामावतार ने कह दिया, 'मैं तुमसे मित्रता का अभिलाषी हूँ। जब पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म तथा न्याय-अन्याय की बात होने लगी तो मैंने मन की बात बता दी। परन्तु मेरे वोट का मूल्य तुम्हारी मित्रता है।'

'हाँ।' वीरेन्द्र ने कह दिया, 'मित्रता तो है ही। साथ ही आपको यदि विधान सभा का सदस्य बनना है तो स्वयं को समाजवादी प्रकट करना चाहिये। धनपति की सम्पत्ति का यदि हम अधिग्रहण करा सके तो आपका विधान सभा का सदस्य होना निश्चित है।'

चाय समाप्त हुई और पंचायत में किये कर्म को चाय से गले नीचे उतार दोनों व्यक्ति वीरेन्द्र से छुट्टी ले चल दिये।

रामावतार अपने मकान की ओर जा रहा था। गजानन्द मुखिया के साथ चलता-चलता पूछने लगा, 'रामवतार जी! आज जो कुछ हुआ है, ठीक नहीं हुआ न?'

'यह देखना हमारा काम नहीं। यह कानून बनाने वालों का काम है कि कानून बनाते समय उचित-अनुचित का विचार कर लें। हम तो उसका पालन कर सकते हैं। जिला मजिस्ट्रेट ने यह पत्र लिखा था कि पंचायत से पूछा जाता है कि धनपतराय की अतिरिक्त सम्पत्ति का सरकार अधिग्रहण करे अथवा न करे? आज की कार्यवाही इसी पत्र के उत्तर में है।'



::2::

वीरेन्द्र की पत्नी लक्ष्मी अपने मकान के बैठकघर के पिछले द्वार के पीछे खड़ी पंचायत की कार्यवाही सुन रही थी। धनपत को इस पंचायत में उपस्थित होने वाली कार्य-सूची का ज्ञान हो गया था और उसने मोहिनी को लक्ष्मी के पास भेजा था। वह इन दिनों अपनी सास के पास ही रहती थी। जिस दिन उसे सन्तराम ने माँ और पिता के सामने ही घसीट कर अपने घर ले जाने का यत्न किया था, उसी दिन से वह अपने पति के घर नहीं गयी थी और सन्तराम ही पंचायत में इस प्रस्ताव को लाने में कारण बन रहा था।

मोहिनी लक्ष्मी जो कहने आयी तो लक्ष्मी ने उसके सम्मुख अपने घर की समस्या

उपस्थित कर दी। उसने कह दिया, 'माँ! यहाँ तो घर में भांग भुजती है। खाने-पीने का भारी कष्ट है और तुमने बच्चों को यहाँ भेज, घर पर बोझा डाल दिया है।'

'बच्चे तुम्हारे हैं और तुमको ही इनका बोझा सहन करना चाहिये।'

'परन्तु हमारे पास तो अपने खाने-पीने को कुछ बचता ही नहीं। इनके दूधादि के लिये कहाँ से लाऊँ?'

'मैं बच्चों के विषय में माँ जी से बात करूँगी। आशा है कि वह इनके भी वहाँ जाने पर आपत्ति नहीं करेंगी, परन्तु वीर जी तुम्हारे बाबा की सब सम्पत्ति ही छीन लेने की बात पंचायत में करने वाले हैं। उनको मना कर दो।'

'वह मेरा कहा नहीं मानेंगे।'

'तो...?'

'तो माँ, यह कि तुम तो अपने सास-श्वसुर के घर चली गयी हो। मैं कहाँ जाऊँगी? मेरे तो सास-श्वसुर भी नहीं हैं।'

'देख लेंगे। धर्म और न्याय क्या कहता है?'

'माँ! वे धर्म और न्याय उसी को मानते हैं जिससे सब का भला हो।'

माँ निराश लौट गयी। परन्तु लक्ष्मी के मन में यह जानने की उत्सुकता उत्पन्न कर गयी कि पंचायत की बैठक उनके घर में किस कारण हो रही है? अंतः जब पंचायत बैठी तो वह किवाड़ के पीछे बैठ सुनने लगी कि क्या हो रहा है?

उसने पूर्ण कार्यवाही सुनी और दो सदस्यों के विरुद्ध मत देने की बात भी समझी। इस सब बात के उपरान्त लक्ष्मी ने अपनी माता और बाबा के अनुचित सम्बन्ध की बात भी सुनी। उसका पति ही यह कह रहा था। इस समाचार ने तो उसके मन में भी अपने पति के प्रति ग्लानि उत्पन्न कर दी।

जब वीरेन्द्र पंचायत के अन्य सदस्यों को विदा कर भीतर आया तो लक्ष्मी ने पति को अपने कमरे में ले जाकर पूछ लिया, 'आप माँ को दुराचारिणी सिद्ध करने जा रहे हैं?'

'नहीं रानी! मैं तुम्हारे बाबा को दुराचारी सिद्ध करने का यत्न कर रहा हूँ।'

'परन्तु वे दुराचारी नहीं हैं। यह तो आप भी जानते हैं। परन्तु फिर भी आपने पंचायत में यह बात कही है। यह ठीक नहीं किया।'

'तो तुम पंचायत की बात सुन रही थी?'

'आपने पंचायत की सभा यहाँ बुलायी तो मेरे मन में उसके सुनने की उत्सुकता

उत्पन्न हो गयी और उसमें मेरी माताजी के मेरे नानाजी से अनुचित सम्बन्ध के चित्र दिखाने की बात आपने कही है। मैं उसी विषय में कह रही हूँ कि यह झूठ है।'

'परन्तु मैंने यह भी कहा है कि झूठ-सत्य का निर्णय समाज के हित-अहित के आधार पर ही हो सकता है।'

'अर्थात् यदि आपको यह समझ आये कि मुझे घर से निकाल देना समाज के हित में है तो आप मुझे धक्के दे-देकर घर से निकाल देंगे?'

'निकालना ही होगा।'

'और यह जानते हए भी कि मैं निर्दोष हूँ?'

'यदि यह समाज के हित में हुआ तो ऐसा करना ही होगा।'

लक्ष्मी का मन ऐसे बुझ गया जैसे किसी ने दीपक को फूँक मार कर बुझा दिया हो। वह अपने पलँग पर लेट गयी।

वीरेन्द्र को अपना एक काम स्मरण आ गया। वह उठ घड़ी में समय देख घर से निकल अपने स्कूटर पर सवार हो चल दिया।

लक्ष्मी ने घर के नौकर मदन को बुलाया और कहा, 'मैं माँ को मिलने जा रही हूँ। शीघ्र ही लौट आऊँगी। बच्चों का ध्यान रखना।'

इतना कह वह सीधी धनपतराय के घर पहुँच माँ को घर के कामकाज में लीन देख उसके पास जा खड़ी हुई। मोहिनी बच्चों के पहनने के कपड़े धोकर आँगन में बँधी रस्सी पर डाल रही थी।

लक्ष्मी ने उसके समीप खड़े हो कहा, 'माँ! अनर्थ हो रहा है।'

'क्या?'

लक्ष्मी ने अपने पति की उसके चरित्र सम्बन्धी बात बता दी और साथ ही पंचायत का निर्णय बता दिया।

मोहिनी दोनों बातें सुन स्तब्ध रह गयी। उसने लक्ष्मी को कहा, 'यह सब तुम्हारे पिता की करतूत है। परन्तु तुम इसमें कुछ नहीं कर सकतीं। तुम अपने घर में जाओ और होने वाली बात की प्रतीक्षा करो। तुम्हारे बाबा नगर गये हैं। वे कह रहे थे कि वहाँ सम्पत्ति अधिग्रहण करने वाले कार्यालय में जाकर पता करेंगे कि क्या हो रहा है? साथ ही यह भी पता करेंगे कि पंचायत का क्या और कितना अधिकार है?'

लक्ष्मी अपने घर लौट गयी। वीरेन्द्र तब तक घर लौटा नहीं था। इस कारण वह पुनः अपने कमरे में जा विचार-मग्न हो लेट गयी।

वीरेन्द्र सायंकाल तक घर लौटा। नौकर ने चूल्हा गरम कर उस पर अपने ही खेत से आये शलगम की भाजी बनानी आरम्भ कर दी थी। वीरेन्द्र ने लक्ष्मी से कहा, 'आज चाय पी है अथवा नहीं?'

'हमने पी ली है।'

'तो एक प्याला मुझे भी बनवा दो। आज किसी ने भी चाय के लिये नहीं पूछा।'

'पर घर में तो दूध नहीं है।'

'तो सब दूध पी डाला है?'

'दूध तो हमारी चाय के लिये भी नहीं था। वह तो पंचायत के लिये चाय में समाप्त हो चुका था।'

'तो तुमने चाय कैसे बनायी है?'

'पड़ोस में से थोड़ा दूध माँग अपनी चाय के पानी का रंग बदल कर पी ली है।'

'तो मेरे लिये भी किसी से मँगवा लो। बाजार से मँगवाने के लिये जेब में पैसे नहीं हैं।'

लक्ष्मी क्रोध से भरी बैठी थी। उसने कह दिया, 'और स्कूटर में पैट्रोल फूँकने के लिये दाम था?'

'वह तो समाज का काम था।'

'तो दूध के लिये समाज से दाम ले लो।'

'उसी के लिये तो गया था। देखो रानी, मैं नगर में सम्पत्ति अधिग्रहण विभाग में ही गया था। मेरी वहाँ यह अर्ज़ी है कि धनपतराय की दुकान का एक विभाग मुझे मिल जाये। यदि मिल गया तो मैं मालामाल हो जाऊँगा।'

लक्ष्मी को कुछ ऐसा समझ आया कि जैसे किसी बैल अथवा गाय के मर जाने पर उसके शव को नोच-नोच खाने के लिये गिद्ध शव पर मण्डराने लगते हैं ऐसे ही उसका पति उसके बाबा की सम्पत्ति पर मण्डराने लगा है। उसे यह कार्य अति घृणित प्रतीत हुआ, परन्तु वह अपने मन की बात कह नहीं सकी।

उसने दूध का विषय आरम्भ कर दिया। उसने कहा, 'तब तो आप दुकान पर कर्ज अभी से लेना आरम्भ कर सकते हैं। बाजार में हलवाई को यह कह कर दूध मिल जायेगा कि आप एक बहुत बडे दुकानदार बनने वाले हैं। इस कारण वह आपको पाव लिटर दूध दे सकता है।'

वीरेन्द्र हँस पड़ा। लक्ष्मी के कथन में निहित व्यंग्य उसकी समझ में आ गया।

उसने हँसते हुए कहा, 'दुकान का मालिक बनने से पहले तो मैं पंचायत में एक शक्तिशाली पंच हूँ। इसके बल पर ही दूध मँगवाता हूँ।'

वीरेन्द्र ने मदन को आवाज़ दी। वह आया तो उसने कहा, 'देखो, एक गिलास ले मोटू हलवाई की दुकान पर चले जाओ और उसे कहो कि पंच साहब ने एक पाव दूध मँगाया है। दाम वह स्वयं आकर देंगे।'

मदन ने रसोईघर से लोटा लिया और बाज़ार को चल पड़ा। मदन के लौटने तक का समय व्यतीत करने के लिये उसने अपनी नगर की यात्रा का वृत्तान्त सुनाना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, 'मैं सम्पत्ति अधिग्रहण विभाग के कार्यालय में गया था। वहाँ तुम्हारे बाबा पहले ही बैठे थे। अतः उनको वहाँ बैठा देख में नज़र बचा नगर घूमने चला गया। चार बजे के उपरान्त मैं उस विभाग के सुपरिन्टेन्डेण्ट के घर जा पहुँचा। वहाँ दो घण्टे प्रतीक्षा करनी पड़ी। जब वह आया तो मैंने पंचायत का निर्णय बता अपनी अर्ज़ी उपस्थित कर दी।

'सुपरिन्टेन्डेण्ट का कहना था, कि केन्द्रीय सरकार का प्रान्तीय सरकारों को और वहाँ से हमारे विभाग के सचिव को यह आदेश आया है कि एक लाख रुपये से ऊपर सम्पत्ति रखने वालों की सम्पत्ति का अधिग्रहण कर बँटवारा कर दिया जाये। बँटवारा स्टेट बैंक के सरकारी सम्पत्ति के परिरक्षक के द्वारा करवाया जाये। अतः मुझे अपने गाँव के स्टेट बैंक के सरकारी सम्पत्ति परिरक्षक के पास जाना चाहिये।'

'तो अभी आपको बाबा के शव में से कुछ नहीं मिला?'

'शव का क्या अभिप्राय है?'

'जैसे यह शरीर आत्मा की सम्पत्ति है, वैसे ही मनुष्य की सम्पत्ति उसका शरीर होता है। बाबा की सम्पत्ति को ही मैं उनका शरीर कह रही हूँ।'

वीरेन्द्र हंस पड़ा। हँसते हुए कहने लगा, 'मैं कुछ और समझा था।'

इतने में मदन खाली लोटा लिये लौट आया। उसने बताया, 'मोटू कहता है कि उसका सब दूध बिक चुका है।'

'बहुत बदमाश हो गया है यह मोटू का बच्चा! इसे भी मजा चखाऊँगा। अच्छा, जल्दी भोजन तैयार करो। मैं अभी आता हूँ।'

इतना कह वीरेन्द्र पुनः घर से निकला और स्टेट बैंक की स्थानीय शाखा के एजेण्ट के घर जा पहँचा। एजेण्ट के मकान के बाहर तीस-चालीस लोग खड़े थे। वहां लोगों की इतनी भीड़ खड़ी देख वीरेन्द्र एक को बुलाकर पूछने लगा, 'यहाँ क्या हो रहा है?'

'सुना है कि लाला धनपतराय की सम्पत्ति का सरकार अधिग्रहण कर रही है और उसको उन लोगों में बाँट रही है जिनके पास कोई काम-धन्धा नहीं।'

'परन्तु तुम तो लाला के खेतों पर काम करते हो?'

'हाँ। परन्तु सम्पत्ति सरकार ने ले ली तो ये खेत किस-किसके पास जाते हैं, मैं इस बात के जानने में रुचि रखता हूँ और यदि एक टुकड़ा भूमि मुझे मिल जाये तो मैं भी भूमिपति हो जाऊँगा।'

'तो तुम यहाँ भूमि लेने आये हो?'

'जी।'

इस समय वीरेन्द्र की दृष्टि एक अन्य पर जा पड़ी जिसे वह पहचानता था। वह उसके पास जा खड़ा हुआ और बोला, 'सुनाओ बाबू! यहाँ कैसे खड़े हो?'

यह व्यक्ति काहन की दुकान के एक विभाग का मैनेजर था।

'हमारे लाला की सम्पत्ति का अधिग्रहण हो रहा है और मैं समझता हूँ कि लालाजी की दुकान का एक विभाग मुझे मिलना चाहिये। इस कारण यहाँ आया हूँ।'

'और ये सब लोग इसी प्रयोजन से यहाँ खड़े हैं?'

'मुझे यही समझ में आया है।'

इतने में ब्रह्मदत्त वीरेन्द्र के समीप आ पूछने लगा, 'वीरजी! आप भी अपने श्वसुर के पिता की सम्पत्ति में भाग लेने आ पहुँचे हैं?'

'वह तो उनके मरने पर लूँगा।' वीरेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, 'अभी तो उनकी सम्पत्ति का एक भाग भाड़े पर लेने आया हूँ।'

'मैं भी तो इसी उद्देश्य से आया हूँ।'

'ओह!' वीरेन्द्र भौंचक्का मुख देखता रह गया। उसे यह भी समझ आया कि गाँव के और लोग भी आ रहे हैं। इस पर उसकी हँसी निकल गयी। ब्रह्मदत्त ने पूछ लिया, 'किसलिये हँसे हैं, वीर जी?'

'मैं विस्मय कर रहा हूँ कि इन सब लोगों को यह सब कैसे पता चल गया है कि धनपतराय की सम्पत्ति का वितरण यहाँ हो रहा है?'

'जैसे आपको पता चला है, वैसे ही इनको भी पता चला प्रतीत होता है।'

'मैं तो बीस मील स्कूटर भगाता हुआ गया था और बीस मील से भागता हुआ आया हूँ। तीन रुपये का पैट्रोल फूँकने पर यह ज्ञान हुआ है।'

'परन्तु इनको तो बिना पैट्रोल के ही पता चल गया है।'

'तो तुमने बताया प्रतीत होता है।'

'मुझे तो स्वयं इन लोगों ने बताया है कि पंचायत ने तो केवल यह सिफारिश की थी कि लाला की सम्पत्ति एक लाख से बहुत अधिक है। इसका अधिग्रहण होना चाहिये। वह प्रस्ताव तो अभी कल यहाँ से जायेगा, परन्तु यहाँ तो वितरण की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी है।'

'मैं समझा हूँ कि सरकार ने निश्चय कर इसे कार्यान्वित करने का निर्णय तो कई दिन हुए कर लिया था। हमारे पास तो केवल अपने कार्य की पुष्टि कराने के लिये सूचना भेजी थी।'

'यह बात मुखिया ही ने तो नहीं बतायी?'

'नहीं। यह मेरा अनुमान है। ऐसा प्रतीत होता है कि गाँव के सब लोगों ने भी कुछ ऐसा ही अनुमान लगाया प्रतीत होता है।'

इस समय कोठी के भीतर से एक व्यक्ति निकला। यह धनपतराय के खेतों का जमादार माना था। वीरेन्द्र का भली-भांति परिचित था। माना कोठी से निकला तो वीरेन्द्र उसके पास जा पहुंचा। माना का पूरा नाम मानिकचन्द्र था। वीरेन्द्र ने उसको सम्बोधन कर पूछ लिया, 'माना पहलवान! यहाँ कैसे आये थे?'

'तो आपको विदित नहीं कि लालाजी की सम्पत्ति के अधिग्रहण की आज्ञा आ गयी है?'

'कब आयी है?'

'आज्ञा आये तो तीन दिन हो चुके थे, परन्तु यह आज्ञा भी थी कि जब तक पंचायत का निर्णय इस अधिग्रहण के अनुकूल नहीं हो जाता, तब तक यह कार्य न किया जाये। आज आपकी पंचायत ने बहुमत से सरकार के इस कार्य का समर्थन किया है तो इस कारण बैंक का मैनेजर सम्पत्ति वितरण का प्रबन्ध कर रहा है।'

'तो पहलवान, तुम भी सम्पत्ति में से कुछ लेने आये हो?'

'हाँ। आया तो इसी काम से हूँ।'

'तो मैनेजर से मिल आये हो?'

'हाँ, वीरजी! यदि तनिक पृथक् में आओ तो आपको एक रहस्य की बात बता सकता हूँ।'

वीरेन्द्र ने विचार किया और फिर माना के साथ कोठी के अहाते से बाहर एक ओर खड़ा हो पूछने लगा, 'हाँ, तो बताओ! क्या कहते हो?'

'मुझे बीस बीघा खेत, जो मैंने लिखा दिया है, मिलने का वचन हो गया है। उसी खेत में लालाजी ने ट्यूबवेल लगवाया हुआ है।'

'तुम तो बहुत भाग्यशाली हो।'

'हाँ। परन्तु भाग्य को अनुकूल करने के लिये मुझे पाँच हज़ार मैनेजर साहब की नज़र करना पड़ा है।'

'पाँच हज़ार?'

'हाँ, वीरजी! परन्तु यह मैं आपको इस कारण बता रहा हूँ कि मैनेजर साहब ने दस प्रतिशत सम्पत्ति के मूल्य पर स्वयं लेने का नियम बना रखा है। उस भूमि का मूल्य ट्यूबवेल सहित पचास हजार आंका गया है और इस प्रकार पाँच हजार जमा करा आया हूँ। अब मैनेजर साहब ने कहा है कि कल आकर उस भूमि का पट्टा ले जाऊँ।'

'आपको मैं इस कारण बता रहा हूँ कि आप रुपया जेब में लेकर भीतर जाइये। अन्यथा व्यर्थ है।'

वीरेन्द्र मुख देखता रह गया। उसकी जेब में नकद कुछ नहीं था, परन्तु उसे क्रोध आ रहा था स्टेट बैंक के एजेण्ट पर। वह मन में विचार कर रहा था कि सम्पत्ति का अधिग्रहण इस कारण किया जा रहा है कि निर्धन और बेकारों को रोजगार मिले और यह बाँटी जा रही है उनको, जो हज़ारों रिश्वत देने की सामर्थ्य रखते हैं।

वीरेन्द्र के मन में समाजवाद ठाठें मार रहा था। उसके मन में आया कि इस मैनेजर के बच्चे को तनिक सबक सिखाना चाहिये। वह जोश में भरा कोठी के भीतर आ गया। चपरासी कोठी के द्वार पर खड़ा था। उसके सामने खड़ा हो वीरेन्द्र ने कहा, 'मैनेजर साहब को सूचना दे दो कि गाँव की पंचायत का पंच वीरेन्द्र मिलना चाहता है।'

चपरासी ने पंच महोदय को सिर से पाँव तक देखा और कह दिया, 'आप एक कागज़ पर अपना नाम-पता लिखकर दे दें। वह मैं भीतर पहुँचा दूँगा। आपको बुलाया जायेगा तो आप जा सकेंगे।'

वीरेन्द्र ने जेब से कलम निकाल एक कागज़ पर नाम और परिचय लिख दिया। कागज़ चपरासी ने ही दिया था। जब वह नाम इत्यादि लिख रहा था तो पंचायत का एक अन्य सदस्य सिद्धू भीतर से निकला। वह वीरेन्द्र के पास खड़ा हो गया। चपरासी कागज़ लेकर भीतर गया तो सिद्धू ने पूछ लिया, 'वीर जी! आप भी लालाजी की सम्पत्ति के भागीदार बनना चाहते हैं क्या?'

'तो यह कोई बुरी बात है?'

'नहीं, वीर जी! मैं तो अपना नाम एक खेत के लिये लिखा आया हूँ।'

'परन्तु तुम्हारे पास तो अपनी भूमि है?'

'हाँ। मेरी भूमि के साथ लाला के फार्म का एक भाग लगता था। मैं वह ले आया हूँ।'

'सच! तुमको भी कुछ देना पड़ा है क्या?'

सिद्धू ने इधर-उधर देखा कि कोई सुन तो नहीं रहा। उसने कह दिया, 'हाँ। वह भूमि शाक-भाजी के लिये सर्वथा उपयुक्त है। उसका दाम तीस हजार रुपया आंका गया है और उसके लिये तीन हज़ार से मैनेजर साहब की जेब गरम करनी पड़ी है।'

'परन्तु तुम्हारे पास इतना रुपया कहाँ से आ गया?'

'इतना तो आजकल सबके पास होना चाहिये।'

वीरेन्द्र अपनी अवस्था पर विचार करने लगा था। सिद्धू ने नमस्ते की और कोठी से बाहर को निकल गया। इस समय चपरासी भीतर से निकला और धीरे-से बोला, 'मेरा मेहनताना?'

'क्या और क्यों?'

'यह हजूर, आपके गुलाम की फीस है।'

'यह तो मैं लेकर नहीं आया।' वीरेन्द्र का गला खुश्क हो गया था। वह सिद्धू को एक अति निर्धन व्यक्ति समझता था। वह भक्त आदमी था और दिन-रात परमात्मा की भक्ति में लीन रहता था। वह स्वयं बीस बीघा भूमि का स्वामी होते हुए ट्रैक्टर और ट्यूबवेल लगाये हुए था। आय भी बीस-पच्चीस हजार प्रति वर्ष हो जाती थी, परन्तु जेब मैं एक पैसा नहीं था। वह देख रहा था कि रुपया हाथ में आता पीछे है और खर्च पहले हो जाता है।

उसने यत्नपूर्वक थूक गले के नीचे उतार कर कहा, 'भैया! रुपये तो इस समय नहीं हैं।'

'तो ठहरिये।' उसने आवाज़ दे दी, 'लक्ष्मीदेवी के वकील!'

वीरेन्द्र के कान खड़े हो गये। वह मन में विचार कर रहा था कि यह कौन लक्ष्मी देवी है।

इतने में गाँव का वकील देवेन्द्र मिश्र भीड़ में से निकल आगे चला आया। चपरासी ने हाथ बढ़ा दिया। देवेन्द्र ने जेब से दो रुपये का नोट निकाल चपरासी को थमाते हुए कहा, 'देखो, यदि काम बन गया तो और दूँगा।'

देवेन्द्र मिश्र भीतर गया तो वीरेन्द्र ने मन में विचार किया कि वकील से पता करेगा कि भीतर किस प्रकार बातचीत होती है? इस विचार से वह चपरासी को कह कि वह उसकी फीस ला रहा है, एक ओर हटकर खड़ा हो गया।

वकील को भीतर पाँच मिनट से अधिक नहीं लगे। वह बाहर आया तो वीरेन्द्र उसके सामने जा खड़ा हुआ। वह पूछने लगा, 'आप तो शीघ्र ही बाहर आ गये हैं?'

'हाँ। मैं तो सायंकाल के समय मैनेजर से सब बातचीत कर गया था और अब उस बातचीत के अनुसार खानापूरी करने आया था।'

'ओह! तो आप लाला धनपतराय की सम्पत्ति के विषय में नहीं आये थे।'

'आया तो उसी के विषय में हूँ। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि मैं सब बातचीत पहले ही कर चुका था। इस कारण मुझे कुछ अधिक देर नहीं लगी।'

'तो आपको चार बजे ही पता चल गया था कि लालाजी की सम्पत्ति का अधिग्रहण होने वाला है?'

'मुझे तो तीन दिन से पता था और यह भी पता था कि बैंक के मैनेजर इस सम्पत्ति के परिरक्षक बनाये गए हैं। यह आज्ञा अभी यहाँ आयी नहीं थी। इसी कारण इस विषय की बातचीत पहले हो नहीं सकी थी।'

'सरकारी आज्ञा आज तीन बजे के लगभग यहाँ आयी है और मैं चार बजे मैनेजर साहब से मिला था। उन्होंने उस सम्पत्ति के लिये जो मेरा 'क्लायण्ट' चाहता है, दो हज़ार रुपया माँगा था। अब वह देने आया था। बात तय हो गयी है। आज रात सम्पत्ति का अधिग्रहण होगा और कल हमें चार्ज मिल जायेगा।'

'आपकी 'क्लायण्ट' लक्ष्मी देवी कौन हैं?'

'बताना उचित तो नहीं, परन्तु मैं समझता हूँ कि आपसे चोरी रखने का कुछ प्रयोजन भी नहीं। आपकी पत्नी ही तो हैं।'

वीरेन्द्र के पाँव-तले से मिट्टी खिसकने लगी थी। वह समझ नहीं सका कि देवेन्द्र हँसी कर रहा है अथवा सत्य कह रहा है। वह यह तो नहीं कह सका कि उसकी पत्नी के पास इतना रुपया कहाँ से आया है? हाँ, उसने यह पूछ लिया, 'आपको लक्ष्मी देवी जी ने कितनी फीस दी है?'

'यह तो कल दुकान का पट्टा हो जाने पर मिलेगी। वह जो कुछ भी देंगी, इन्कार नहीं करूँगा। आप क्या और आपकी पत्नी क्या! भला आपसे फीस माँग कर गाँव में कैसे रह सकूँगा?'

देवेन्द्र मुस्करा रहा था। जब वीरेन्द्र कुछ समझ नहीं सका और भौंचक्का हो

वकील का मुख देख रहा था तो उसने कह दिया, 'वीरेन्द्रजी ! दुनिया में बहुत-सी बातें हैं जो मनुष्य को आराम से बैठ कर समझनी चाहिये। सभा-समाजों में लैक्चर देकर वे न तो समझी जा सकती हैं और न ही उनके विषय में इस प्रकार सार्वजनिक स्थान पर खड़े-खड़े बातचीत हो सकती है। कभी घर पर आइये तो समझा दूँगा।'

वीरेन्द्र की जेब में तो दूध के लिये दाम भी नहीं था और यहाँ तो चपरासी भी मैनेजर से भेंट के लिये भीतर जाने के दो रुपये माँग रहा था। सबसे विलक्षण बात थी लक्ष्मी का अपने बाबा की दुकान के एक विभाग को ठेके पर लेने की बात। यह कैसे हो गया और रुपया कहाँ से आया? वह कब वकील के पास गयी और...और...। एकाएक वीरेन्द्र ने वकील साहब के साथ-साथ चलते हुए पूछ लिया, 'आपको मेरी पत्नी कब मिली थी?'

'उसका एक दूत आया था। उसके तो मैंने कभी दर्शन भी नहीं किये। आज तीन दिन हुए, उसने एक पत्र में लिखा था कि उसने सुना है कि लाला धनपतराय की सम्पत्ति अधिग्रहण की जा रही है। वह सम्पत्ति अधिग्रहण के उपरान्त अन्य लोगों को टुकड़े-टुकड़े कर ठेके पर दी जायेगी। अतः आप पता करिये कि यह कब और कैसे हो सकेगी? मैं लालाजी का 'टॉयलेट ऐक्सेसरीज़ डिपार्टमैण्ट' ठेके पर लेना चाहती हूँ। आपको जो भी पारिश्रमिक होगा, दे दिया जायेगा।'

'मैं नगर में गया और वहाँ से सब बात जान आया। मैंने बैंक के मैनेजर से कह रखा था। उसने आज टेलीफोन द्वारा मुझे बुलाया था। मैं आया तो उसने सब बात बता कर अपना मत बता दिया था। आज सायं छः बजे मुझे रुपया मिला है और मैंने दो हजार रुपये से मैनेजर महोदय की जेब गरम कर दी है। कल दुकान का चार्ज मिल जायेगा।'

इस समय वकील साहब चलते-चलते अपने मकान के द्वार पर आ गये थे। मकान के बाहर खड़े हो वकील ने कहा, 'मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है कि मैं आपका एक काम कर सका हूँ। आइये, भोजन का समय हो गया है।'

वीरेन्द्र का मुख खुश्क हो चुका था। उसके गले से आवाज़ नहीं निकल रही थी। उसने वकील के निमन्त्रण का कुछ उत्तर नहीं दिया और अपने घर को चल दिया। वह अभी दस पग ही गया था कि उसे वकील के ठहाका मारकर हँसने का शब्द सुनायी दिया। परन्तु उसके मस्तिष्क में चक्कर आ रहा था और वह इस हँसी का अर्थ नहीं समझ सका।

::3::

वीरेन्द्र घर पहुंचा तो भोजन तैयार था। लक्ष्मी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने पति के आते ही पूछा, 'बहुत देर कर दी है?'

'तो चाय की भाँति भोजन भी कर लिया है और पीछे सब-कुछ समाप्त हो गया है?'

लक्ष्मी ने सहज भाव में ही कहा, 'बच्चे खाकर सो गये हैं। मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। आप वस्त्र बदल मुख-हाथ धो लीजिये।'

'नहीं। मैं अभी एक बात तुमसे जानने आया हूँ।'

'क्या?'

'तुमने अपने बाबा की सम्पत्ति के एक भाग को ठेके पर लेने के लिये अर्ज़ी की है क्या?'

'बाबा की सम्पत्ति का क्या हुआ है?'

'वह अधिग्रहण कर ली गयी है और उसके खेत और दुकान के टुकड़े-टुकड़े कर अन्य लोगों में बाँटे जा रहे हैं। मुझे पता चला है कि तुमने भी दुकान के एक विभाग के ठेके के लिये याचिका दी है।'

'किसी ने झूठ बोला है। भला मैं दुकान करूँगी अथवा बच्चों का पालन-पोषण करूंगी।'

'देखो लक्ष्मी ! मुझसे झूठ मत बोलो। मैं बहुत बुरा आदमी हूँ। जिसका दुश्मन हो जाता हूँ उसकी खुर-खोज मिटा कर ही दम लेता हूँ।'

'आप क्या कह रहे हैं? मैं कुछ भी समझ नहीं रही। साफ-साफ बताइये तो कुछ समझ में आये।'

'मैं नगर में गया था यह तो तुम्हें बताया है। वहाँ से पता कर आया था कि बैंक के मैनेजर लालाजी की सम्पत्ति के परिरक्षक होंगे और वही इसको सरकार की ओर से ठेके पर देंगे। मैं अब बैंक के मैनेजर से मिलने गया था। वहाँ पहले ही ठेकेदारों की भीड़ लगी थी। वहाँ दो बातों का पता चला है। एक तो यह कि बैंक का मैनेजर हरामी, ठेका उनको देता है जो वस्तु के मूल्य का दस प्रतिशत उसको रिश्वत में देता है और दूसरी बात यह पता चली है कि तुमने भी दो सहस्त्र रिश्वत देकर दुकान के एक विभाग

का ठेका लिया है।'

'भगवान का नाम लीजिये। मेरे पास चाय के लिये दूध का दाम तो है नहीं और यहाँ आप दो सहस्त्र रिश्वत देने की बात कह रहे हैं। किसी ने आपसे मजाक किया है।'

'हाँ, एक बात हो सकती है। पिताजी सरकारी कर्मचारी होने के कारण स्वयं तो कोई कारोबार कर नहीं सकते। उनके पास अलिखित धन सदा रहता है। अतः उन्होंने मेरे नाम पर स्वयं व्यापार करने का विचार कर लिया हो तो बात दूसरी है।'

वीरेन्द्र के मन में प्रकाश होने लगा। इस पर उसे एक बात सूझी। उसने कहा, 'देखो लक्ष्मी! तुम्हारे आभूषण कितने दाम के होंगे?'

'यह मैं क्या जानूँ?'

'सब निकाल लाओ।'

'तो अभी ही। भोजन करने से भी पहले?'

'नहीं। मैं भोजन करता हूँ, परन्तु बात तो अभी-अभी करने की है प्रातः तक देर भी हो सकती है।'

'अच्छा, आइये। भोजन करते हुए बात करते हैं।'

दोनों रसोईघर में जा बैठे। नौकर ने खाना परोस दिया। वीरेन्द्र ने खाते हुए कहा, 'मैं तुम्हारे भूषणों को बेचकर अथवा गिरवी रखकर धनपतराय की दुकान के एक विभाग का ठेका लेना चाहता हूँ। कम-से-कम दो सहस्त्र रुपया रिश्वत के लिये चाहिये।'

'मैं समझती हूँ कि इस मूल्य से अधिक के तो आभूषण होंगे। बाबा ने दिये थे। नानी ने भी दिये थे और कुछ मामियों ने भी दिये थे। परन्तु आप इस समय बेचेंगे कहाँ? रात के दस बज रहे हैं।'

'यहाँ एक ही व्यक्ति है और वह है तुम्हारा नाना, जो रुपया उधार देने का काम करता है। उनसे लेने का यत्न करूँगा।'

लक्ष्मी भौंचक्की हो मुख देखती रह गयी। उसने बहुत ही सँयत भाषा में कहा, 'उनको तो आप गाली दिया करते हैं।'

'हाँ। पर क्या किया जाये? अभी उनकी जायदाद जब्त करने का कानून नहीं बना।'

'और जिस बात का कानून बन गया है, उसके लिये दो सहस्त्र रिश्वत का चाहिये।'

वीरेन्द्र ने जल्दी-जल्दी पेट भरा और पत्नी के सोने के कमरे में रखे सेफ में से

भूषणों की सन्दूकची निकाल अनुमान लगाने लगा कि स्वर्ण पचास तोले से कम नहीं। उसने अनुमान लगाया कि ये दस हजार रुपये से अधिक मूल्य के हैं। अतः वह सन्दूकची बगल में दबाये हुए मोहिनी के पिता के घर पर जा पहुंचा। लाला सुलक्षण को जगाया गया और उसके सामने प्रस्ताव रखा गया। सुलक्षण ने भूषण देखे और कह दिया, 'इस पर मैं तीन हजार से अधिक ऋण नहीं दे सकता। हाँ, यदि इनको बेचना चाहो तो पाँच हजार दे दूँगा।'

'बाबा! सूद कितना लेंगे?'

'तुम तो अपने हो। इस पर भी कुछ तो लूँगा ही। आखिर हमें भी तो जीना है। एक रुपया प्रतिशत।'

वीरेन्द्र को यह भी कुछ अधिक ही समझ आया था, परन्तु इस समय जल्दी थी। उसको भय था कि कहीं सब दुकानें ही उठ गयीं तो सब मन-की-मन में ही रह जायेगी। उसने तीन हजार माँगा। जब सुलक्षण उसमें से छः मास का अग्रिम सूद काटने लगा तो वीरेन्द्र ने कहा, 'बाबा! अब रहने दो। मेरा काम नहीं चल सकेगा।'

'पर बेटा! यह मेरे व्यापार के नियमों के विरुद्ध है। अच्छा, ऐसा करो कि एक महीने का सूद दे दो। तुमसे अधिक नहीं माँगता।' इस प्रकार तीस रुपया एक महीने का सूद देकर वीरेन्द्र ग्यारह बजे रात के बैंक के मैनेजर की कोठी पर पहुँचा तो वहाँ भीड़ कम हो चुकी थी। वह कोठी के दरवाजे पर पहुँचा तो चपरासी ने हाथ बढ़ा दिया। अब तो वीरेन्द्र ने दो के स्थान तीन रुपये उसकी मुट्ठी में डाले तो चपरासी ने कहा, 'आइये! मैनेजर साहब उठने ही वाले हैं।'

मैनेजर सत्य ही उठ भीतर जाने वाला था कि वह वीरेन्द्र को देख खड़ा हो गया और बोला, 'पर आपकी चिट आये तो दो घण्टे हो चुके हैं। आप कहाँ थे?'

'आपके चपरासी को भीतर आने के टिकट के दाम का प्रबन्ध क़रने गया था।'

'ओह!' मैनेजर हँस पड़ा, 'हां, तो बताओ क्या चाहते हो?'

'लाला धनपतराय की एक दुकान का ठेका।'

मैनेजर पुनः बैठ मेज़ के दराज में से एक फाईल निकाल बोला, 'आप बहुत देर से आये हैं। अब तो दुकान का एक ही विभाग रह गया है। वह अन्न का विभाग है। इसमें लाभ कम होता है। इस कारण यह विभाग बचा हुआ है। बताओ, लोगे इसे?'

'हाँ, मैनेजर साहब!'

'दो हज़ार निकालिये।'

वीरेन्द्र ने समीप ही एक कुर्सी पर बैठते हुए जेब से नोटों का बण्डल निकाल

सामने रख दिया। मैनेजर ने नोट गिने। उसने सौ-सौ रुपये के बीस नोट गिनकर जेब में ठूस लिये। उसमें पहले भी बहुत भरे हुए थे। नोटों को जेब में रख उसने फाईल में से एक कागज़ निकाला और उस पर एक नम्बर के आगे वीरेन्द्र का नाम लिख कह दिया, 'कल बारह बजे बैंक में आ जाना। सर्टिफिकेट जारी हो जायेगा। तब एक व्यक्ति तुम्हारे साथ जायेगा और दुकान का चार्ज देकर लिखत-पढ़त कर लेगा। तदनन्तर सरकारी स्टैम्प-पेपर पर अनुबन्ध लिखकर देना होगा।'

वीरेन्द्र घर आया तो लक्ष्मी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। जब वीरेन्द्र ने बताया कि वह तीन सहस्त्र रुपया ऋण लेकर उसमें से दो सहस्त्र रुपया बैंक के मैनेजर को देकर अपना नाम अन्न की दुकान के सामने लिखा आया है तो लक्ष्मी को प्रसन्नता नहीं हुई। उसने अब अपने पति के कामों में मीन-मेख निकालनी आरम्भ कर दी। उसने कहा, 'नानाजी ने सूद अधिक लिया है। दूसरे, दस सहस्त्र से ऊपर दाम के स्वर्ण पर तीन सहस्त्र लेना स्वीकार कर ठीक नहीं किया। मैनेजर को दो सहस्त्र आपने दे दिया और बिना लिखत-पढ़त के। वह बेईमान हो जाये तो क्या करेंगे?'

'नहीं लक्ष्मी! इस बात की आशा प्रतीत नहीं होती। मुझे भय है कि बिना लिखत-पढ़त के तुम्हारे नाना के पास दस सहस्त्र की वस्तु छोड़ आया हूँ। उनके बेईमान होने की अधिक सम्भावना है।'

'परन्तु वह तो मेरे आपके जन्म से पहले से यही काम करते हैं और आज तक किसी प्रकार के झगड़े की बात सुनायी नहीं दी।'

'परन्तु यह सूदखोरी का काम स्वयं ही बहुत घृणित है।' लक्ष्मी ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, 'रिश्वत लेने से भी अधिक?' वीरेन्द्र ने सहज भाव में कह दिया, 'सब दुनिया ऐसी ही हो रही है।'

वीरेन्द्र को रात-भर नींद नहीं आयी। उसने आज तक व्यापार किया नहीं था। केवल सुनी-सुनायी से उसका ज्ञान था कि दुकानदारी में बहुत लाभ है। दुकानदार देखते-देखते लाखोंपति हो जाते हैं। वह स्वयं भी लाखोंपति बनने के स्वप्न देखता हुआ रात-भर बिस्तर पर करवटें लेता रहा। उसकी बेचैनी का एक कारण यह भी था कि एक सूदखोर के पास दस सहस्त्र के दाम के भूषण छोड़ आया है। यदि यह मान भी लिया जाये कि वह बेईमानी नहीं करेगा तब भी वह तो बूढ़ा हो रहा है। किसी भी दिन चल बसे तो क्या उसके लड़के भी वैसे ही ईमानदारी का व्यवहार करेंगे जितना उनका पिता था?

उसकी परेशानी का एक कारण यह भी था कि देवेन्द्र मिश्र ने किसके लिये दुकान के एक सबसे बढ़िया विभाग के लिये याचिका की है? वह कहता था कि

वीरेन्द्र पंच की पत्नी लक्ष्मी के लिये दुकान का एक विभाग लेने वहाँ गया था। परन्तु वह जानता था कि उसकी पत्नी के पास तो एक पैसा भी नकद नहीं था। उसके भूषण तो वह गिरवी रख आया है।

रह-रह कर उसके मन में यह बात आ रही थी कि लक्ष्मी का अनुमान ठीक हो सकता है कि उसके पिता सन्तराम ने ही लक्ष्मी के नाम पर दुकान का एक विभाग लेने का यत्न किया हो। रुपया तो उसके पास है ही। अलिखित मद का रुपया रिश्वत के लिये सुगमता से दिया जा सकता है।

प्रातः वीरेन्द्र उठा तो रात सो न सकने के कारण उसकी सुस्ती दूर नहीं हुई थी। लक्ष्मी ने नौकर को भेज दूध मँगवाया और पति को चाय बनाकर दी। इससे उसकी सुस्ती बहुत सीमा तक दूर हो गयी। वह अंगड़ाइयाँ लेता हुआ उठा और अपनी दिनचर्या में लीन हो गया।

प्रातः का अल्पाहार कर वीरेन्द्र सबसे पहले वकील देवेन्द्र मिश्र के घर पर पहुंचा। वह वहाँ नहीं था। वीरेन्द्र ने पता किया तो वकील साहब के मुंशी ने बताया कि वकील साहब लाला धनपतरायजी के यहाँ गये हैं।

'वहाँ क्या है?'

'लालाजी ने अपनी सम्पत्ति के अधिग्रहण के विषय में कुछ सम्मति लेने के लिये वकील साहब को बुलाया प्रतीत होता है।'

'वह क्या करने वाले हैं?'

'कह नहीं सकता, परन्तु 'इन्जंक्शन' का हुक्म तो लाया ही जा सकता है।'

'इससे क्या होगा?'

'होगा यह कि सम्पति का बँटवारा रुक जायेगा।'

'कितने काल के लिये?'

'जब तक मुकद्दमा होता रहेगा। इस अधिग्रहण के प्रतिकार में कुछ तो दाम सरकार को देना ही पड़ेगा। जब तक वह नहीं दिया जाता, तब तक सरकार सम्पत्ति का वितरण नहीं कर सकती।'

वीरेन्द्र के पाँव-तले से मिट्टी खिसकती प्रतीत हुई। उसने तो घर की सारी जमा-पूँजी लगा दी थी और बहुत लम्बी-चौड़ी आशाएँ बना कर। यदि कहीं दुकान दो वर्ष तक बन्द रह गयी तो अन्न तो दुकान में पड़ा-पड़ा सड़ जायेगा।

वह वहीं वकील साहब की बैठक में बैठा रहा। देवेन्द्र मिश्र को लालाजी के घर

से लौटने में देर नहीं लगी। उसके आते ही वीरेन्द्र ने पूछ लिया, 'लाला अब क्या कहता है?'

'कौन लाला?' वकील ने पूछ लिया।

'आप लाला धनपतराय के पास गये थे न?'

'हाँ। परन्तु उसे क्या कहना है? कानून से उसके कहने को कुछ है ही नहीं।'

इस आश्वासन से वीरेन्द्र की जान-में-जान आयी। अब उसने कह दिया, 'सुना था कि लालाजी बँटवारा रोकने के विषय में कुछ चाराजोई करने वाले हैं।'

'नहीं। वह तो बहत प्रसन्न प्रतीत होते हैं। रात बारह बजे बैंक के लोग सम्पत्ति पर अधिकार जमाने गये थे। लालाजी ने अपनी सम्पत्ति की पूरी सूची मैनेजर को दे दी हैं और एक मजिस्ट्रेट के सामने यह शपथपूर्वक बयान दे दिये हैं कि इसके अतिरिक्त उसके पास कुछ नहीं। उसने घर का एक-एक चक्की-चूल्हा तक लिखा दिया है।'

'उस समय मैं भी वहाँ था। बैंक के मैनेजर का कहना था कि लाला के घर की तलाशी ली जाये। इस पर मजिस्ट्रेट यह मान गया कि अधिग्रहण केवल उस सम्पत्ति का हो सकता है जो आय देती है। साथ ही एक लाख रुपये तक के मूल्य की सम्पत्ति तो लालाजी रख सकते हैं।'

'इसका अभिप्राय यह हुआ कि घर पर की सम्पत्ति की सूची ले ली गयी है, परन्तु व्यापार, खेत और किराये पर चढ़ी सम्पत्ति पर बैंक का अधिकार हो गया है।'

'अव मैं लालाजी से यह पूछने गया था कि वह मैनेजर के हुक्म पर किसी प्रकार की चाराजोई करना चाहते हैं?'

'उनका स्पष्ट कहना था कि सरकारी काम से वह स्वयं प्रसन्न हैं, परन्तु सरकार के लिये उनको चिन्ता है।'

'क्या चिन्ता है?' वीरेन्द्र ने पूछ लिया।

'लालाजी कहते थे कि सरकार व्यावसायिक संस्था नहीं। इस कारण सरकार व्यवसाय और खेती-बाड़ी के काम में सफल नहीं होगी। सरकार को घाटा रहेगा।'

वीरेन्द्र को लक्ष्मी की बात स्मरण आ गयी। उसने पूछ लिया, 'रात आप कह रहे थे कि किसी लक्ष्मी के लिये एक दुकान की ठेकेदारी की याचिका देने गये थे?'

'हाँ।'

'वह लक्ष्मी कौन है?'

'बताया तो था। वीरेन्द्र पंच की पत्नी है।'

'वह तो कहती है कि उसने किसी प्रकार की याचिका नहीं की।'

'वीरेन्द्रजी! यह मामला अब पति-पत्नी के बीच की बात हो गयी है। मैं अपना कहा वापस लेता हूँ। मुझे ज्ञात नहीं था कि वह आपसे यह व्यवसाय चोरी-चोरी करना चाहती है। खैर, आप यह समझिये कि मैंने आपको जो कुछ रात कहा था, वह गलत था। मेरी 'क्लायेण्ट' लक्ष्मी कोई अन्य है। वह आपकी पत्नी नहीं है।'

इस पर तो वीरेन्द्र को सिर से पाँव तक आग लग गयी। वह बोला, 'मैं जानता हूँ कि यह लक्ष्मी ने याचिका नहीं की। किसी अन्य ने लक्ष्मी के नाम से याचिका की है। मैं उस अन्य का नाम जानना चाहता था।'

'अब मैं इस विषय पर एक भी शब्द और नहीं कहूँगा। आप अपने आने का प्रयोजन बताइये?'

वीरेन्द्र ने कहा, 'और कुछ नहीं।' और वहाँ से उठ वह अपने श्वसुर सन्तराम के घर चला गया।

::4::

सन्तराम के घर से भी उसे कुछ पता नहीं चला। वहाँ उसे दस बज गये। तदनन्तर वह अपने खेतों पर चला गया। वहाँ एक नज़र डाल वह बैंक को चल पड़ा। बैंक में वह साढ़े-ग्यारह बजे पहुंचा था। वहाँ उसे पता चला कि लाला धनपतराय की सम्पत्ति के प्रबन्ध के लिये एक पृथक् क्लर्क नियुक्त हो चुका था और वह ठेकेदारों से कानूनी खानापूरी करने के लिये कागज़-पत्र तैयार कर रहा था।

कुछ ठेका लेने के प्रत्याशी उस क्लर्क को घेरे बैठे थे। उसमें कई लाला धनपतराय की दुकान के कर्मचारी थे और कुछ खेतों में काम करने वाले कर्मचारी भी थे। उनमें जमादार माना पहलवान भी बैठा था। माना ने वीरेन्द्र को देखा तो पूछने लगा, 'वीर जी! क्या आप भी कुछ ठेके पर ले रहे हैं?'

'हाँ, अनाज की दुकान के लिये मैंने याचिका की हुई है।'

'आपने रात मैनेजर साहब से बातचीत कर ली थी?'

'हाँ, हो गयी है।'

'तब ठीक है। मैं तो अपने लिये वह ट्यूबवैल वाला खेत ले रहा हूँ।'

'हाँ, तुमने रात भी बताया था।'

'सुना है कि आपकी पत्नी श्रृंगार के सामान वाली दुकान का विभाग ले रही है?'

वीरेन्द्र के कान खड़े हो गये। उसने पूछा, 'कौन कहता है?'

'यों ही गाँव में उड़ती बात सुनी थी।'

इससे आश्वस्त हो वीरेन्द्र ने कह दिया, 'यह बात वकील के बच्चे देवेन्द्र ने विख्यात की प्रतीत होती है। मुझे किसी ने बताया है कि वकील साहब की अपनी लड़की का नाम लक्ष्मी है और वह उसी के लिये यत्न कर रहे हैं।'

'हो सकता है। लोग ऐसे ही पंख देख पक्षियों का अनुमान लगाने लगते हैं।'

बात समाप्त हो गयी प्रतीत होती थी कि उसी समय मैनेजर साहब के कमरे में से उसकी अपनी पत्नी लक्ष्मी निकलती दिखायी दी। वह भौंचक्का मुख देखता रह गया। लक्ष्मी ने उसे देखा अथवा नहीं, यह कहा नहीं जा सकता। वह मैनेजर के कमरे से निकलते समय भूमि की ओर देख रही थी और उसी प्रकार भूमि की ओर देखते हुए वह बैंक से बाहर निकल गयी।

वीरेन्द्र की दृष्टि माना की ओर गयी। वह दूसरी ओर देखता हुआ मुस्करा रहा था। क्लर्क अभी भी अपने काम में लीन था। वीरेन्द्र के मन में आया कि भाग कर लक्ष्मी का मार्ग रोक खड़ा हो जाये और उससे पता करे कि वह मैनेजर के कमरे में क्या कर रही थी, परन्तु वहाँ किसी प्रकार का हल्ला-गुल्ला करने की बजाय उसने घर जाकर बात करने का विचार बना लिया और क्लर्क के समीप बैठा रहा।

ठीक बारह बजे क्लर्क मैनेजर के कमरे में एक बड़ा-सा रजिस्टर लेकर गया और आधा घण्टा वहाँ बातचीत करता रहा। तदनन्तर वह मैनेजर और धनपतराय के साथ बाहर निकला। तीनों ठेके के प्रत्याशियों के समीप आकर खड़े हो गये। इस समय तक कुछ और प्रत्याशी भी वहाँ एकत्रित हो गये थे।

मैनेजर ने सब प्रत्याशियों को सम्बोधित करते हुए कहा, 'जिन-जिनको जो-जो सम्पत्ति 'ऐलॉट' हुई है, उनकी सूची तैयार हो गई है। वे सब अपना-अपना नाम इन बाबू साहब से पता कर लें। तदनन्तर आप कानूनी कार्यवाही पूरी कर दें तो कल लालाजी और यही बाबू साहब आपको चार्ज दे देंगे।'

'दुकानों का चार्ज कल मिलेगा। खेतों का चार्ज परसों दिया जायेगा और मकानों तथा अन्य सम्पत्ति का चार्ज दो दिन उपरान्त मिलेगा।'

इतना कह मैनेजर और धनपतराय पुनः कमरे में चले गये और क्लर्क रजिस्टर

खोल उनके नाम सुनाने लगा जिनके नाम दुकानें 'ऐलॉट' हुई थीं। उन नामों में लक्ष्मी का नाम भी था। वीरेन्द्र ने क्लर्क से पूछा, 'लक्ष्मी तो यहाँ कोई नहीं?'

क्लर्क ने रजिस्टर देख कहा, 'उसके दस्तखत हो चुके हैं। आप सब रजिस्टर पर दस्तखत कर दीजिये।'

वीरेन्द्र ने अपने हस्ताक्षर करते हुए लक्ष्मी के हस्ताक्षर देखे। हस्ताक्षर उसकी पत्नी के ही थे। पत्नी के हस्ताक्षर के नीचे एक अन्य नाम लिखा था। वह नाम रेवती का था। जब वीरेन्द्र रेवती नाम को ध्यानपूर्वक देखने लगा तो क्लर्क ने कह दिया, 'यह एक नगर की रहने वाली महिला हैं। इसके नाम कपड़े की दुकान नगर से ही 'ऐलॉट' होकर आयी है। इसके हस्ताक्षर यहाँ नहीं हुए, परन्तु इसके अन्य कागज़ात भरे जा चुके हैं।'

वीरेन्द्र समझ गया कि यह 'एलॉटमेण्ट' लाला धनपतराय ने स्वयं ही करवायी है। उसे लक्ष्मी के विषय में भी विश्वास हो गया कि उसके बाबा ने ही उसे वह दुकान दिलवायी है।

इससे उसके मन की परेशानी कुछ कम हुई। साथ ही सन्तोष भी हुआ कि लालाजी की सम्पत्ति का एक बड़ा भाग उसे भी मिला है।

वीरेन्द्र मध्याह्नोत्तर चाय के समय घर पहुंचा। लक्ष्मी आज तो घर की नयी क्रॉकरी निकाल चाय और उसके साथ मिष्ठान्न रखे प्रतीक्षा कर रही थी। वीरेन्द्र प्रबन्ध देख मुस्कराया और पूछने लगा, 'यह धनपतराय की पोती की ओर से चाय की दावत है?'

'जी। वह तो आपके घर आने से पहले भी थी। परन्तु उसका आभास आज ही हुआ है।'

'आज जब आप प्रातः का अल्पाहार करके चले गये थे तब बाबा स्वयं आये और मुझे अपने साथ मोटरगाड़ी में बैठा बैंक में ले गये थे। तब तक मैनेजर नहीं आया था। इस कारण हम उसके कमरे में प्रतीक्षा करते रहे।'

'मुझे बाबा ने वहाँ बैठे-बैठे ही बताया कि तीन दिन हुए उन्हें विश्वास हो गया था कि यहाँ लूट मचने वाली है। इस कारण उन्होंने भी लूट में सम्मिलित हो जाना चाहा। वह स्वयं सम्मिलित हो नहीं सके, परन्तु उन्होंने काहन को, मुझे और कुछ अपने प्रिय कर्मचारियों को आगे कर दिया।'

'मेरे और रेवती बुआ के नाम नगर से ही दर्ज होकर आये हैं। हमारे स्थान पर बाबा ने ले-दे की है। मुझे आज्ञा हुई है कि कल दुकान का चार्ज ले लूँ।'

वीरेन्द्र धनपतराय की नीति को समझ नहीं सका।

अगले दिन वह और अन्य दुकानें लेने वाले प्रत्याशी क्लर्क को साथ लेकर लालाजी की दुकान पर जा पहुँचे। वहाँ काहन और दुकान के कर्मचारी दुकान के बाहर बैठे थे। दुकानों को सरकारी ताला लगा हुआ था। जब ये लोग दुकान पर पहुँचे तो एक-एक कर दुकान खोली गयीं और जिन-जिन को 'ऐलॉट' हुई थीं, उनको काहन के समीप खड़े कर्मचारी चार्ज देने लगे थे। वस्तुओं की सूचियाँ बनायी गई और उनकी कीमतें लगायी गई। श्रृंगार-विभाग में लक्ष्मी चार्ज लेने आयी थी। वीरेन्द्र को अन्न का चार्ज मिलने लगा था।

धनपत राय की दुकानों के द्वार तो पृथक-पृथक थे, परन्तु भीतर से सब एक ही थीं। इस कारण दुकान-दुकान में सीमा-बन्धी भी की जा रही थी। वीरेन्द्र को अपनी दुकान का चार्ज लेते हुए अवकाश नहीं मिला कि वह लक्ष्मी से बात करे। लक्ष्मी की दुकान दूसरे कोने में थी।

वीरेन्द्र दुकान का चार्ज ले, दुकान को ताला लगा रात के आठ बजे घर पहुंचा। लक्ष्मी वहाँ पहले ही पहुंची हुई थी।

'तो बन गयी हो दुकान की मालकिन?' वीरेन्द्र ने आते ही व्यंग्य भाव में लक्ष्मी से पूछा।

लक्ष्मी ने मुस्कराते हुए कहा, 'मैं तो दो घण्टे में ही चार्ज लेकर चली आयी थी। लालाजी ने अपने स्टोर के उसी कर्मचारी को मेरे साथ भेजा था जो पहले भी वहीं काम करता था। इस कारण मुझे देर नहीं लगी। उस व्यक्ति को सब-कुछ पहले ही ज्ञात था। मैं यहाँ साढ़े तीन बजे आ गयी थी।'

'तुम्हें यह करना था तो मुझे पहले बता देती जिससे मैं अनाज की दुकान लेता ही नहीं।'

'मुझे तो स्वयं मालूम नहीं था कि मुझे भी इस बँटवारे में सक्रिय भाग लेना पड़ेगा। मैं अब भी यह समझ रही हूँ कि बाबा ने अपनी सम्पत्ति का अधिकांश अपने पास ही रखने का यह सब आयोजन किया है। मुझे और अपने बहुत से कर्मचारियों को उन्होंने दुकान और खेतों के स्वामी बनवा दिया है। मेरा अनुमान है कि उनको रुपया भी उन्होंने ही दिया है।'

वीरेन्द्र को अब माना पहलवान की बात समझ में आ गयी। दुकान के अधिक लाभ देने वाले विभाग लालाजी के भूतपूर्व कर्मचारियों को ही 'ऐलॉट' हुए थे। वह मन में विचार कर रहा था कि निश्चय ही लालाजी एक सजग और सतर्क व्यापारी

व्यक्ति हैं।

'और लक्ष्मी!' वीरेन्द्र ने पूछ लिया, 'कपड़े की दुकान तो रेवती बुआ के नाम गयी है?'

'हाँ। उसका छोटा लड़का शम्भु चार्ज लेने आया हुआ था। वह अपनी माँ से 'पॉवर ऑफ अटॉर्नी' लेकर आया था।'

'और वह स्वयं क्यों नहीं आयीं?'

'वह मेरे पिताजी का मुख देखना नहीं चाहतीं।'

'क्यों? वह तो उनका भाई लगता है।'

'कुछ बचपन का द्वेष है। मैं जानती नहीं।'

'अब तुम भी दुकानदारी करोगी और मैं भी दुकानदारी करूँगा।'

'बाबा कह रहे थे कि मेरी दुकान का प्रबन्ध तो मुझे नहीं करना होगा। उनका नियुक्त किया कर्मचारी ही सब देख लिया करेगा और आपके विषय में वह कहते थे कि दिवाला पिट जायेगा।'

'क्यों?'

'उनका कहना था कि आपको अपनी आय में जीवन चलाने का ढँग नहीं आता। जो व्यक्ति अपने साधनों में जीना नहीं जानता, वह रईसी तो कर सकता है, परन्तु व्यापार नहीं।'

'रईसी उद्देश्य है। व्यापार साधन है।'

'हाँ। परन्तु रईस वे होते हैं जो दूसरों की आय पर जीवन निर्वाह करते हैं। व्यापार और उद्योग अपनी कमाई पर जीवन निर्वाह का नाम है। आप केवल रईसी कर सकते हैं।'

वीरेन्द्र कुछ यह समझा कि लक्ष्मी का बाबा उसे व्यर्थ का व्यक्ति समझ रहा है। इससे उसे क्रोध तो आया, परन्तु वह चुप कर रहा।

लक्ष्मी ने पति के लिये चाय का प्रबन्ध कर रखा था। आज उसके पास आभूषणों पर लिये ऋण में से बचा हुआ धन था। इस कारण उसने चाय के साथ मिठाई इत्यादि मँगवा रखे थे।

वे चाय पी ही रहे थे कि लालाजी का वही कर्मचारी जिसने लक्ष्मी की श्रृंगार-सामग्री की दुकान का चार्ज लेने में सहायता की थी, आ गया। उसे भी भीतर मकान की बैठक में बुला लिया गया। उसने आकर कहा, 'लालाजी ने भेजा है। वह कह रहे

हैं कि अब मैं कार्य के लिये आपके पास आया करूँ। लालाजी बीच में नहीं आना चाहते। इस कारण वह चाहते हैं कि आप मुझे दुकान पर कार्य करने का नियुक्ति-पत्र दें और काम करने की आज्ञा दें तो मैं कल से दुकान पर जाना आरम्भ कर दूँगा। आज तक का वेतन लालाजी ने दे दिया है। साथ ही उन्होंने मेरे बोनस के धन का चैक भी दे दिया है।'

लक्ष्मी इस सबका अर्थ समझने का यत्न कर रही थी। अभी तक तो वह इतना ही समझी थी कि बाबा ने दुकानें और खेत अपने विश्वस्त कर्मचारियों के नाम करा दिये हैं। वास्तव में वह स्वयं ही मालिक बने हैं। वह यह आशा कर रही थी कि बाबा ने अपना कर्मचारी भेज एक प्रकार से दुकान पर अपना अधिकार बना रखा है। परन्तु सीताराम के अब आने से और नियुक्ति-पत्र माँगने से उसको अपना विचार गलत प्रतीत होने लगा था। उसने कहा, 'सीताराम! मैं तो दुकान की मालकिन हूँ नहीं। मेरा तो एक पैसा भी बीच में नहीं लगा हुआ। तुम जानते हो कि मैं तो नाम-मात्र की मालकिन बनायी गई हूँ। इस कारण मैं नियुक्ति-पत्र दूँ अथवा नहीं, इस पर विचार कर रही हूँ।'

'परन्तु बाबा के उन सब कर्मचारियों से ऐसा ही हुआ है जिनको उन्होंने दुकानें अथवा खेत दिलवाये हैं। आपमें और उनमें अन्तर इतना रहा है कि मैनेजर साहब को रिश्वत का धन दिया तो लालाजी ने ही है परन्तु उनके 'प्रोविडेण्ट फण्ड' में से ही दिया है। अथवा उनको कहा है कि कहीं से ऋण ले आयें।

'मुझे लालाजी ने यही दुकान लेने के लिये कहा था। मैंने लेने से इन्कार कर दिया था। इस कारण उन्होंने मुझको वैसे ही कर्मचारी बना रहने को कहा है, जैसे मैं पहले था।'

'परन्तु तुमने यह दुकान स्वयं क्यों नहीं ली?'

'बहनजी! जो कुछ यह हुआ है, वह मुझे ठीक नहीं लग रहा।'

'क्या ठीक नहीं हुआ?' अब वीरेन्द्र ने बातों में हस्तक्षेप कर पूछ लिया। इस 'ठीक नहीं हुए' से उसको अपना भी सम्बन्ध समझ आया था।

सीताराम ने कहा, 'इस दुकान के लिये मैनेजर दो हजार रुपया रिश्वत माँग रहा था। मुझे लालाजी की नौकरी करते हुए तीन वर्ष चार मास हुए हैं। इतने काल में मेरा फण्ड चौबीस सौ रुपये के लगभग बनता था, परन्तु उसमें से मैं एक सहस्त्र रुपया निकलवा चुका था। लड़के के जन्म के समय पत्नी बीमार हो गयी थी और बाद में जब वह ठीक हुई तो लड़के का मुण्डन-संस्कार किया। इस सब पर एक सहस्त्र रुपये

से ऊपर व्यय हुआ था। वह मैंने अपने 'प्रॉविडेण्ट फण्ड' में से ऋण लिया हुआ है। अतः मुझे मैनेजर को देने के लिये छः सौ रुपये के लगभग ऋण लेना पड़ता। यह मैंने उचित नहीं समझा। दूसरे, रिश्वत देने का मेरा चित्त नहीं किया। तीसरे, सरकारी समाजवाद में मुझे कुछ भी तो तत्त्व दिखायी नहीं दिया। मैं तो पहले एक मालिक की नौकरी करता था। मेरा सम्बन्ध उस एक से था। एक की सेवा करनी पड़ती थी। अब यदि मैं दुकान ले लेता तो एक ऐसे आदमी की नौकरी करनी पड़ती जो स्वयं मालिक नहीं। उसका दुकान की उन्नति-अवनति में हित-अहित नहीं। साथ ही मुझे भय है कि वह मेरी आय में से नियमित रूप में हिस्सा माँगता।

'बहनजी! मुझे यह पसन्द नहीं आया।'

वीरेन्द्र भौंचक्का मुख देखता रह गया। वह देख रहा था कि दुकान का भाड़ा, माल के दाम पर ब्याज, रिश्वत के लिये सुलक्षणमल से लिये ऋण पर ब्याज, ये सब खर्चे तो देने ही होंगे।

लक्ष्मी को भी सीताराम की बात में तथ्य प्रतीत हुआ। वह बोली, 'अच्छा सीताराम! तुम चाय पियो, फिर मैं तुम्हारे साथ बाबाजी के पास चलती हूँ। वहीं सब बात निश्चय करूंगी।'

इस समय वीरेन्द्र ने पूछ लिया, 'आप क्या वेतन पाते हैं?'

'तीन सौ रुपये। इसमें से दस प्रतिशत 'प्रोविडेण्ट फण्ड' का कट जाता था। शेष दो सौ सत्तर रुपये मिलते थे। प्रोविडेण्ट फण्ड में से लिये ऋण पर नौ प्रतिशत वार्षिक का ब्याज कटता है। वर्ष में नब्बे रुपये यह कट जाते हैं। मैं अभी ऋण की रकम चुका नहीं रहा। क्योंकि यदि वह दूँगा तो ऋण का बीस प्रतिशत प्रति वर्ष वापस करना होगा। अतः दो सौ रुपया वार्षिक यह देना पड़ेगा।'

::5::

जब लक्ष्मी सीताराम के साथ अपने बाबा के घर को जाने लगी तो वीरेन्द्र भी उठ साथ चल पड़ा। उसने चलते हुए कहा, 'मेरी समझ में आ रहा है कि तुम्हारे बाबा ने यह दुकान पूर्ण रूप से तुमको ही ले दी है। इस कारण मैं उनका धन्यवाद करने चल रहा हूँ।'

'परन्तु आप तो बाबा को चोर समझते थे और उनसे की गयी चोरी ही तो मुझे मिली है। भला इसके लिये आप क्यों धन्यवाद करेंगे?'

'चोरी का तो यह सब-कुछ है ही। इस पर भी क्योंकि यह सब मेरी पत्नी को मिला है, इस कारण धन्यवाद तो करना ही चाहिये।'

'मैं तो सीताराम की बात सुन इसको लेकर प्रसन्न नहीं हूँ। यह अधिक अच्छा होता यदि बाबा के स्वगर्वास होने पर मुझे उनकी सम्पत्ति में से उचित भाग मिलता। तब यह इससे कहीं अधिक होता, साथ ही यह रिश्वत और भविष्य में होने वाले फीताशाही का नियन्त्रण भी न होता। आप तो एक अन्य जुए में फंस गये हैं। तीन सहस्र के ऋण के नीचे दब गये हैं।'

सीताराम इन पति-पत्नी को लेकर लालाजी के घर पहुंचा तो वहाँ पहले ही बहुत लोग एकत्रित हो रहे थे। सब मकान के आँगन में कुर्सियाँ लगाकर बैठे थे। काहनचन्द उनसे बातचीत कर रहा था। ये भी वहीं जा खड़े हुए। काहन ने इन्हें देखा तो कह दिया, 'लक्ष्मी बेटा! पिताजी भीतर हैं। तुम वहाँ चली जाओ।'

सीताराम उनको लेकर घर की बैठक में चला गया। वहाँ धनपतराय और मुखिया बैठे थे। काहन की पत्नी मालती और लक्ष्मी की माँ मोहिनी रसोईघर में थीं।

धनपत ने लक्ष्मी इत्यादि को देखा तो हँसते हुए कहा, 'आओ, वीरेन्द्र! आज तुम भी मुझे बधाई देने के लिये आए हो।'

धनपत के हँसने में एक कटु व्यंग्य का भास हो रहा था। इससे वीरेन्द्र के मन में टीस अनुभव हुई थी। वह दुकान लेकर अब एक बोझ के नीचे दब गया अनुभव करने लगा था। इस समय धनपतराय को एक व्यंग्यात्मक हँसी हँसते हुए देख, वह भौंचक्का हो लालाजी का मुख देखता रह गया।

सुखिया शोकाकुल और गम्भीर भाव में थी। उसने कहा, 'आओ, बेटा वीरेन्द्र! आज तुम भी आये हो। बहुत ही प्रसन्नता की बात है। लालाजी ने आज अपनी सम्पत्ति पर सरकारी अधिकार हो जाने की प्रसन्नता में अपने सब कर्मचारियों को भोज दिया है। इसमें तुम भी सम्मिलित हो सकते हो। लक्ष्मी के पिता को भी बुलाया था, परन्तु वह घर पर नहीं मिला।'

'माँ!' लक्ष्मी ने पूछ लिया, 'तो बाबा इसको प्रसन्नता का अवसर मानते हैं?'

उत्तर धनपत ने दिया, 'हाँ, बेटा! मेरे लिये यह मुक्ति-दिवस है। साथ ही मैं यह जानता हूँ कि यह उन सबके लिये जिन्होंने दुकानें ली हैं तथा जो कल खेत ले रहे हैं, एक अति विपदा का काल आरम्भ हुआ है।'

'तो आप प्रसन्न हो रहे हैं कि हम मुसीबत में फँस रहे हैं?' वीरेन्द्र ने पूछ लिया।

इस पर धनपतराय गम्भीर हो वीरेन्द्र का मुख देखने लगा। उसने विचारित भाव प्रकट करते हुए कहा, 'नहीं वीरेन्द्र! आप सबके आने वाले कष्ट पर मुझे खुशी नहीं है। मैं आप सबके लिये दया का भाव अनुभव करता हूँ। यह प्रसन्नता तो अपने लिये है। भीतर लक्ष्मी की माँ और चाची खीर और हरी मिर्च के पकौड़े बना रही हैं। बाहर वे सब कर्मचारी बैठे हैं जो मेरे काम से विनिर्मुक्त हुए हैं। इनमें कुछ वे भी हैं जिन्होंने दुकानें ली हैं अथवा जो कल खेत लेने जा रहे हैं। मैं सबको विदाई देते समय उनको खीर खिलाकर मुख मीठा करा रहा हूँ।'

वीरेन्द्र ने पूछ लिया, 'और बाबा! यह मिर्च किसलिये खिला रहे हैं?'

'मिर्च तो खीर हज़म करने के लिये है।'

लक्ष्मी को इस दावत में कुछ अस्वाभाविकता अनुभव हुई थी। इस कारण वह इसमें सम्मिलित नहीं होना चाहती थी। उसको समझ आया था कि बाबा अपने जीवन-काल में ही अपना श्राद्ध कर रहा है। यह सब उसे अरुचिकर प्रतीत हो रहा था। अतः वह अपनी बात कर वहाँ से टल जाना चाहती थी। उसने कहा, 'बाबा! मैं तो कुछ अपने विषय में पूछने आयी थी।'

'अच्छा! मैं तो समझा था कि तुम्हारी माँ ने तुमको दावत पर बुलाया है।'

'नहीं बाबा! मैं तो सीताराम की बात सुन आपसे कुछ जानने आयी थी।'

'तो पूछो। क्या जानना चाहती हो?'

'सीताराम चाहता है कि मैं उसे नियुक्ति-पत्र दूं।'

'हाँ। इससे मालिक और सेवक दोनों को अपनी-अपनी सीमा और अधिकारों का ज्ञान हो जाता है। भविष्य में सम्बन्धों को सुव्यवस्थित रखने के लिये यह आवश्यक है।'

'परन्तु मैं तो अभी अपने को मालिक मानती नहीं। वास्तव में मैं समझी ही नहीं कि मैं क्या हूँ और क्यों हूँ?'

'तुम मेरी पोती हो। यह तुम जानती हो अथवा नहीं? पोती होने के नाते तुमको मेरी बँट रही सम्पत्ति में से कुछ मिलना चाहिये था। वह मैंने देने का यत्न किया है। दो सहस्र और लगभग दो सौ रुपया अतिरिक्त दुकान दिलवाने में व्यय हुआ है। रही यह बात कि तुम मेरी भांति स्वतन्त्र मालिक नहीं हो। यह काल की गति के कारण है। मैं स्वतन्त्र युग का जीव था और तुम समाजवादी युग की प्राणी हो। तुम्हारे बन्धन तो युग-धर्म के अनुसार हैं।

'वैसे बन्धन तो मुझ पर भी थे, परन्तु वे बन्धन सरकार अथवा सरकार की नौकरशाही के नहीं थे। वे धर्म के बन्धन थे। मैं परमात्मा की ओर से इस सब सम्पत्ति का परिरक्षक नियुक्त हुआ मानता था और अपने खाने-पीने से जो कुछ बचता था, वह धर्मार्थ व्यय कर देता था।'

'अब, समाज ने मुझे परिरक्षक पद से हटा कर सरकार अर्थात् सरकारी नौकरशाही को परिरक्षक नियुक्त कर दिया है। अतः मैं एक 'रिटायर' होने वाले अधिकारी की भाँति कार्य-मुक्त हो रहा हूँ।'

'मैं यह नहीं पूछ रही! मेरा यहाँ आने का आशय यह है कि मैंने न तो दुकान लेने की इच्छा प्रकट की है और न ही इसे लेकर मुझे प्रसन्नता अनुभव हो रही है। मैं यह भी नहीं जानती कि इसको किस, प्रकार चला पाऊँगी।'

'उसका प्रबन्ध मैंने कर दिया है। सीताराम एक नेक, परमात्मा से डरने वाला ईमानदार और व्यापारिक बुद्धि वाला व्यक्ति है। यह तुम्हारा काम करेगा और तुम प्रातः-सायं दो बार वहाँ जाकर देख-रेख कर आया करो। शेष सब-कुछ यह करेगा।'

'हाँ, मेरी इच्छा है कि यदि दुकान में लाभ हुआ तो वर्ष के उपरान्त उसमें से इसे उचित भाग देकर इसके अहसान से मुक्त हो जाना। इस पर भी यह तुम्हारे विचार करने की बात है।'

'मैं तो यह समझी थी कि दुकान आपकी है। मैं तो सरकार की आँखों में धूल झोंकने के लिये एक परदा निर्माण की गयी हूँ।'

'नहीं लक्ष्मी! मुझे तुम इतना मक्कार न समझो। मैंने यह दुकान तुम्हारे लिये ही ली है। मैं जानता हूँ कि तुम्हें अपने पिता से कुछ नहीं मिलने वाला। इस कारण यह थोड़ा-सा धन अपने पास से व्यय कर के तुम्हें पोती होने के नाते दे रहा हूँ।'

इस समय घर का नौकर सरवन आया और बाबा से पूछने लगा, 'बाबा! आप भी बाहर सबमें बैठकर खाएँगे अथवा आपके लिये यहाँ मेज लगा दूं?'

'मैं भी सब में बैठकर खाऊँगा। हाँ, लक्ष्मी यहाँ अपनी माँ चाची और दादी के साथ बैठकर खायेगी। वीरेन्द्रजी बाहर मेरे साथ बैठेंगे।'

'पर बाबा!' लक्ष्मी ने कह दिया, 'हम तो घर खाना बनाने के लिये कह आये हैं। माँ ने मुझे तो बुलाया नहीं।'

'घर का खाना भूखों में बाँट देना। आज तो यहीं खाओगी।'

धनपत उठ खड़ा हुआ। वह वीरेन्द्र से बोला, 'चलो, बाहर चलें।'

वीरेन्द्र बाबा के साथ चलते हुए बोला, 'सीताराम कह रहा था। कि मुझे इस

काम से लाभ नहीं होगा। ऐसा आपने कहा है?'

'नहीं, यह बात नहीं। सीताराम समझा नहीं। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि तुमको अपनी आय के भीतर रहना नहीं आता। इस कारण तुम्हारा अवश्य दिवाला निकलेगा।

'देखो, मैं तुम्हें अपने पिता की एक बात बताता हूँ। वे इस गाँव में बे-सरो-सामान आये थे। यहाँ एक खेत में दो पैसे नित्य पर नौकरी करने लगे थे। भोजन वह खेत की उपज में से कर लेते थे और दो पैसे में एक पैसा नित्य बचा, शेष एक पैसा नित्य में निर्वाह करते थे। वह बहुत सस्ता काल था।'

'पिताजी ने एक-एक पैसा जमा कर चार आने जमा किये और बाजार में मक्की के भुट्टे भून कर बेचने की दुकान कर ली। दिनभर खेत में काम करते थे और सायंकाल भुने हुए भुटटे अथवा उबली मक्की नमक-मिर्च लगाकर बेचते थे। इस प्रकार दूसरे वर्ष में उनके पास पचास रुपये हो गये थे। इन पचास रुपये से उन्होंने बच्चों के लिये चीनी की मीठी गोलियों इत्यादि की दुकान कर ली। एक दिन वह पैदल ही नगर गये। एक दिन जाने में और एक दिन आने में लगा और पचास रुपये का सामान लेकर आ गये। वह खेत पर भी काम करते थे। एक महीने में पचास से डेढ़ सौ बन गया। तीन महीने में उन्होंने गाँव में दुकान ले ली और उसमें सुई, धागा तथा बटन इत्यादि रख लिये।

'पिताजी बारह वर्ष की आयु में घर से भाग कर आये थे और अट्ठारह वर्ष की आयु में एक अच्छी दुकान के मालिक बन गये थे। उनका कहना था कि नित्य दुकान की बिक्री से लाभ का अनुमान लगा, वह आधा अपने निजी व्यय के लिये निकाल लेते थे, आधा लाभ दुकान में ही डाल देते थे। इसको मैं अपनी आय के भीतर जीवन चलाना कहता हूँ।

'देखो वीरेन्द्र! ऐसा मैं कल तक करता रहा हूँ। दुकान में जो कुछ डालता था, वह पूँजी में वृद्धि होती थी और जो आधा निकालता था, उसमें घर का व्यय और दान-दक्षिणा तथा सगे-सम्बन्धियों की भेंट-पूजा होती थी।'

'ऐसा तुम नहीं कर सकोगे। तुम्हारी सरकार भी नहीं कर सकती। सरकार तो प्रति वर्ष घाटे का बजट बनाती है। यह दिवाला निकालेगी और तुम भी जीवन में यही करने का अभ्यास रखते हो। इस कारण तुम भी दिवाला निकालोगे।'

वीरेन्द्र कहने लगा, 'मैं तो क्षत्रिय स्वभाव का हूँ। मैं वर्तमान काल की बात ही विचार करता हूँ। एक बनिया तो अपने पोतों-परपोतों के लिये सौ वर्ष पूर्व ही विचार

करता है।'

'मैं बनिया नहीं हूँ। पिताजी राजपूत परिवार में उत्पन्न हुए थे। मेरी माँ भी ठाकुर की पुत्री थी। सुखिया भी यहीं पड़ोस के एक ज़मींदार की लड़की है। परन्तु हम सबकी बुद्धि वैश्य की है। इसी कारण हम व्यापार में सफल हुए हैं, पर तुम नहीं हो सकते।'

'आपकी बात को मिथ्या करने का यत्न करूँगा।'

'ठीक है। यह देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँगा।'

तीस से अधिक कर्मचारी थे जिनको दावत पर बुलाया गया था। गाँव में इतने ही लोग थे जो उसकी दुकान और खेतों में काम करते थे। कुछ कर्मचारी गाँव से बाहर के थे और कुछ उस दिन गाँव से कहीं गये हुए थे। ये कर्मचारी थे जो पक्के रूप में उसकी सेवा में थे और जिनका 'प्रोविडेण्ट फण्ड' उसके पास जमा था। इनमें से पाँच कर्मचारियों को उसने 'प्रोविडेण्ट फण्ड' में से रुपये देकर दुकान का एक-एक विभाग ले देने में सहायता की थी। कुछ दुकान के कर्मचारी थे- वे मालिक बनने के स्थान नौकरी करना अधिक लाभ की बात समझते थे। उनको उसने उन्हीं लोगों के पास नौकर करवा दिया था जिन्होंने दुकानें ली थीं। इनमें सीताराम भी एक था।

शेष लोग खेतों में काम करने वाले थे। ट्यूबवैल का मिस्त्री था, टैक्टर का ड्राईवर था, जमादार था और उनके साथ खेतों के रखवाले थे। जो कर्मचारी दिनानुदिन काम पर लगाये जाते थे, उनको निमन्त्रण नहीं था।

काहन को एक दुकान 'ऐलॉट' की गयी थी। एक दुकान धनपत को भी लेने के लिये कहा गया था, परन्तु धनपत ने लेने से इन्कार कर दिया था। उसने सरकारी कर्मचारियों के अधीन रह कर काम करने में अरुचि प्रकट की थी। काहन ने दुकान ले ली थी जिससे घर के व्यय के लिये उपार्जन कर सके। उसने खेतों में काम का मशीनरी विभाग लिया था। दुकान के इस विभाग में घास छीलने के खुर्पे और हँसली से लेकर ट्रैक्टर तक बिकते थे। बिजली का सामान भी इसी दुकान में बिकता था।

जब खा-पीकर सब तृप्त हो गये तो धनपतराय ने सबको कह दिया, 'इस उलटी गति से चलने वाले काल में मैंने इस दावत में भी उलटा व्यवहार स्वीकार किया है। जो कोई उच्च्च अधिकारी अपनी सेवाओं से विनिर्मुक्त होता है तब उसके अधीन कर्मचारी उसे विदाई की दावत देते हैं और यहाँ मैं कार्य से विनिर्मुक्त होने पर अपने अधीन कर्मचारियों को यह दावत दे रहा हूँ। यह काल की गति के अनुकूल ही है।

'इस काल में जीवन का मूल्य बदल गया है। इस कारण मैं दावत की प्रथा भी बदल रहा हूँ। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि आपने प्रसन्नतापूर्वक इस दावत में

भाग लिया है। इसके उपरान्त आपका सम्बन्ध मुझसे वह नहीं रहेगा जो आज तक रहा है। अब आपको वह सम्बन्ध मेरी सम्पत्ति के परिरक्षक से बनाना होगा।

'मैं जानता हूँ कि आप में से बहुत ऐसे हैं जो यह समझते हैं कि आपकी उन्नति में मैं बाधक था। अब वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी उन्नति के मार्ग पर चल सकेंगे। मेरी शुभ कामना उनके साथ है।

'इस पर भी मैं उनको चेतावनी देना चाहता हूँ कि मेरा स्थानापन्न की सम्पत्ति का परिरक्षक मुझसे अधिक वेतन पाने वाला व्यक्ति होता हुआ भी मुझसे कम उत्तरदायित्व रखता है। उसका इस पूर्ण व्यवसाय के हानि-लाभ से सम्बन्ध नहीं। इस कारण यह व्यवसाय चल नहीं सकेगा। अतः आपकी उन्नति भी इसके साथ न केवल चल नहीं सकेगी, वरन ह्रास में भी परिवर्तित हो सकती है। यह आप लोगों के हित में होगा कि आप इस व्यवसाय को ठेकेदारी के रूप में रहते हुए भी परिरक्षक की भाँति कर्मचारी ही बन जायें। परन्तु यह मेरी सम्मति मात्र ही है। आप सबको अपना-अपना हानि-लाभ देखना चाहिये।'

'मुझसे जो कुछ आपका लेना-देना बनता है, वह एक सप्ताह के भीतर हिसाब कर, दे दिया जायेगा।'

'अब आप जा सकते हैं। भगवान आप सबका भला करे।' इतना कह धनपत ने सबको हाथ जोड़ नमस्ते कही, सबको हाथ मिला-मिला कर विदा किया।

::6::

धनपतराय का व्यवसाय और आय देने वाली सम्पत्ति का ही राष्ट्रीयकरण किया गया था। उसके अपने मकान तथा उसके अपने नाम पर जमा धन को सरकार ने नहीं लिया था। लगभग बीस लाख की सम्पत्ति अधिग्रहण कर ली गयी थी। शेष धनपतराय के पास गाँव में रहने का मकान और बैंक में पचास हजार रुपये से कुछ ऊपर धन राशि बची थी।

बीस लाख की सम्पत्ति का अधिग्रहण करने पर इसका प्रतिकार छः हज़ार रुपया स्वीकार किया गया और वह भी पाँच सौ रुपया महीना की किशत पर। स्टेट बैंक के एजेन्ट ने कई बार यत्न किया था कि यदि धनपतराय अपनी ओर से कुछ व्यय

करे तो उसकी अधिग्रहण की हुई सम्पत्ति का मूल्य छः हजार से बढ़कर पचास-साठ हज़ार हो सकता है। परन्तु धनपत ने इस दिशा में एक पैसा भी व्यय करना उचित नहीं समझा और प्रति मास पाँच सौ रुपया मिलने लगा। इसमें भी ढील होने लगी।

इस समय गाँव के वकील ने कहा भी कि उसे उच्च अधिकारियों के पास याचिका करनी चाहिये कि यह प्रतिकार बहुत कम है, परन्तु धनपत ने कहा, 'मेरे पास इस प्रकार का झगड़ा करने के लिये समय ही कहाँ है?'

जहाँ तक दुकानों का सम्बन्ध है, बीस दुकानों में केवल तीन दुकानें लाभ देती थीं। शेष तो हानि पर चल रही थीं। तीन तो बन्द ही हो चुकी थीं। इन बन्द होने वाली दुकानों में वीरेन्द्र वाली दुकान सबसे पहली थी। चल रही दुकानों में सबसे अधिक लाभ देने वाली दुकान काहन की थी। काहन ने मशीनरी की दुकान की आय में से एक अन्य दुकान ले ली थी।

वीरेन्द्र ने दुकान को ताला लगा सरकार को नोटिस दे दिया कि मैं इस दुकान का ठेका छोड़ता हूँ। यह चल नहीं सकती। बैंक के मैनेजर ने वीरेन्द्र को बुलवाया। वीरेन्द्र मैनेजर के सामने उपस्थित हुआ तो मैनेजर ने पूछ लिया, 'ठेका छोड़ने की बात लिखकर आपने दी है?'

'जी।'

'किसलिये?'

'इस दुकान में घाटा हो रहा है।'

'परन्तु लाला के काल में तो इसकी किताबों में लाभ दिखाया गया है।'

'हाँ, परन्तु मैनेजर साहब! वह लाला धनपतराय थे और मैं वीरेन्द्र हूँ। दोनों में अन्तर है न? साथ ही तब यह उनकी सम्पत्ति थी। वह इसमें समय-समय पर अतिरिक्त रुपया लगाते रहते थे। फसल के समय अन्न-अनाज सीधा किसानों से लेकर भर लेते थे और फिर ऊँचे दाम पर बेचते थे। यहाँ सरकार चाहती है कि मैं उसके गोदामों से ही माल लूँ और वह तृतीय श्रेणी का माल प्रथम श्रेणी का कहकर मुझे मिल जाता था। अतः प्रत्येक बार मुझे सस्ते दाम पर बेचना पड़ता था।

'सबसे बड़ी बाधा थी अनेक विभागों के कर्मचारियों से व्यवहार की। और सब स्थानों पर बाबू लोग मेज़ के नीचे से कुछ प्राप्त करने में लीन रहते थे। अन्न-अनाज की दुकान इतना कुछ नहीं दे सकी।

'मैं समझता हूँ कि दुकान के आरम्भ में इसमें बीस सहस्त्र का पूँजी लगी थी। इसमें मैंने अपनी ओर से पाँच हजार रुपया लगाया है और अब इसकी पूँजी सोलह-

सत्तरह हज़ार की है। मैंने इसमें से दो सौ रुपया महीना घर के खर्च के लिये ही निकाला है। यह मेरी दिनरात मेहनत का प्रतिकार भी नहीं हो सकता।'

'देखो वीरेन्द्र! मैं बैंक की ओर से तुम्हें इस दुकान को चलाने के लिये दस सहस्त्र रुपया ऋण दिलवा सकता हूँ।'

'नहीं साहब! मैं यह काम नहीं करूंगा। आप अपना आदमी भेज चार्ज ले लें और जो कुछ मेरा इसमें बने, मुझे मिल जाये।'

विवश मैनेजर को एक क्लर्क भेज चार्ज लेना पड़ा। क्लर्क को एक सहस्त्र रुपया रिश्वत देनी पड़ी और उसने दुकान के माल का दाम बाईस हज़ार आँक दिया। परिणाम यह हुआ कि क्लर्क को ले-देकर भी वीरेन्द्र एक सहस्त्र रुपया लाभ पा गया।

यह लाला धनपतराय की सम्पत्ति का अधिग्रहण करने के एक वर्ष के भीतर ही हुआ था। वीरेन्द्र ने पत्नी के आभूषण लाला सुलक्षणमल के पास गिरवी रखकर तीन सहत्र रुपया ऋण लिया था। बाद में जब दुकान में फसल के समय अपने पास से पूँजी लगानी पड़ी तो आभूषण बेचकर जो कुछ प्राप्त हुआ, वह सब भी दुकान में लगा दिया गया था। अतः जब बैंक का एक सहस्त्र रुपये का ड्राफ्ट लेकर घर पहुंचा और रुपया लक्ष्मी के हाथ में दिया तो लक्ष्मी ने कहा-

'तो आपने एक वर्ष के भीतर ही बाबा की बात को सत्य सिद्ध कर दिया है।'

'बाबा की पेशीनगोई इस कारण सत्य हुई है कि मैं दुकान की ओर ध्यान नहीं दे सका। पंचायत का काम भी तो रहता था।'

'परन्तु सिद्धू भी तो पंचायत का सदस्य है और वह तो कहता था कि उसके खेत लाभ दे रहे हैं। उसकी बात का प्रमाण भी है। अब उसने अपने मकान की मरम्मत करवा ली है और घर में सुख-सुविधा का सामान भी जूटा लिया है। उसे खेत ले देने के समय बाबा ने डेढ़ हजार रुपया मैनेजर को 'टिप' देने के लिए दान में दिया था। वह रुपया सिद्ध ने बाबा को वापस कर दिया है। बाबा वह रुपया किसी धर्म-कार्य में व्यय करना चाहते हैं।'

'मुझसे यह कुछ नहीं हो सका।'

'मेरी दुकान भी तो लाभ दे रही है। दुकान के सब खर्चे निकाल कर और लाभ का दस प्रतिशत सरकारी अधिकारियों को रिश्वत में देकर भी दुकान माल से ठसाठस भरी है। मेरा विचार है कि वर्ष की समाप्ति पर हिसाब-किताब करने पर चार-पाँच सहस्त्र का लाभ होगा।'

'गाँव के सब लोग कहते हैं कि तुम्हारे बाबा ने दुकान का सबसे बढ़िया विभाग

तुमको ले दिया था।'

'परन्तु सबसे अधिक लाभ तो चाचा काहनचन्द को हो रहा है। चाचा कह रहे थे कि पचास हजार की लागत का माल अब एक लाख के मूल्य का हो गया है। कुछ तो वस्तुओं के दाम बढ़ गये हैं और कुछ नियमित लाभ भी हुआ है।'

'मेरा तो दिवाला पिट गया है।'

'यह तो बाबाजी ने पहले ही कहा था।'

'उनकी भविष्यवाणी तो परमात्मा की आवाज़ ही हो गयी प्रतीत होती है। एक बात उन्होंने और कही थी कि सरकारी अफसर स्वयं तो लाभ-हानि में भागीदार नहीं होते। इस कारण वे व्यापार-सम्बन्धी कामों में हस्तक्षेप करने के योग्य नहीं हो सकते।'

'हाँ, यह बात तो है ही। सरकार दुकान की पूँजी पर ब्याज लेती है। इसके अतिरिक्त ठेकेदारी में से पाँच प्रतिशत लाभ लेती है। सम्पत्ति का परिरक्षक और अन्य सब कर्मचारी दस प्रतिशत अपना भाग ले लेते हैं। समय-समय पर परिरक्षक तथा उसके घर की स्त्रियाँ दुकान पर आती हैं और जो मन में आता है, वे बिना रसीद-पर्चा के उठाकर ले जाती हैं। इस पर भी सीताराम मेरी दुकान में लाभ की आशा दिला रहा है। वह किस प्रकार यह सब कर रहा है, उसका कुछ-कुछ ही रहस्य मैं जान सकी हूँ।'

'क्या जान सकी हो?'

'उसने आरम्भ से ही मुझे हिसाब-किताब रखने का ढँग सिखाकर मुझसे ही यह लिखवाता है। इसी कारण जो कुछ वह ऊँच-नीच करता है, मुझे पता चलती रहती है। बीस सहस्त्र का ब्याज एक सौ रुपया महीना, दो सौ रुपया महीना अधिकारियों को रिश्वत और एक सौ रुपया पट्टेदारी का मूल्य तो वह वस्तुओं के दाम बढ़ा कर निकाल लेता है। बनती मासिक आय वह लिखवाता ही नहीं। वह कहता है कि इन बेईमान कर्मचारियों का दाम उनसे ही प्राप्त करना चाहिये जिन्होंने उनको हमारा रक्त चूसने के लिये नियुक्त किया है। कुछ अलिखित माल दुकान में रखा रहता है। उसका लाभ अधिकारियों के घर वालों की वस्तुओं को उठा ले जाने के प्रतिकार के लिये होता है। एक दिन सीताराम कह रहा था कि ये कर्मचारी ही तो सरकार हैं और चाहें तो ये माल के रूप में रिश्वत लें अथवा आय-कर के रूप में लें। हम तो यह देते ही हैं।'

वीरेन्द्र देख रहा था कि वह तो वास्तव में बरबाद हो गया है। उसकी पत्नी के सब आभूषण बिक गये थे। दुकान के झंझट में उसके खेतों का बुरा हाल हो गया है। इन दिनों उसे दूसरों के खेतों में ट्रैक्टर चलाने का अवसर नहीं मिलता था और उसकी

आय का यह स्त्रोत भी समाप्त हो गया था।

पति-पत्नी अभी अपनी-अपनी दुकानों का हाल परस्पर बता रहे थे कि धनपतराय का नौकर सरवन आया और इनको कह गया, 'बाबा कह रहे हैं कि रात आप बच्चों सहित भोजन के लिये आयें।'

'क्या बात है सरवन?' लक्ष्मी ने पूछ लिया।

'बहन जी! ठीक से तो पता नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि कानूनगो साहब भी आने वाले हैं।'

'सच!' लक्ष्मी ने विस्मय में पूछ लिया, 'कैसे जानते हो यह?'

'उनकी चर्चा घर पर हो रही थी। उस चर्चा से मैं यह समझ पाया हूँ कि वे भी आमन्त्रित हैं।'

'अच्छी बात है।' वीरेन्द्र ने कह दिया, 'हम रात के आठ बजे से पहले ही पहुँच जायेंगे।'

जब सरवन चला गया तो वीरेन्द्र ने पत्नी से पूछा, 'क्या समझी हो इसका अर्थ?'

'कुछ विशेष नहीं। आपकी भाँति पिताजी के भी ज्ञान-चक्षु खुल रहे प्रतीत होते हैं।'

'मुझे तो यह पता चला है कि मैं व्यापार में एक अयोग्य व्यक्ति हूँ।'

'और स्टेट बैंक का मैनेजर एक योग्य व्यक्ति प्रतीत होता है?' लक्ष्मी ने व्यंग्यात्मक भाव में पूछ लिया।

वीरेन्द्र ने हँसते हुए कहा, 'वह तो चोर है।'

::7::

धनपतराय ने दावत तो स्टेट बैंक के मैनेजर को दी थी। इसमें बहाना यह बनाया था कि काहन का जन्म-दिन है। उद्देश्य कुछ दूसरा था। मैनेजर के अतिरिक्त घर के सब प्राणी और काहन की दुकान के मिस्त्री भी आमन्त्रित थे। रेवती का लड़का शम्भुदत्त सपत्नीक आमन्त्रित था। शम्भु के दो लड़के थे। दोनों आमन्त्रित थे। बड़ा पाँच वर्ष का था और स्कूल की प्रथम श्रेणी में पढ़ता था। छोटा अभी तीन वर्ष का था।

सदा की भाँति निमन्त्रण रेवती को भी गया था और उसने भी सदा की भाँति बधाई भेज दी थी।

सब अन्य आमन्त्रित एकत्रित हो गये और स्टेट बैंक के मैनेजर भी आ गये। मिस्टर धवन ने आते ही कहा, 'लाला धनपतराय! आज पहली बार आपने मुझे इस दावत पर बुलाया है। इस कारण मुझे निमन्त्रण पाकर जहाँ हर्ष हुआ है, वहाँ विस्मय भी। कानूनगो साहब तो हैं, परन्तु तहसीलदार साहब दिखाई नहीं दे रहे। मुझे आज मध्याह्न के समय मिले थे और कह रहे थे कि उनको तो निमन्त्रण है ही नहीं।'

धनपतराय ने स्पष्टीकरण कर दिया, 'वह नहीं आ रहे। यह पारिवारिक समारोह ही है। परिवार के बाहर के व्यक्ति इसमें आमन्त्रित नहीं।'

'तो क्या मैं भी आपके परिवार में हूँ?'

'जी। जबसे आप मेरी सम्पत्ति के परिरक्षक नियुक्त हुए हैं, तब से ही आपको मैं परिवार में समझता हूँ।'

'तब तो आपको पब्लिक अधिग्रहण-कर्ता तथा सम्पदा के मुख्य परिरक्षक को भी बुलाना चाहिये था।'

'सबसे बड़ा परिरक्षक तो परमात्मा ही है। उसको तो मैंने आमन्त्रित किया है और वह आया भी है।'

'परमात्मा! कहाँ है?' हँसते हुए मिस्टर धवन ने पूछ लिया।

'ऐसा प्रतीत होता है कि आप अपना चश्मा घर भूल आये हैं।'

'पर मैं तो चश्मा लगाता ही नहीं।'

'तभी। आपको वह दिखायी नहीं दे रहा। मेरा विचार है कि आपको चश्मा लगवा लेना चाहिये।'

धवन का धनपतराय से समीप का सम्पर्क तो उन दिनों ही हुआ था जब उसकी सम्पत्ति का अधिग्रहण किया गया था। जब तक सम्पत्ति का वितरण होता रहा, धनपतराय से इसका सम्पर्क रहा था। उन दिनों में भी उसे कुछ ऐसा समझ आया था कि धनपतराय प्रसन्नचित और व्यंग्यात्मक बात करने वाला व्यक्ति है। पूर्ण अचल सम्पत्ति पर अधिकार हो रहा था और धनपतराय का ऐसा व्यवहार था कि मानो वह अपने पुत्र का विवाह कर रहा है। वह प्रसन्न और स्वस्थ-चित्त था।

आज भी उसे सतर्कता से उत्तर देते हुए देख वह समझ रहा था कि उसकी तीक्ष्ण बुद्धि सम्पत्ति छिन जाने के आघात से बिगड़ी नहीं। इतना विचार करते हुए उसे यह समझ आया कि दुकानों की अवस्था सन्तोषजनक नहीं है। उसने सूचनार्थ कह दिया,

'आपकी बीस दुकानों में से केवल तीन ही लाभ दे रही हैं और शेष तो अब बन्द हो जाने वाली हैं।'

'मैं ऐसा ही समझता था। कल लक्ष्मी की दुकान के कर्मचारी सीताराम से बात कर रहा था तो उसने बताया था कि दुकानों पर व्यय बढ़ गया है। इस कारण लाभ हो ही नहीं सकता।'

'क्या व्यय बढ़ गया है?' धवन ने सतर्क हो पूछ लिया।

'पहले बीस दुकानों का एक मालिक था और प्रत्येक दुकान से वह अपने खर्चे के लिये कुछ भी नहीं निकालता था। उसका अपना खर्चा तो खेतों से चलता था। और अब बीस दुकानों के एक सौ से अधिक मालिक हैं और सब अपने घर के व्यय का अधिकांश इन दुकानों से निकालते हैं।'

'एक सौ?' धवन ने मुस्कराते हुए पूछ लिया।

'यह तो मैंने एक रूपकालंकार कहा है। वास्तव में तो मालिकों की संख्या और भी अधिक है।'

'नहीं धनपतजी! मालिक तो प्रान्तीय सरकार ही है। हम तो उसके कर्मचारी हैं।'

'मेरी दृष्टि में तो आप अफसर लोग ही सरकार हैं।'

'खैर, यह भी रूपकालंकार ही है।' उसने बात बदल दी और कहा, 'मैंने सरकार को यह सम्मति दी है कि दुकानें ठेके पर न दी जायें। इस वर्ष ठेका समाप्त हो तो इनकी पुनरावृत्ति न की जाये।'

'मेरा अभिप्राय यह है कि सरकार ही इस धन्धे को ऐसे चलाये जैसे कि अन्य सरकारी काम चलते हैं।'

'यह तो ठीक ही होगा। कठिनाई तब होगी जब इस अधिग्रहण किये कामों का एकाधिकार, मेरा मतलब है कि 'मोनोपोली' भी सरकार ही ले ले।'

'इसमें क्या कठिनाई होगी?'

'जो लोहा, सीमेण्ट और अन्य सरकारी कार्यों में हो रहे हैं। सब-कुछ चोर-बाज़ारी में ही बिकेगा। यदि मन करे तो मेरी एक योजना भी सरकार को लिख दें तो बहुत अच्छा होगा।'

'क्या योजना है?'

'यही कि ये दुकानें पुनः निजी मालिकों के पास नीलाम कर दी जायें। लोग

नीलामी में बढ़-चढ़ कर बोली देंगे और जितना मूल्य है उससे अधिक प्राप्त हो जायेगा। तब व्यक्तिगत रूप में इन दुकानों के मालिक मेहनत और मितव्ययता से दुकानों में उन्नति करेंगे।'

'दस वर्ष उपरान्त पुनः दुकानों का अधिग्रहण कर लें। इस प्रकार लाखों रुपये सरकार को पुनः मिल जायेंगे और...।' धनपत कहता-कहता रुक गया।

'हाँ। और क्या?' सन्तराम ने प्रश्न कर दिया। अभी तक वह अपने पिता के व्यंग्य को सुन रहा था। अब उससे रहा नहीं गया। उसका अनुमान था कि लालाजी कहने वाले हैं कि वह अधिकारियों के लाभ की बात बन जायेगी। अतः वह बैंक के मैनेजर और लालाजी में झगड़ा करा देना चाहता था।

जब धनपतराय से यह पूछा गया तो उसने कह दिया, 'यही कि भारत की निर्धन जनता की बेकारी दूर हो सकेगी और सबको काम और मकान मिल सकेंगे।'

परंतु मिस्टर धवन का मस्तिष्क इस योजना पर लट्टू हो रहा था। उसको पिछले वर्ष अधिग्रहण के समय लगभग एक लाख रुपये का लाभ हुआ था। इसमें से अपने अधिकारियों को दे-दिला कर भी पचास-साठ हजार उसकी जेब में आया था। वैसे तो लाभ अब भी हो रहा था, परंतु पूर्व की तुलना में वह नगण्य था। उसका अनुमान था कि यदि दुकानें अब नीलाम हों तब भी उसे कुछ-न-कुछ तो 'टिप' मिलेगी ही और उसके उपरान्त यदि पुनः अधिग्रहण हुआ तो फिर 'टिप' मिलेगी। इस कारण वह फड़क उठा। उसने कह दिया, 'मैं यह प्रस्ताव भी मुख्य परिरक्षाक के पास भेज दूँगा।'

इस समय तक भोजन के लिए प्राँगण में मेज लग गयी थी। प्राँगण में शामियाना लगा था और उरायनीने बिजली के हण्डे जल रहे थे। उस जगमग करते हुए स्थान पर सब बाल, वृद्ध और युवा जा बैठे। धनपत, मैनेजर और सन्तराम के बीच बैठा था। सन्तराम के साथ वीरेन्द्र बैठा था। काहनचन्द और शम्भु मेज के सामने बैठे थे। एकाएक बातों का सूत्र शम्भुदत्त ने हाथ में लेते हुए कहा, 'मैंने सुना है कि वीरेन्द्रजी ने दुकान छोड़ दी है?'

'हाँ।' मैनेजर ने कहा, 'मुख्य परिरक्षक तो वर्ष के भीतर ठेका बदलने के पक्ष में नहीं थे, परन्तु मैंने वीरेन्द्रजी को एक सार्वजनिक कार्यकर्ता और सत्ताधारी दल का नेता होने के नाते यह रियायत दिलवा दी है। इनको एक सहस्त्र रुपये के लगभग ऊपर से मिल गया है।'

'परन्तु मैनेजर साहब! मुझे तो अपना समय और परिश्रम के व्यर्थ जाने के अतिरिक्त चार हजार रुपये का घाटा रहा है।' वीरेन्द्र ने कहा।

'तुम दो सौ रुपया महीना निकालते भी तो रहे थे?'

'इस पर भी मुझे घाटा रहा है। पिछली फसल के समय मैंने पाँच हजार रुपये अपने पास से दुकान में डाले थे। वह सब भी दुकान में ही समाप्त हो गये हैं।'

'हम यह बात नहीं मान सकते। अनाज की दुकानों में तो अपार लाभ हुआ है।'

'ठीक है।' वीरेन्द्र ने विवाद में न पड़ने के विचार से बात बदल दी। उसने शम्भुदत्त से पूछ लिया, 'तुम्हारी दुकान का क्या हालचाल है?'

'हमें तो लाभ हो रहा है।'

इस पर मैनेजर ने कह दिया, 'लाभ तो सबको होना चाहिये। परन्तु प्रबन्ध ठीक न होने के कारण ही हानि हुई प्रतीत होती है।'

धनपत ने सन्तराम से पूछ लिया, 'सुनाओ सन्तराम! कितने वर्ष अभी और नौकरी करोगे?'

'पिताजी! अभी तो दस वर्ष से अधिक हैं।'

'तुमको सरकारी सेवा में जाने के समय भी मैंने कहा था कि दुकान पर काम कर लो। यदि तुम मान जाते तो इस समय बहुत सुखी होते।'

'मैं तो अब भी सुखी हूँ। मेरे जीवन में जो कुछ भी दु.ख उत्पन्न हुआ है, वह आपकी करनी से ही हुआ है। आपने मेरी पत्नी का अपहरण न किया होता तो आज मैं भी उसके साथ उसकी हवेली में रहता होता।'

'हवेली नहीं सन्त! वह तो एक कोठी कही जा सकती है। यह कोठी मैंने उसे बनवा दी है। यदि तुम उसे अपने साथ चलने पर राज़ी कर लो तो उसकी कोठी भी उसके साथ तुमको मिल जायेगी।'

'मैं विस्मय कर रहा हूँ कि आपकी दुकान और खेतों के अधिग्रहण हो जाने पर भी आप इतनी बड़ी कोठी बनवा पाए हैं।'

'वह इसलिये कि सरकार मेरी नकद सम्पत्ति और फैक्टरी में हिस्सों का अधिग्रहण नहीं कर सकी।'

'यह भी हो जाता तो ठीक था।'

'फिर तुम अपनी पत्नी की कोठी के स्वामी कैसे बनते?'

'मैं कोठी का स्वामी कहाँ हूँ?'

'पत्नी से सुलह कर लो तो बन जाओगे।'

'पर उसको तो सास-श्वसुर की रसोई की चटक लग गयी है। अब उसको एक

सरकारी कर्मचारी की रूखी-सूखी कैसे पसन्द आ सकती है?'

'ठीक है। जब तुमने उसे मस्जिद का चूहा बना रहने का निश्चय कर रखा है तो वह क्या करे?'

अब पुनः मैनेजर ने बातों में हस्तक्षेप करते हुए कहा, 'परन्तु चूहे तो चूहे ही होते हैं। मस्जिद के हों अथवा मन्दिर के हों। उनका तो स्वभाव ही कुतरना है। वह मस्जिद में रहते हुए भी तो कुछ-न-कुछ कुतरते ही रहते हैं।'

'हाँ, धवन साहब! आप भी कुतरते हैं और सन्तराम भी कुतरता है। इस पर भी वह तो मस्जिद की चटाइयों के नीचे ही छुपता फिरता है और आप मन्दिर के कलश तक चढ़ जाने की क्षमता पा गये हैं। मैं जानता हूँ कि यह कैसे सम्भव होता है।'

'कैसे होता है?' सन्तराम ने उत्सुकता से पूछ लिया।

'तुम इस कुतरने को पाप समझते हो और इस कारण तुम अपने कुतरने को छुपाते-फिरते हो। उस छुपाने में उसे नाली में बहा रहे हो और धवन साहब अपने कुतरने को मन्दिर का प्रसाद समझते हैं। इस कारण यह इसे खाते हैं, पहनते हैं और खुले-आम व्यय करते हैं। इसी कारण यह देव मन्दिर के कलश पर चढ़ते चले जाते हैं और इनको कोई मना नहीं कर रहा।'

सन्तराम अपने रिश्वत खाने की विवेचना को सुन समझ गया। समाज की दृष्टि में यह ठीक नहीं समझी जाती, परन्तु वह धवन साहब की रिश्वत की व्याख्या समझ नहीं सका। धवन की तो इस पूर्ण विवेचना का सिर-पैर ही समझ में नहीं आया था।

सन्तराम आज की दावत के निमन्त्रण पर पत्नी से सुलह की आशा लेकर आया था। उसने बात आरम्भ भी की थी, परन्तु खाने की ओर ध्यान चले जाने के कारण बात बीच में ही रुक गई थी। वह देख रहा था कि उसका पिता मुख उठाकर उसकी ओर देखे तो वह मन की बात आरम्भ करे।

अब शम्भु ने धवन से पूछा, 'मैनेजर साहब! यदि आपकी योजना स्वीकार हुई तो क्या वे दुकानें भी वापस ले ली जायेंगी जो लाभ दे रही हैं?'

'हाँ! समाजवाद का उद्देश्य लाभ-हानि से सम्बन्धित नहीं अपितु देश के रहने वालों के लिये काम उपलब्ध कराना है। देखो शम्भुदत्त तुम दुकान पर अकेले ही काम करते हो। तुमने दुकान पर कोई नौकर नहीं रखा हुआ है। प्रातः स्वयं ही दुकान खोलते हो, झाड़ते-फूँकते हो। कोई ग्राहक आता है तो स्वयं ही कपड़ा निकाल-निकाल दिखाते हो, फिर नाप, फाड़ और बांधकर देते हो। कैशमीमो भी स्वयं ही काटते हो और बहीखाता भी स्वयं ही रखते हो।

इस पर भी तुम्हारी दुकान पर बिक्री दो सौ से तीन सौ रुपया नित्य की होती है। इस प्रकार की दुकान पर अधिक नहीं तो तीन आदमी रखे ही जा सकते हैं। अब सरकार तुम्हारी दुकान को लेगी तो इस पर एक चपरासी रखा जायेगा। वह दुकान खोला करेगा, उसमें सफाई रखा करेगा, मैनेजर के लिये कुर्सी, मेज़ ठीक किया करेगा। एक व्यक्ति कपड़ा दिखाने के लिये और नापकर तथा फाड़कर बांधने के लिये होगा। एक कैशमीमो काटने और रूपया वसूल करने के लिये होगा। एक लेखाकार होगा। यह है समाजवाद का आशय। इस प्रकार अधिक-से-अधिक लोगों को काम मिल जाएगा।

शम्भुदत्त को इसका उत्तर समझ में नहीं आया। उसका धवन की युक्ति से समाधान तो नहीं हुआ, परन्तु मन के संशय को वह समझ नहीं सका। धनपतराय इस युक्ति को सुन मुस्कराया और मुस्कराकर बोला, 'परन्तु एक के स्थान पर पाँच नौकर रखने का खर्चा कौन देगा?'

'दुकान देगी। और कौन देगा?'

'अर्थात् वस्तुओं के दाम बढ़ा दिये जायेंगे, अथवा पूँजी में से दान दिया जायेगा। साथ ही लाभ नगण्य होगा तो आय-कर में सरकार को कमी होगी। तब भी तो सरकार घाटे में जाने पर वस्तुओं के दाम बढ़ा देगी।'

'हाँ। यह तो है ही।' धवन ने धनपतराय की बात को स्वीकार करते हुए कह दिया, 'यदि सबको जीवित रहना है तो सबको खर्चा सहन करना पड़ेगा।' धवन ने लाला की बात को मानते हुए कह दिया।

इस पर लाला ने कहा, 'इसका अभिप्राय यह हुआ कि मेहनत-मुशक्कत करने वालों का धन छीन कर हरामखोरों का पालन-पोषण किया जायेगा? इसका यह भी अर्थ बनता है कि सरकारी कर्मचारियों के पालन-पोषण के लिये पूर्ण जनता पर महँगाई और कर लाद दिये जायेंगे।'

'देखो शम्भू!' धनपतराय ने शम्भू का समाधान करने के लिये उसे सम्बोधन किया, 'तुम मेहनती, मितव्ययी, ईमानदार को बेकार कर तुम्हारे स्थान पर पाँच कामचोरों को लगा दिया जायेगा। साथ ही तुम दकान के स्वयं मालिक होते हुए दुकान की किसी वस्तु को चुराकर घर लाने में रुचि नहीं रखते। ये समाजवादी अधिकारी अपने कामचोर भाई-बन्धुओं को वहाँ लगा देंगे जो स्वयं मालिक न होते हुए कुछ भी वस्तु दुकान से चोरी कर लेना एक रुचिकर कार्य समझेंगे।

'दिल्ली में सरकार ने कई सुपर बाज़ार चालू किये हैं। उन सब स्थानों पर लाखों

रुपये प्रति वर्ष घाटा हो रहा है और उस घाटे का अधिकांश वहाँ चोरी हो जाने के कारण देखा गया है। शेष घाटा एक कर्मचारी के स्थान पर पाँच-पाँच कर्मचारी रखने के कारण है। जहाँ तक वस्तुओं के दाम की बात है, पाँच-दस चालू वस्तुओं का दाम कुछ कम करने के अतिरिक्त अन्य सब वस्तुओं के दाम बाज़ार से अधिक हैं और वस्तु घटिया होती हैं।

'सुपर बाज़ार का घाटा पूरा किया जाता है कर-दाताओं के कर से। अभिप्राय यह कि मेहनत-मजदूरी करने वाली प्रजा को भारी करों की चक्की में पीसा जाता है और उनसे छीने धन से मेहनत न करने वाले सरकारी कर्मचारियों का पेट भरा जाता है।'

'परन्तु बाबा!' शम्भु दत्त ने पूछ लिया, 'संसद के सदस्य क्या यह बात देखते नहीं?'

'संसद के अधिकांश सदस्य अनभिज्ञ होते हैं। वह निर्भर करते हैं सरकार के आंकड़ों पर। सरकार के मन्त्री स्वयं तो कुछ जाँच-पड़ताल करते नहीं। उनको भरोसा करना पड़ता है सरकारी नौकरशाही पर और यह अपने हलुवे-माण्डे के लिये देश-भर में लूट मचा रही है। भला यह सरकारी कर्मचारी कैसे कह सकते हैं कि देश की पूर्ण अव्यवस्था उनके काम कम करने और काम के अनुपात में बहुत अधिक वेतन पाने के कारण है।

'संसद जाँच-समितियां बनाती है और उनमें आँकड़े ये कर्मचारी ही उपस्थित करते हैं। वे भला जाँच-समिति के सम्मुख क्यों कोई ऐसी बात आने देंगे जिससे उनकी हरामखोरी प्रकट हो?'

इस सब वस्तुस्थिति और युक्ति पर मिस्टर धवन ने पोचा फेर दिया। उसने कहा, 'देखो शम्भू! तुम्हारे बाबा छटी श्रेणी तक पढे हैं। ये बात करने लगे हैं अर्थशास्त्रियों की, जिसका रहस्य हम लोग एम० ए० तक पढ़ने पर भी भली-भाँति समझ नहीं सकते।'

इस पर शम्भुदत्त ने कह दिया, 'मैनेजर साहब! मैं भी तो केवल मैट्रिक तक ही पढ़ा हूँ। हायर सैकेण्डरी में प्रविष्ट नहीं हुआ था, परन्तु नगर में अपनी दुकान पर जो कपड़ा एक रुपया पचास पैसा गज़ बेचता था, वह यहाँ आकर एक रुपया साठ पैसे गज़ बेचने पर विवश हो रहा हूँ।'

'कौन विवश कर रहा है?'

'सरकारी अधिकारियों की पत्नियाँ आती हैं। कपड़ा उधार ले जाती हैं। और

फिर उधार चुकाया नहीं करतीं। वह घाटा मुझे सब ग्राहकों से दस पैसे प्रति गज़ दाम बढ़ा देने से पूरा करना पड़ता है। कुछ ग्राहक कहते भी हैं कि मैं दाम अधिक ले रहा हूँ, परन्तु मैं यह कहकर उनका समाधान करता रहता हूँ कि नगर से माल यहाँ देहात में लाने पर खर्चा बैठ जाता है।

'परन्तु मैनेजर साहब! मैं मन-ही-मन अनुभव किया करता हूँ कि कहीं-न-कहीं घोर पाप हो रहा है।'

'और उसमें तुम जिम्मेदार नहीं हो?'

'जिम्मेदार तो मैं हूँ। ऐसे ही जैसे मिनिस्टरों की मूर्खता का फल देश की जनता को भोगना पड़ता है। उस फल का जिम्मेदार दुकानदार, किसान और भोक्ता ही है। इसके दूसरे अर्थ यही हैं कि मिनिस्टरों के पापों का फल प्रजा को भोगना पड़ता है। जिम्मेदार जिसे अंग्रेजी में 'स्केपगोट' कहते हैं वह मेरे जैसा दुकानदार अथवा निर्धन किसान है जो अपनी सीमित उपज को दुकानदार के पास बेचता है अथवा जो दुकानों पर मेहनत-मजदूरी करते हैं।'

मैनेजर इस आलोचना पर छटपटा रहा था। उसने कहा, 'इस पर भी शम्भू, तुम्हारी हवेलियाँ बन रही हैं और मैं तो जीवन-भर भाड़े के मकान में ही रहता रहा हूँ।'

धनपतराय हंस पड़ा। वह कुछ व्यंग्य करने ही वाला था कि सन्तराम को अपना एक भाड़े के मकान में रहना स्मरण आ गया। इस कारण उसने बातों का प्रवहण बदल कर कह दिया, 'मैं भी तो जीवन भर भाड़े के मकान में रहता रहा हूँ। और मेरी पत्नी अपने श्वसुर की कृपा से एक बहुत बड़ी कोठी की मालकिन बन गयी है। यदि हम कर्मचारी हरामखोर और कामचोर हैं तो यह हवेली कहाँ से बन गयी?'

'वह हवेली तो सब तुम्हारी ही है। तुम्हारी ही पत्नी के पास है। तुम पत्नी को राजी कर घर ले जाओ तो कोठी तुम्हारी हो जायेगी। बताओ, इसमें तुम्हारे पिता का क्या दोष है?'

'परन्तु आपने उसे सिखा जो रखा है। वह मुझसे बोलती भी नहीं।'

'तुमने उसे कभी बुलाने का यत्न किया है? तुम तो उसे दुराचारिणी कहते हो और उसे पीटा करते हो।'

दावत समाप्त हुई। धवन प्रसन्न था। बिना दाम दिये बहुत बढ़िया भोजन खाने को मिला था। यह ठीक था कि पूर्ण समय सरकार और सरकारी कर्मचारियों की निन्दा होती रही थी, परन्तु ऐसी निन्दा सुनने का तो उसका अभ्यास हो चुका था। सारा देश

आज यही कह रहा था कि जनता महँगाई, करों और रिश्वत से पिस रही है। अतः प्रत्येक नागरिक कर्मचारियों को गालियाँ देता था, परन्तु पाँच वर्ष के उपरान्त सत्ताधारी दल को मत देकर पुनः राज्यासीन कर देता था और चक्की पुनः चलने लगती थी।

धवन ने काहन को उसके जन्म-दिन की बधाई दी और धनपतराय को हाथ जोड़ धन्यवाद कर चल दिया। उसके साथ ही कुछ परिवार से बाहरी लोग भी बधाईयाँ देते हुए चले गये।

::8::

बाहर लोग विदा हो गये। सन्तराम वहीं टिका रहा। वीरेन्द्र ने खाने की मेज़ पर हुए पूर्ण वार्तालाप को सुना था, समझा था, परन्तु उसने इसमें भी हस्तक्षेप नहीं किया था। वह समझ रहा था कि इस पूर्ण घटना में कहीं सैद्धान्तिक दोष है। यह उस दोष को धनपतराय और मैनेजर के वार्तालाप से समझने का यत्न कर रहा था।

इस समय सन्तराम ने कहा, 'पिताजी! मोहिनी को मेरे साथ भेज दें।'

'उसे चलने के लिये कह दो। यदि जाती है तो मैं रोकूंगा नहीं। पहले भी तो मैं रोक नहीं रहा था। एक बात समझ लो। वह यह कि तुम उसे उस प्रकार घसीटते हुए नहीं ले जा सकते जैसे आज से दो वर्ष पूर्व करने जा रहे थे।

'उस समय भी मैंने तो किसी को मना नहीं किया था। तुम्हारी माँ ने ही तुम्हारा सिर फोड़ दिया था। वह अब भी फोड़ सकती है। मैं समझता हूँ कि तुम्हारी बूढ़ी माँ की सहायता के लिये अब मालती, और तुम्हारी लड़की लक्ष्मी भी लाठियाँ लेकर आ जायेंगी।

'इस कारण तुम और तुम्हारी पत्नी पृथक कमरे में बैठ जाओ और परस्पर विचार-विनिमय कर लो। तुम दोनों जाना चाहो तो जा सकते हो। और देखो, उसका मकान उसके साथ ही जायेगा।'

सन्तराम ने अब उधर देखा जिधर स्त्री-वर्ग भोजनोपरान्त बैठा बातें कर रहा था। सन्तराम ने पत्नी को आवाज दे बुला लिया, 'मोहिनी! इधर आओ। सुनो, पिताजी क्या कह रहे हैं।'

'मोहिनी स्त्रियों की गोष्ठी में से उठ अपने श्वसुर के सामने आ खड़ी हुई। धनपत

ने उसे सम्बोधन करते हुए कहा, 'सन्तराम तुम्हें अपने घर ले चलने का प्रस्ताव कर रहा है।'

'पिताजी! यदि मेरा यहाँ रहते बोझा प्रतीत हो रहा है तो मैं यहां से चली जाऊँगी। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि मैं इनके घर जाऊँगी।'

'परन्तु यह तो तुम्हें अपने घर ले जाने की बात कह रहा है।'

'इनके घर जाने का अभिप्राय है कि सप्ताह में एक-आध बार पीटा जाना। अपने माता-पिता को दी जाने वाली गालियाँ सुनना और अपने को अकारण दुराचारिणी कहा जाना।'

'नहीं, अब ऐसा नहीं होगा।' सन्तराम ने उत्तर दे दिया।

'कैसे कहते हैं कि ऐसा नहीं होगा? इसकी क्या गारण्टी है?'

'इसके लिये ज़ामिन कहाँ से लाऊँ?'

'जामिन की क्या आवश्यकता है? आप अपने व्यवहार से ही इसकी गारण्टी दे सकते हैं। मैं जानती हूँ कि आपके पूर्ण दुर्व्यवहार में दो मुख्य कारण हैं। एक तो मद्य का सेवन और दूसरे बाज़ारू स्त्रियों की संगत में रहना।'

'इनका तुम्हारे पीटे जाने से क्या सम्बन्ध है?'

'इनका सम्बन्ध है आपकी बुद्धि से। ये बुद्धि मलिन करने वाली बातें हैं और मलिन बुद्धि से ही आप मुझे पीटते हैं और मेरे निर्दोष माता-पिता को गालियाँ दिया करते हैं।'

'आप वचन दें कि इन दोनों बातों को छोड़ देंगे तो मैं आपके साथ अभी चलने के लिये तैयार हो सकती हूँ।'

'यदि यहाँ तुम्हारी शर्त को स्वीकार कर भी उसका पालन न करूँ तो क्या करोगी?'

'तो पुनः घर छोड़कर चली आऊँगी।'

'और यदि वहाँ जाने पर तुम्हें घर छोड़ने से रोकने के लिये तुम्हें पंगु बना दूँ तो क्या करोगी?'

'अर्थात् वहाँ जाते ही मेरी टाँगें तोड़ डालेंगे?'

'यह आवश्यक नहीं। पंगु बनाने के अन्य भी कई उपाय हैं।'

'तो पहले उनको बता दीजिये।'

'वाह! इस समय कैसे बता सकता हूँ? यह तो समय पर ही बताऊँगा। समय से

पूर्व तो मुझे भी ज्ञात नहीं।'

अब धनपतराय ने बातों में हस्तक्षेप करते हुए कहा, 'देखो सन्तराम! यह तुम्हारे घर न जाये, ऐसी मेरी सम्मति है। परन्तु उस सम्मति को मानने और न मानने का अधिकार इसको है।'

इतना कह धनपत ने वीरेन्द्र को सम्बोधन कर कह दिया, 'वीरेन्द्र! आज तुम और लक्ष्मी यहीं रह जाओ। जबसे तुम्हारा विवाह हुआ है, तुम यहाँ आकर कभी रहे ही नहीं।'

'मैं समझता था और कुछ-कुछ तो समझता हूँ कि सम्बन्धियों के घरों में जाकर रहना ठीक नहीं।'

'देख लो। ठीक-गलत तो रहने के उपरान्त निर्णय करने की बात हो सकती है। उससे पहले तो बात यह है कि लक्ष्मी मेरी पोती है। लक्ष्मी की माँ, तुम्हारी सास यहाँ रहती है। उसके घर में तुम रह सकते हो। इसमें अनुचित कुछ नहीं।

'यह मैं जानता हूँ कि इस जिले में तुम्हारे ही प्रयत्न से सबसे पहले मेरी ही सम्पत्ति का अधिग्रहण हुआ है। मुझसे अधिक धनी यहाँ हैं, परन्तु उनको किसी ने छुआ तक नहीं। मुझे इस सबका कारण विदित है।

'इसका कारण तुम भी जानते हो। इस दुर्घटना में तुमने भी एक भूमिका निभायी है। इस पर भी यह निमन्त्रण तो लक्ष्मी का बाबा दे रहा है। एक चोर पूँजीपति नहीं, जैसा कि तुम अपने व्याख्यानों में मुझे कहा करते थे।'

'मैं एक शर्त पर यहाँ रहना स्वीकार कर सकता हूँ?'

'हां, बताओ। मानने योग्य होगी तो मान जाऊँगा।'

'शर्त यह है कि लक्ष्मी की माताजी लक्ष्मी के साथ चल कर रहें।'

'यह मोहिनी के विचार करने की बात है। इसमें मैं कहाँ से आ गया?'

'आपने कहा है न, कि लक्ष्मी की माताजी के घर पर रहने का निमन्त्रण है।'

'ठीक है। तुम अपनी शर्त लक्ष्मी की माँ से स्वीकार करा लो।'

मोहिनी अपने नाती-नातिनों में जाकर रहने का निमन्त्रण पा, बहुत प्रसन्न थी। परन्तु एक बात उसने पूछ ली, 'वीरेन्द्रजी! मैं वहाँ किस रूप में जाकर रहूँगी? वह मेरी बेटी का घर है।'

'आप वहाँ रहने का खर्चा दे सकती हैं। अब तो आपको बाबाजी के दिये मकान का भाड़ा मिलता है।'

'ठीक है। मेरी यहाँ से जाने की एक शर्त और है। वह यह कि वहाँ से जब भी चाहूँगी और जितने काल के लिये चाहूँगी, चली जाऊँगी।'

'यह मैं कैसे मना कर सकता हूँ? यह शर्त आप लक्ष्मी से करिये। मेरे विचार बदल रहे हैं। कम-से-कम वह तो नहीं रहे जो आज से दो वर्ष पूर्व थे। भविष्य में क्या होगा, यह अभी कह नहीं सकता। इस कारण मैं भविष्य के विषय में कुछ भी शर्त नहीं करूंगा। हाँ, लक्ष्मी इस विषय में ही वचन दे सकती है। मैं तो एक बात कहता हूँ कि आपको वहाँ चलना चाहिये।'

'क्यों?' सन्तराम ने मुस्कराते हुए पूछ लिया।

'इनके बच्चे वहाँ है।'

'इन श्रीमतीजी के पति भी तो हैं।'

अब मोहिनी ने कहा, 'वीरेन्द्रजी! आप रात यहाँ रहिये। मैं लक्ष्मी से विचार करके बता दूंगी। मुझे कुछ ऐसा लग रहा है कि पति से सन्तान का सम्बन्ध अधिक गहरा होता है।'

वीरेन्द्र मान गया। इस पर सन्तराम को भारी निराशा हुई। परन्तु उसने साहस नहीं छोड़ा। उसने मोहिनी को कह दिया, 'तुम्हारी मति पिताजी ने नष्ट कर रखी है और पिताजी की बुद्धि माताजी ने नष्ट की हुई है। जबसे उनको काहन के दर्शन हुए हैं, वह मुझे किसी दूसरे का पुत्र मानती रही हैं। यही कारण है कि मैं बचपन से ही इस घर से पृथक होकर रहने की योजना बनाता रहा हूँ।'

'मेरी बचपन की यह योजना तुम्हारे विवाह के उपरान्त ही कार्यान्वित हो सकी थी और मैं तुम्हें इस परिवार के दूषित प्रभाव से बाहर रखने का यत्न करता रहा था। एक दिन भूल से मैंने तुम्हें यहाँ मकान माँगने भेजा तो एक दिन में ही तुम्हारी काया पलट हो गई। तुम मेरा घर छोड़ने के लिये तैयार हो गयी और अब डेढ़ वर्ष से यहाँ रहने पर तुम्हें पति से दामाद अधिक पसन्द आने लगा है।'

मोहिनी सब के सामने पति की निन्दा करना नहीं चाहती थी। इस कारण उसने विनम्र भाव में कहा, 'आप स्वयं बात उलटी करते हैं और दूसरों की निन्दा करने लगते हैं। देखिये श्रीमान्, मैंने आपके घर जाने से इनकार नहीं किया। केवल आपको अपने दो दुर्गण छोड़ने के लिये कहा है। इनके छोड़ने से लाभ आपको होने वाला है। मैं तो आपके इन दुर्गुणों से मुक्त होने से आपको हुए लाभ के द्वारा ही फल प्राप्त करने वाली हूँ, परन्तु आपने तो अब वीरेन्द्रजी को भी गालियाँ देनी आरम्भ कर दी है।'

'क्या गाली दी है?' सन्तराम क्रोध के घोड़े पर सवार होता जाता था। यदि

मोहिनी उसके घर में होती और इस प्रकार उसकी बात रद्द करती तो वह उसे पीट देता, परन्तु इस घर में वह उसे पीट नहीं सकता था। इस बात की ओर धनपत ने पहले ही संकेत कर दिया था और साथ ही उसे अपनी माँ की लाठी से सिर का फोड़ा जाना भूला नहीं था। इससे क्रोध को भीतर-ही-भीतर पीकर गाली के विषय में पूछने लगा था। मोहिनी ने समझाने का यत्न किया। उसने कहा, 'मैं वीरेन्द्रजी के घर नहीं जा रही। मैं लक्ष्मी और उसके बच्चों के साथ रहने जा रही हूँ।'

'परिणाम वही होगा जो मैंने बताया है। इस ढलती उमर में भी तुम आज की युवतियों से अच्छी ही हो।'

धनपत को इस विकृत मस्तिष्क को इस जन्म-दिन की दावत पर बुलाने का दुःख होने लगा था। वह देख रहा था कि सुखिया के मुख की मुद्रा दृढ़ हो रही है। उसके हाथों की मुट्टियाँ बँध रही हैं। इस कारण इस जन्म-दिन के उत्सव पर कुछ अनिच्छित घटना न घट जाये। अतः उसने कह दिया, 'सन्तराम! अब तुम जाओ। कहीं वही दो वर्ष पूर्व की घटना की पुनरावृत्ति न हो जाये। अब जाओ।'

सन्तराम भी अपने को विपरीत परिस्थिति में उपस्थित समझ वहाँ से टल जाना ही उचित समझने लगा था। वह एक भी शब्द और कहे बिना वहाँ से चल दिया।

उसके चले जाने के बाद सब शामियाने से निकल घर की बैठक में चले आये। सन्तराम से हुए वार्तालाप ने सबकी प्रसन्नता पर तुषारपात कर दिया था। बैठकघर में पहुंचते ही धनपतराय ने मालती को कहा, 'मालती! लक्ष्मी और उसके घर वाले के लिये सोने का प्रबन्ध कर दो।'

इस आदेश पर लक्ष्मी, सुखिया और मालती भीतर चली गयीं। शम्भु और उसकी पत्नी मनोरमा ने विदा ली और अपने घर को चले गये। पीछे रह गये काहनचन्द्र, वीरेन्द्र और धनपत। ये तीनों बैठकघर में बैठ गये।

वीरेन्द्र ने बात बदलने के लिये कह दिया, 'धवन कह रहा था कि उसने दुकानों को सरकारी अधिकार में ले लेने के लिये सिफारिश की है। इसका मैं यह अर्थ समझा हूँ कि सब ठेकेदारों को छुट्टी और उनके स्थान पर सरकारी कर्मचारियों के गुलछर्रे।'

धनपत ने कह दिया, 'मेरी मोटी बुद्धि में तो यह आता है कि मंत्री-मण्डल में सर्वथा अनभिज्ञ लोग पहुँचे हुए हैं। वे एक बात जानते हैं कि किस प्रकार सामान्य जनता को नारों से प्रभावित कर वोट प्राप्त किए जाते हैं। इस नारेबाजी के अतिरिक्त अन्य हथकण्डे ये कर्मचारी उनको सिखा देते हैं। सरकारी धन, सरकारी साधनों और सरकारी सामर्थ्य का वोट प्राप्त करने में उपयोग करने के उपाय ये कर्मचारी ही उनको

बताते हैं। ऐसा करने में कर्मचारियों के अपने हित हैं। यदि समाजवाद प्रगति करेगा तो सरकारी नियन्त्रण बढ़ेगा और सरकार ये कर्मचारी ही हैं। समाजवाद से इन्हीं की पाँचों उंगलियां घी में होती हैं। अतः मन्त्री-मण्डल इनके आश्रय होने से समाजवाद के दोषों को देख नहीं सकता। कर्मचारी समाजवाद की सिफारिश करते हैं। यही धवन साहब ने किया है।

'धवन यह समझा है कि धनपत की बीस दुकानों में सोलह-सत्रह तो बरबाद हो गयी हैं। शेष तीन-चार, जो कुछ चल निकली हैं, इनका लाभ भी उसको क्यों न मिले।

'मैंने दिल्ली के सुपर बाज़ार की कथा तुम्हें बतायी है। जनता को कुछ लाभ हुआ है अथवा नहीं यह तो जाँच का विषय है। हाँ, वहाँ काम करने वाले सरकारी कर्मचारियों के हाथ रंगे जा रहे हैं। बड़े-बड़े वेतन जिनके वे अधिकारी नहीं, घाटे का प्रथम कारण है। आवश्यकता से अधिक कर्मचारी रखना घाटे का दूसरा कारण है और वहाँ चोरी होना घाटे का तीसरा कारण है।'

'यही बात इन मेरी दुकानों पर घाटे का कारण हुई हैं। यहाँ एक बात और हो गयी है। वह यह कि दुकान पर खरीद और फरोख्त पर पाबन्दियाँ भी हैं। परन्तु इसमें सुधार होना अति कठिन है। कारण यह कि मन्त्री-मण्डल की आंखें, कान और ज्ञान के अन्य साधन, ये कर्मचारी ही हैं और समाजवाद अर्थात् समाज के प्रत्येक कार्य पर सरकारी अधिकारी होने से कर्मचारियों का ही अधिकार होता है। अतः समाजवाद तो आयेगा।'

'धवन साहब का प्रस्ताव आज माना जाये अथवा कल। यह होना ही है।

::9::

वीरेन्द्र ने अपने मन में उठ रहे तूफान का दर्शन कराने के लिये कह दिया, 'बाबा! जब गाँव की पंचायत बनी थी तो समाजवाद का नारा मुझे भी पसन्द आया था। तब मैंने नया-नया राजनीति में प्रवेश पाया था। मेरे मन में राजनीतिक नेता बनने की उत्कट इच्छा थी। देश के बड़े-बड़े नेताओं को जलसे-जलूसों में फूलों की मालायें पहना देख-देख, मेरे भी मन में वैसी ही मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा

उत्पन्न होती थी।

'बाबा! मैं तब यह समझता था कि स्कूल और कालेजों के अध्यापक बहुत छोटे दर्जे के लोग होते हैं। ज्ञान, बुद्धि और अनुभव तो इन नेताओं के भाग्य में ही है।

'एक दिन जवाहरलाल नेहरू हमारे गाँव में आये। बीस-बीस मील के गाँवों के लोग जोंक-दर-जोंक हमारे इस तहसील गाँव में एकत्रित हुए थे। अपार जन-समूह सागर की भाँति तरंगे लेता हुआ देख मेरा निर्णय हो गया। मैं स्कूल का काम छोड़ वर्तमान बीस बीघा भूमि लेकर स्वतन्त्र किसान बन गया। किसान का काम तो जीवन चलाने के लिये करता हूँ। मेरा वास्तविक कार्य था सभाएँ करना और नेता बन जाना।

'मैं दस वर्ष के निरन्तर प्रयास के उपरान्त पंचायत का सदस्य बन पाया। परन्तु इस छोटी-सी नेतागीरी का पद भी अपार है और मैं इसको छोड़ नहीं सकता। यह स्थान भी मुझे समाजवाद के नारे पर ही मिला है।

'मैं समाजवाद को लोक-कल्याण का साधन मानता था। मैं समझा था कि समाजवाद का स्वरूप है खेतों में कुएँ लगवाने, निर्धनों और बेकारों को काम-धन्धे पर लगाना और जनता के मनोरंजनार्थ नाचरंग, तमाशे तथा सिनेमा-थियेटर खुलवाना। समाजवाद का अर्थ मैं यह भी समझ रहा था कि होटलों में रात के खाने के समय अर्ध-नग्न स्त्रियों का वासनामय मुद्राओं में नाच कराना और उनको देख सकने की सामर्थ्य जनसाधारण को उपलब्ध कराना।

'परन्तु पिछले दो-तीन वर्ष से समाजवाद का वास्तविक स्वरूप समझ में आने लगा है। मैं देख रहा हूँ कि जन-जन की प्रत्येक गतिविधि सरकार के अधीन होती जाती है। जन-जन में मुझे संसद सदस्य और मन्त्री-मण्डल के सदस्य भी खड़े दिखायी दिये हैं। वे भी सरकार के अधीन विवश हैं। पिछले वर्ष केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की हडताल थी। एक ही दिन में मन्त्री-मण्डल घुटने के बल हो गिड़गिड़ाने लगा था। दो-दो हज़ार रुपया वेतन लेने वाले हवाई महकमे के कर्मचारियों ने भी हड़ताल की तो हवाई महकमे के मन्त्री उनकी शर्तें मानने पर विवश हो गये। मैं समझा था कि यह समाजवाद की जीत है।

'परन्तु बाबा! आपने कहा है कि समाजवाद की नहीं, वरन् यह नौकरशाही की जीत है। आपकी इस बात को सुन तो मुझे मन्त्री-मण्डल और संसद सदस्यों की उक्त हड़तालों में पराजय का अर्थ समझ में आ गया है। मेरी समझ में यह आने लगा है कि समाजवाद वास्तव में नौकरशाही के साम्राज्य के तुल्य ही है।

'अब तो मुझे यह भी समझ में आने लगा है कि वास्तविक समाजवाद कम्युनिज्म

ही है। पूर्ण नौकरशाही का साम्राज्य तो कम्युनिस्ट देशों में ही है और हम भी उसी का अनुमोदन करते हैं।

'यह स्वरूप है मेरे बदल रहे मन का। यह कहाँ पहुँचता है, अभी नहीं कह सकता। एक बात स्मरण आ रही है कि आपके विरुद्ध अभियान मैंने लक्ष्मी के पिता के कहने पर ही चलाया था और वे ही आज मुझे मन्द-मति प्रतीत होने लगे हैं।'

लक्ष्मी को भी अपनी माता के प्रति लांछन अति दुःखद अनुभव हुआ था। वह जानती थी कि माताजी का चरित्र कुन्दन की भाँति निर्मल है। इस कारण वह भीतर उस कमरे में बैठ, जहाँ उसके रात सोने का प्रबन्ध किया गया था, अपनी माँ मोहिनी से कहने लगी, 'यह आज पिताजी को क्या हो गया है?'

'कोई नयी बात नहीं थी। इनके विचार पहले भी ऐसे ही थे। एक बार मैं नगर मैं गयी थी और वहाँ रेवती बुआ के घर में रही थी। बुआ ने बताया था कि जब तुम्हारे पिता कालेज में पढते थे, तब भी उनके विचार भ्रष्ट थे। कुछ बात दोनों में हुई थी जो बुआ ने स्पष्ट तो नहीं बतायी थी, परन्तु उसने संकेत तो किया था कि ये उस आयु में भी वासनामय रहते थे। रेवती बहन ने बताया था कि उस समय से ही वह तुम्हारे पिता से घृणा करती है। उसने शपथ ले रखी है कि वह गाँव में नहीं आयेगी और वह तुम्हारे विवाह के अवसर पर भी कुछ घण्टों के लिए ही आयी थी।'

'परन्तु माँ! बाबा के परिवार में यह बबूल का पेड़ कैसे उत्पन्न हो गया?'

'यह बबूल का पेड़ नहीं। यह काँटा है जो ज़माने की हवा में उड़ता हुआ हमारे प्राँगण में गिरा है और चलते-फिरते परिवार वालों के पाँव में गड़ जाता है।'

'तुम्हारे बाबा एक दिन बता रहे थे कि यह काँटा वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के पेड़ से टूट कर आ गया है। उस शिक्षा-रूपी पेड़ से काँटे तो नित्य ही झड़ते रहते हैं, परन्तु तुम्हारा पिता हमारे आँगन में आ पहुँचा है और अपने ढँग से यहाँ कष्ट देता रहता है।'

'माँ! नीटू के पिता भी तो इसी शिक्षा की उपज हैं। वे भी तो बी० ए० बी-एड० हैं।'

'इसी कारण जब उसने कहा कि मैं तुम्हारे घर चलकर रहूँ तो मैंने उससे भी वचन माँगा था। ऐसा प्रतीत होता है कि वीरेन्द्र भी चुभने वाला काँटा तो है, परन्तु उसकी शिक्षा ने उसे मन्द-मति नहीं बनाया। वह बुद्धि रखता है। इसी कारण उसने यह कह दिया था कि वह मुझे उसका घर छोड़ने से मना नहीं करेगा।

'तुम दोनों में अन्तर देख रही हो। तुम्हारे पिता ने इस विषय में कहा था कि वह घर छोड़ने से पहले मुझे पंगु बना देगा जिससे मैं घर छोड़ कहीं जा ही न सकूं। और

वीरेन्द्र ने कहा है कि वह मुझे जाने से कैसे रोक सकता है।

'मैं समझती हूँ कि यह अन्तर है वृद्धि के कुण्ठित होने अथवा न होने का। यह मद्य के सेवन करने के कारण ही प्रतीत हुआ है।'

'तो माँ! तुम हमारे घर चलोगी?'

'हाँ। यदि तुम चाहोगी। मेरा भी बच्चों से स्नेह है और मैं उनसे चित्त प्रसन्न रखना चाहती हूँ। किन्तु मैं अपने खाने-पीने का खर्चा अपने पास से करूँगी।'

'जैसा भी चाहो यह तुम्हारी इच्छा पर है।'

अगले दिन वीरेन्द्र, उसकी पत्नी, बच्चे और मोहिनी सब इकट्ठे ही चले गये।

इस घटना के कुछ दिन उपरान्त की बात है। सन्तराम मैनेजर धवन से मिलने जा पहुंचा। धवन बैंक से लौटकर अपनी पत्नी और बच्चों के साथ चाय ले रहा था।

धवन चाय पीता हुआ नवीन सरकारी आदेश पर विचार कर रहा था। सरकारी आज्ञा आ गयी थी कि लाला धनपतराय की अधिग्रहण की गयी सम्पत्ति अब नये वर्ष में ठेकों पर नहीं दी जायेगी। उसे एक सरकारी विभाग के रूप में चलाया जायेगा। इसके लिये पन्द्रह मार्च को जनरल मैनेजर व्यवसाय का चार्ज लेने और एक फार्म मैनेजर खेती-बाड़ी के काम की देख-रेख के लिये आयेगा। मिल के हिस्सों का नियन्त्रण व्यवसाय का मैनेजर देखेगा। ये दोनों मैनेजर मुख्य परिरक्षक के अधीन होंगे।

इस समय चपरासी ने बैठक के द्वार पर खड़े होकर बताया, 'कानूनगो साहब आये हैं।'

उत्तर सुशीला ने दिया, 'उनको यहीं ले आओ।'

'वह अच्छा आदमी नहीं है।' धवन ने कहा।

'इससे मुझे क्या लेना-देना है। चाय के समय आया है तो उसे भी एक प्याला मिलना ही चाहिये।'

धवन अपनी पत्नी के स्वभाव को जानता था। दो बातों का वह बहुत ध्यान रखती थी। एक तो यह कि सामान्य रूप में भंगी, चमार से लेकर पुरोहित अथवा सरकारी अधिकारी के साथ एक समान व्यवहार रखे। घर में अथवा घर से बाहर के व्यक्तियों के साथ सरलता से व्यवहार करे। इस कारण कानूनगो को चाय पर बुलाये जाने पर उसे विस्मय नहीं हुआ।

सन्तराम आया तो हाथ जोड़ पति-पत्नी को नमस्कार कर खडा हो गया। सुशीला

ने ही कहा, 'कानूनगो साहब, पधारिये।'

सुशीला ने घर के नौकर को आवाज़ दे, एक प्याला और मेज़ पर लगाने के लिये कह दिया। सन्तराम ने बैठते ही मतलब की बात आरम्भ कर दी। उसने पूछा, 'मैनेजर साहब! आपने जो लालाजी की दुकान और खेतों का काम सरकारी सैक्टर में ले लिये जाने की सम्मति दी थी, उसका क्या हुआ है?'

मैनेजर अभी बात बताना नहीं चाहता था। उसका विचार था कि यदि समय से पूर्व बात ठेकेदारों को पता चल गयी तो वह माल को और दुकान तथा खेतों में लगे यन्त्रादिक को हानि पहुँचाना आरम्भ कर देंगे। इससे सरकार को भारी हानि पहुँचेगी। तदनन्तर कौन किससे दाम वसूल करता फिरेगा? अभी भी बैंक से बिना ज़मानत के जो ऋण दिया गया था, वह प्रायः डूब चुका है और उसकी वसूली में कठिनाई उपस्थित हो रही है। यही बात इन ठेकेदारों से होगी।

वह जानता था कि कुछ दुकानदारों ने और खेतों पर ठेकेदारों ने अपने पास से मूल्य देकर माल और सामान लगवाया है। इस सबके सरकारी क्षेत्र में ले लेने का समाचार प्रसारित होते ही वे अपना माल और सामान निकलवा लेंगे और जो माल में घाटा होगा, उसके लिये सरकार को चाराजोई करनी पड़ेगी। वह घाटा इन ठेकेदारों से प्राप्त करना अति कठिन है।

इस विचार से उसने उसी दिन प्राप्त समाचार को अभी नहीं बताया। उसने कह दिया, 'अभी तक मुख्य कार्यालय से किसी प्रकार की आज्ञा नहीं आयी।'

'अब वर्ष तो समाप्त होने जा रहा है। यदि नये ठेके लिखे गये तो फिर उनको रद्द करने में एक वर्ष और लग जायेगा।'

'परन्तु तुम्हारी इसमें क्या रुचि है? तुम न तो सरकारी माल के परिरक्षक हो और न ही ठेकेदार हो।'

'मैं एक नागरिक के अधिकार से ही कह रहा हूँ। सरकारी घाटा तो हम लोग अपना ही घाटा मानते हैं।'

धवन मुस्कराया, परन्तु कानूनगो की हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कहने लगा, 'हां, यह तो है। मैं कल एक रिमाइण्डर भेज दूँगा।'

प्याला मेज़ पर आ गया था और सुशीला ने चाय बना दी। साथ ही एक प्लेट पर कुछ पकौड़े और मिठाई रख दी। सन्तराम को धवन की बात पर सन्तोष नहीं हुआ था। इस कारण वह मैनेजर को भड़काने के लिये कहने लगा, 'गाँव के सब प्रतिष्ठित लोग इस विषय में सरकार को तुरन्त कोई पग उठाने की इच्छा कर रहे हैं।'

मैनेजर ने अभी भी मुस्कराते हुए पूछ लिया, 'कौन-कौन लोग हैं जो ऐसा करना पसन्द करते हैं?'

'मसलन, तहसीलदार साहब हैं। सन्तोषसिंह बसों का मालिक है। और भी कई लोग हैं। बहुत लोग हैं जो इस देश में शीघ्रातिशीघ्र समाजवाद लाना चाहते हैं।'

मैनेजर समाजवाद के विरुद्ध सन्तराम के सम्मुख कुछ कहना नहीं चाहता था। इस कारण उसने कहा, 'सन्तराम! सरकारी काम इतनी जल्दी नहीं हो सकते जैसे लोग निजी काम करते हैं। एक महीने से ऊपर हो गया है मेरे प्रस्ताव को गये हुए। अभी तक तो उस प्रस्ताव के पहुँचने की भी सूचना नहीं आयी।'

::10::

सन्तराम निराश धवन साहब के घर से निकला। वीरेन्द्र की दुकान तो बन्द पड़ी थी और उस दुकान में पड़ा अन्न सड़ रहा था। परन्तु लक्ष्मी की दुकान खूब चलती थी। सीताराम दुकान पर बैठा था और उस समय लक्ष्मी वहाँ नहीं थी। सन्तराम दुकान के आगे से गुज़रा तो सीताराम से बात करने श्रृंगार-प्रसाधन की दुकान पर आ खड़ा हुआ। कुछ स्त्रियाँ और कुछ-एक युवक ग्राहक वहाँ खड़े थे। सीताराम माल दिखा रहा था।

सीताराम ने सन्तराम को खड़े देखा, परन्तु उसने ग्राहकों को छोड़ उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। सन्तराम अपनी बारी की प्रतीक्षा करता रहा। वह खड़ा-खडा मन में विचार कर रहा था कि यह धनपतराय का निष्ठावान और ईमानदार कर्मचारी है। इसकी भी नौकरी समाप्त होगी। नगर का मैनेजर इसे इस काम पर रहने देगा अथवा नहीं, कौन कह सकता है।

जब सन्तराम की बारी आयी तो सीताराम ने पूछ लिया, 'कानूनगो साहब! सेवा बताइये?'

'मैं कुछ खरीदने नहीं आया। मैं यह जानने आया हूँ कि तुम कभी अपनी मालकिन के घर जाते हो अथवा नहीं?'

'बहुत कम जाता हूँ। उनसे सब कहना-सुनना यहीं कर लेता हूँ।'

'मैं लक्ष्मी की माताजी का स्वास्थ्य-समाचार जानना चाहता था।'

'लक्ष्मीदेवीजी अभी आने वाली हैं। आप इस कुर्सी पर बैठ उनकी प्रतीक्षा कर सकते हैं।'

इस समय एक स्कूल का विद्यार्थी आया और बोला, 'आपके पास 'नेल पालिश' है?'

'हाँ, है।'

'निकलसन का?'

'हाँ। वह भी है, परन्तु उससे सस्ता और बढ़िया 'फ्री मैन' का है। एक बार ले जाकर देखिये।'

'मैं तो 'निकलसन' का ही प्रयोग करता हूँ।'

'तो तुम प्रयोग करते हो क्या?'

'हाँ। किसलिये पूछ रहे हो?'

'मैं समझा था कि तुम अपनी बहन के लिये लेने आये हो।' विद्यार्थी मुस्कराया और बोला, 'दोनों दिखा दो।'

सीताराम ने एक अलमारी खोल उसमें से दो डिब्बे निकाले और उनमें से एक-एक नेल पालिश की शीशी निकाल दिखाने लगा।

लड़के ने 'फ्री मैन' की शीशी पसन्द की। उसने कहा, 'अच्छा, यही दे दो। यह नया 'मेक' है। इसे भी देखता हूँ।'

सन्तराम जो समीप ही एक कुर्सी पर बैठा लड़के की ओर ध्यान से देख रहा था, पूछने लगा, 'परन्तु अभी तो तुमने यह पालिश लगायी हुई नहीं है?'

'यह मैं स्कूल से वापस जाते समय नहीं लगाता। अभी स्कूल से आ रहा हूँ।'

सन्तराम चुप रहा। सीताराम ने दाम बताया, 'चार रुपये पचास पैसे।'

लड़के ने दाम दिया और जाने लगा तो सीताराम ने कहा, 'कैश-मीमो लेते जाओ।'

'क्या आवश्यकता है?'

इस पर भी सीताराम ने रसीद काटी और रद्दी की टोकरी में फेंक दी।'

'सम्भव है इसका विचार बदल जाये और दूसरी वाली लेने आये।' सन्तराम ने पूछ लिया, 'फिर क्या करोगे?'

'हम माल वापस नहीं लेते। परन्तु मैं जानता हूँ कि यह नहीं आएगा। यह अपनी किसी प्रेमिका को भेंट देने के लिये ले जा रहा है। इसी कारण इसने दोनों में से अधिक

सुन्दर डिबिया खरीदी है।'

सन्तराम का भी यही विचार था। इस पर भी वह चुप रहा। सन्तराम को बहुत देर तक प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ी। लक्ष्मी आयी और 'काउण्टर' पर खड़ी हो पिताजी को हाथ जोड़ नमस्कार कर पूछने लगी, 'आपका स्वास्थ्य तो ठीक है?'

'हाँ, ठीक है। तुम बताओ?'

'सब परमात्मा की कृपा है।'

'और तुम्हारी माताजी?'

'वह भी स्वस्थ और प्रसन्न प्रतीत होती हैं।'

इस समय दो स्त्रियों को दुकान पर आते देख लक्ष्मी ने अपने पिता को विदा करने के लिये कह दिया, 'आपको कुछ चाहिये?'

'तुम्हारी दुकान पर तो प्रायः स्त्रियों के लिये सामान है। मैं किसके लिये खरीदूँगा?'

'हमारे यहाँ पुरुषों के लिये भी है। नेल कटर है, श्वेत बालों के लिये खिजाब (हेयर डाई) भी है।'

सन्तराम हँसकर उठ पड़ा, परन्तु दुकान से निकलता हुआ खड़ा हो गया। वह सामने तीन-चार दुकानों को मिलाकर एक बड़ी दुकान बनायी जाती देख, कुछ विचारकर लौट आया और लक्ष्मी को नयी आई स्त्रियों से बात करते देख पुनः अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगा। उन स्त्रियों ने बहुत-सी वस्तुएँ खरीदी और उनको विदा करने में पन्द्रह मिनट से ऊपर लग गये। इस सब समय सन्तराम प्रतीक्षा करता रहा। जब वह स्त्रियाँ दाम देने सीताराम की मेज के सामने चली गयीं तो सन्तराम ने पूछा, 'यह दुकान किस काम के लिये बन रही है?'

'दुकानें चाचाजी ने ली हैं और वही इनको एक करा कर ठीक करवा रहे हैं।'

'काहन ने?'

'जी।'

'और अब वह दो दुकानें करेगा। करेगा तो फिर एक दुकान का अधिग्रहण कर ली जायेगी।'

'नहीं। वह अपनी ही दुकान को विस्तार दे रहा है। कोई नया व्यवसाय नहीं खोल रहा।'

'ऐसा प्रतीत होता है कि काहन ने बहुत रुपया कमाया है।'

'इस विषय में मैं कुछ नहीं जानती। जान भी कैसे सकती हूँ? वह मुझसे बहुत

कम मिलते हैं।'

'मैं समझता हूँ कि काहन के विषय में सरकार को लिखना पड़ेगा। उसने किसानों को कितना लूटा है? इस बात की जाँच होनी चाहिये।'

इसमें कुछ कहने को नहीं था। इस कारण लक्ष्मी चुप रही। इस समय एक पुरुष 'सेफ्टी रेज़र ब्लेड' लेने आ गया। लक्ष्मी उसे दिखाने लगी तो सन्तराम मन में काहन के विरुद्ध किसी प्रकार की कार्यवाही करने का विचार करता हुआ चला गया।

सन्तराम के जाने के कुछ ही उपरान्त काहनचन्द और वीरेन्द्र दोनों आये। वीरेन्द्र आजकल काहन से बहुत मेल-जोल रखता था। जिस समय सन्तराम लक्ष्मी की दुकान पर आया था तो वीरेन्द्र काहन की दुकान पर उससे बातें कर रहा था। जब सन्तराम चला गया तो वीरेन्द्र काहन को साथ लिये हुए वहाँ आया और पूछने लगा, 'पिताजी क्या मीठी-मीठी बातें कर रहे थे?'

लक्ष्मी ने बताया, 'चाचाजी, आपकी दुकान के विषय में पिताजी सरकार को लिखने वाले हैं कि आपने बहुत लाभ कमाया है। इस कारण आपके व्यवसाय की जाँच होनी चाहिये।'

'हो जाये। मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मुझे तो तुम्हारी दुकान की चिन्ता है।'

'इसका क्या है?'

'कल पिताजी नगर परिरक्षक के कार्यालय में अपनी मासिक किशत प्राप्त करने गये थे। वे वहाँ से यह समाचार लाये हैं कि दुकानें अब सरकारी सैक्टर में चलायी जायेंगी।'

'यह कब तक होगा?'

'इस विषय की आज्ञा यहाँ के परिरक्षक के पास आ चुकी है। वह अभी इस आज्ञा को प्रकट नहीं कर रहा। क्यों? कहा नहीं जा सकता।'

'चाचाजी! यदि यह बात सत्य है तो हमें क्या करना चाहिये?' मेरा तो पूर्ण वर्ष-भर का लाभ दुकान में ही है।'

'अभी एक मास है। नया माल मत मँगवाओ और जितना नकद निकाल सको, निकाल लो। सरकार को तुमसे कुछ लेना बन जाये तो ठीक है। सरकार के पास तुम्हारा कुछ रह गया तो वह मिलना कठिन है। पिताजी की ही बात देख लो। उनकी सब अधिग्रहण की सम्पत्ति का दाम छः सहस्र आंका गया था और उसकी पाँच-पाँच सौ की बारह किस्तें नियत की थीं। आज ग्यारह महीने हो चुके हैं और इन ग्यारह महीनों में अभी तक पाँच किस्तें प्राप्त हुई हैं। शेष के बिल बन कर सचिव महोदय की

मेज़ पर रखे हैं। उनको उन पर हस्ताक्षर करने का अवकाश नहीं है।'

लक्ष्मी भौंचक्की काहन का मुख देखती रह गयी। वीरेन्द्र ने सुझाव दिया, 'तुम भी चाचाजी की भाँति क्यों नहीं करतीं? एक दुकान भाड़े पर ले लो और आज्ञा मिलने से पूर्व अपने लाभ के भाग का माल वहाँ ले जाओ और एक दुकान और कर लो।'

'यह विचारणीय है।'

'हाँ, विचार कर लो। किससे विचार करोगी?'

'सीताराम से।'

'कर लो।' इतना कह वीरेन्द्र और काहन दुकान से निकल सामने वाली दुकान देखने चले गये। वहाँ काम ठेके पर हो रहा था। काहन ने ठेकेदार से पूछा, 'कब तक दुकान तैयार हो जायेगी?'

'रंग-रोगन तो पीछे भी हो सकता है। फर्श तैयार हो गया है। द्वार लग गये हैं। आप कभी भी इसमें माल लाकर रख सकते हैं।'

काहन ने अपनी दुकान के उस माल की सूची बना रखी थी जो वह नयी दुकान पर ले जाना चाहता था। उसने अपनी दुकान पर जाते ही वहाँ के क्लर्क को वह सूची देते हुए कहा, 'इस माल की बिक्री, लागत के मूल्य और दो प्रतिशत लाभ दिखाकर कर दो और माल एक-दो दिन के भीतर उस दुकान में चला चाना चाहिये।'

क्लर्क ने सूची देखी और कह दिया, 'यह कल से आरम्भ हो जायेगा यदि कल नहीं तो परसों तक सामान नयी दुकान में पहुँच जायेगा।'

वीरेन्द्र घर पहुँचा तो वह मन में विचार करता था कि नये अधिकारी आयेंगे और उसकी दुकान का चार्ज लेंगे तो उससे पूछ-ताछ भी कर सकते हैं। उसने स्टेट बैंक के क्लर्क को रिश्वत दे, बढ़ा-चढ़ा कर दाम लगवाया था। इससे वह विचार करने लगा कि इस संकट से बचने के लिये क्या करे?

एक बार गाँव के वकील देवेन्द्रनाथ मिश्र ने कहा था, 'सरकार को रुपया न देना एक बहुत ही सहज काम है। रुपया मत दो और जब सरकार दावा करे तो मेरे पास आ जाना। मैं दावे को सालों-साल लटकाये रखूंगा और तब तक तुम अपना दिवाला निकाल सकते हो।'

'परन्तु वकील साहब!' वीरेन्द्र ने पूछा, 'धन और दुकान के माल को कहाँ छुपाकर रखूंगा?'

'धन को तो किसी सम्बन्धी के नाम बैंक में जमा करा दो और सम्पत्ति को किसी दूसरे के नाम बेच दो। दुकान में घाटा दिखा दो और यह रुपया उस घाटे में दिखा दो।'

आज उसे देवेन्द्रनाथ की बात स्मरण आयी तो वह वकील साहब की बैठक में जा पहुँचा। वहाँ जाकर उसने देवेन्द्र के सामने अपनी समस्या रख दी। उसने कहा, 'ग्यारह महीने हुए कि मेरी पत्नी ने धनपतराय की एक दुकान ठेके पर ली थी। दो हज़ार रुपया स्टेट बैंक के मैनेजर को रिश्वत दी और बीस हज़ार दो सौ बीस रुपये का माल ले लिया। इसकी रसीद बैंक वालों को लिखकर दे दी गयी और उस पर साढ़े पाँच प्रतिशत ब्याज दिया जाता है। अब सुना है कि दुकान सरकार वापस ले रही है। सरकार इसे एक सरकारी कारोबार के रूप में चलाने का विचार रखती है। लक्ष्मी का विचार है कि रिश्वत का धन देकर और ब्याज तथा दुकान का भाड़ा, सेवकों का वेतन देकर भी दुकान में पाँच हज़ार के लगभग लाभ होगा।

'कठिनाई यह है कि प्रथम तो सरकारी अधिग्रहण करने वाले मनमाना दाम आँकेंगे। पीछे यदि कुछ हमारा सरकार की ओर बना तो उसकी अदायगी सरकार कब करेगी, कैसे करेगी और करते समय कितना कुछ अधिकारियों को देना पड़ेगा? यह सब विचार कर मुझे और लक्ष्मी को भी चिन्ता लग रही है।'

'यह तो होगा ही। वीरेन्द्रजी, आपने तो पंचायत के निर्वाचन के समय समाजवाद की धूम मचा रखी थी। समाजवाद का यही स्वरूप है। अब इससे डरते क्यों हो?'

'डरने की बात नहीं, वकील साहब! लक्ष्मी ने मेहनत-मजदूरी और बुद्धि-युक्त व्यवहार से इतना लाभ किया है और यह लाखों रुपये भी नहीं, पाँच-चार हजार की बात है। इसको बचाना चाहता हूँ।'

देवेन्द्रनाथ ने कह दिया, 'आपकी समस्या पर विचार करूँगा। आप कल सायंकाल आइये तो मैं अपनी कानून की पुस्तक देखकर बता सकूँगा।'

'इसमें अब समय नहीं रहा। यह अधिकार शीघ्र होने वाला है।'

'ठीक है। कल अवश्य कोई-न-कोई सूरत निकाल कर बताऊँगा।'

रात वीरेन्द्र घर पहुंचा तो लक्ष्मी आयी हुई थी। दुकान बन्द कर आयी थी। उसने पति के आते ही कहा, 'मैं 'शो विण्डो' में यह लिखकर लगा आयी हूँ कि 'क्लीयरेंस सेल' कल होगी। पन्द्रह प्रतिशत दाम कम। सीताराम और चपरासी दुकान पर बैठे वस्तुओं के नये दामों की सूची बना रहे हैं।'

'इससे क्या लाभ होगा?'

'मैं आशा करती हूँ कि इस महीने में चार-पाँच हजार की बिक्री हो जायेगी और वह सब रुपया मेरे लाभ का होगा जो नये ठेका मिले बिना दुकान में नहीं जायेगा।'

वीरेन्द्र को समझ आ गया कि लक्ष्मी तथा सीताराम वकील से भी अधिक

व्यावहारिक बुद्धि रखते हैं। वह प्रसन्न था। परिणाम यह होने लगा कि अगले दिन से पाँच सौ से एक सहस्त्र रुपये तक की बिक्री होने लगी और वह सब धन घर पर लाकर रखा जाने लगा।

दुकान पर कैशमीमो दो-ढाई सौ की काटी जाती थी और उतने रुपये का माल क्रय कर दुकान में डाल दिया जाता था। शेष रुपया नगर में एक बैंक में मोहिनी के नाम पर जमा होने लगा।

तृतीय परिच्छेद

::1::

बालकृष्ण अपनी पत्नी की बात सुन चिन्ता व्यक्त कर रहा था। पत्नी ने हाथ में नेल-पालिश की एक शीशी पकड़ी हुई थी और अपने पति को दिखा उसके प्राप्त होने की कथा बता रही थी। उसने बताया था, 'यह सुमित्रा की पुस्तकों के बस्ते में से निकली है। आज तीसरे प्रहर घूमने गयी थी। जब लौटी तो उसके नाखूनों पर रंग लगा था। मैंने पूछा यह कहाँ से लगाया है। उसने कहा कि मेरी नेल-पालिश की शीशी से लगाया है।'

'मैं विस्मय कर रही थी कि इसे कैसे पता चला है कि मेरी शीशी कहाँ रखी है और फिर जो रंग उसका है, वह रंग सुमित्रा के नाखूनों पर नहीं था। उस समय तो मैंने उसकी बात पर विश्वास ही प्रकट किया। जब वह गुसलखाने में गयी तो मैंने उसके बस्ते की तलाशी ले ली। उसमें से यह निकली है। अवश्य यह उसके किसी मित्र ने उसे दी होगी।'

बालकृष्ण ग्यारह महीने से बेकार घूम रहा था। उसे कहीं नौकरी नहीं मिल रही थी। बेकार होने से पूर्व वह धनपतराय की सेवा में था। वह पूर्ण दुकान का हिसाब-किताब रखता था और पाँच सौ रुपया वेतन पाता था। जब धनपतराय की दुकान का अधिग्रहण किया गया तो उसे छुट्टी दी गयी। कारण यह कि उस वेतन का लेखाकार किसी एक दुकान को नहीं चाहिये था। इन ग्यारह महीनों में उसकी हालत पतली हो चुकी थी।

सुमित्रा उनकी एक ही सन्तान थी। सुमित्रा के तीन भाई उत्पन्न तो हुए थे, परन्तु वे तीनों बाल्यावस्था में ही चल बसे थे। बालकृष्ण नौकरी के लिये नगर तक चक्कर लगा चुका था और कहीं काम न पाने के कारण हताश हो चुका था।

पत्नी से नेल-पालिश की शीशी ले उसने देखा। उसे एक बात सूझी। उसने विचार किया कि पता करना चाहिये कि यह नेल-पालिश किसने भेंट में दी है? इसके जानने के दो ही साधन थे। एक तो सुमित्रा से पता करना और दूसरे जिस दुकान से

खरीदी गयी हो उससे पता किया जाये। कदाचित् वह बता सके।

गाँव में इस प्रकार के सामान की बड़ी एक ही दुकान थी। एक अन्य दुकान अभी-अभी खुली थी, परन्तु वह पूँजी के अभाव में बढ़िया तथा कम बिकने वाला माल नहीं रखता था। कंघियाँ, हेयर पिन तथा क्लिप इत्यादि छोटा-मोटा सामान ही उस दुकान पर मिलता था।

अतः बालकृष्ण को समझ आया कि लड़की से पूछने पर तो उसे बताना पड़ेगा कि उसके झूठ का ज्ञान हो गया है और अगली बार वह इसी प्रकार के झूठ को छपाने का यत्न करेगी। उसके मन में एक दूसरी ही योजना थी। उसने कहा, 'कल प्रातः जब वह स्कूल जाने लगेगी तो इसे बस्ते में न देख विस्मय करेगी। कदाचित् तुमसे पूछे और यदि पूछे तो उसको बहकाने का यत्न करना। तुम अपनी सूखी हुई शीशी दिखाकर उसे कहना कि उसके झूठ का ज्ञान तुम्हें हो गया है।

'इस पर जो कुछ वह कहेगी उसे इस प्रकार दूसरों से भेंट लेने के भय का दर्शन कराना।

'मैं गाँव की दुकान से पता करूंगा कि किसने आज ऐसी शीशी खरीदी है? सीताराम मेरा परिचित है। यदि वह बता सका तो मैं उस बदमाश के बच्चे की खूब पिटाई करूँगा।'

'देख लीजिये। कहीं फौजदारी न करना।'

'हो जायेगी तो क्या होगा? बेकार बैठा अन्न खा-खाकर गन्दा ही कर रहा हूँ। जेल जाऊँगा तो रोटी-कपड़ा तो मिलेगा ही।'

सुमित्रा की माँ ने बात टालने के लिये कह दिया, 'आप भी पता करिये। और मुझे भी यत्न करने दीजिये। यदि साँप भी मर जाये और लाठी भी बच जाये तो ठीक रहेगा।'

'हाँ, एक बात मुझे कई दिन से सूझ रही है। आपके लाला धनपतराय बहुत दयालु माने जाते हैं। उसी को अपनी दशा बता उनसे सहायता माँगिये।'

'उनसे आरम्भ में तो बात की थी। वह कह रहे थे कि आप लोगों ने समाजवाद की व्यवस्था चलायी है। उस व्यवस्था से तो मैंने झगड़ा किया नहीं। जो आप प्रगतिशीलों ने विधान निर्माण किया है उसके सामने नतमस्तक हो गया हूँ। अब आप अपनी समाजवादी सरकार के पास जाइये। यह उसी का कर्तव्य है कि आप सबका पालन करे।'

'तो आप भी समाजवाद के पक्षपाती हैं?' पत्नी ने पूछ लिया।

'अब क्या हूँ, यह तो मैं जानता नहीं। हाँ, तब था। पंचायत के निर्वाचन में सबसे अधिक व्याख्यान तो मैंने ही दिये थे। लाला धनपतराय की बढ़ती सम्पत्ति का नग्न चित्र तो मैं ही जनता को बताया करता था।'

'तब तो आपको चौधरी रामावतार के पास जाना चाहिये। वह भी तो समाजवादी है।'

'गया था। उसने एक नयी बात बतायी है। उसका कहना है कि वह तो समाजवादी है नहीं। यह तो जब हम पढ़े-लिखों ने समाजवाद का हल्ला किया तो मैंने भी समझ लिया कि यह पंच बनने का एक सहज मार्ग है। इस कारण मैं भी समाजवादी बन गया। जब धनपतराय की सम्पत्ति का अधिग्रहण हुआ तो मुझे समझ आया है कि मेरी भूमि का भी अधिग्रहण हो सकता है।

'समाजवादी कहते हैं कि सम्पत्ति रखना एक मनुष्य के मूलाधिकार में नहीं है। तो मैं पूछता हूँ कि समाजवादी यह भी कहते हैं कि दुनिया का पूर्ण इतिहास ही सम्पत्ति के चारों ओर घूम रहा है। तब इतनी महान बात से मनुष्य का अधिकार हटा देना मनुष्य को ही निर्मूल करना है।

'अब रामावतार कहता है कि दिल्ली की यात्रा करो और प्रधान मन्त्री की कोठी के बाहर धरना दे दो। वही तुम्हारे कष्टों का निवारण करेगा।

'मैं वहाँ नहीं गया। परन्तु एक बात तो समझ आ रही है कि हम निर्धनों के लिये पूँजी धनपतराय के पास हो अथवा मिस्टर धवन के अधिकार में हो, क्या अन्तर पड़ सकता है। धनपतराय से छीन कर धवन के अधिकार में चली गयी तो इसमें अन्तर यह आया है कि पहले धनपतराय मेरा अन्नदाता था, अब धवन हो सकता था। परन्तु उससे मेरा किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं। यह पंजाब का रहने वाला यहाँ आकर राजा बन गया है। उसको हम पर क्यों दया आयेगी? उसके अधिकार में कोई काम होगा तो वह किसी पंजाबी अथवा गाँव वाले को प्राथमिकता देगा। धनपतराय तो फिर अपने गाँव का था। उसका किसी बाहर वाले से सम्बन्ध नहीं था।'

सुमित्रा की माँ यह कहानी कई बार अपने पति से सुन चुकी थी। इससे कुछ उद्विग्न भाव में बोली, 'आप बातें बहुत करते हैं। आप जाइये, धनपतराय के पांव पकड़ लीजिये। वह कोई मार्ग बता देगा।'

'मुझसे यह नहीं हो सकेगा।'

'अच्छी बात है। तो मैं ही इसमें कुछ यत्न करूंगी।'

'तुम क्या यत्न करोगी। एक बूढ़ी स्त्री क्या आकर्षण रख सकती है एक बूढ़े

पुरुष के लिये?'

'बेकारी और निर्धनता के कारण आपकी बुद्धि ने काम करना छोड़ दिया है।'

'और तुम घी की चुपड़ी खाती हो?' बालकृष्ण ने पुछ लिया।

'खाती तो आपकी भांति सूखी ही हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि को तेल मिला हुआ प्रतीत होता है।'

अगले दिन सुमित्रा की मां ने मक्की की रोटी और अरहर की दाल बनायी थी। बालकृष्ण तो अभी सोकर नहीं उठा था। रात वह अपनी पतित अवस्था पर चिन्तन करता हुआ बहुत रात तक जागता रहा था। इस कारण आठ बजे तक भी वह खाट पर लेटा हुआ खर्राटे भर रहा था।

सुमित्रा के स्कूल जाने का समय हो गया था और वह प्रातः का कलेवा लेने नहीं आ रही थी। माँ ने आवाज दी, 'सुमित्रा, ऐ सुमित्रा। स्कूल का समय हो गया है।'

'आयी माँ!' सुमित्रा ने अपने कमरे से ही आवाज दे दी, 'अपनी पुस्तकें ठीक कर रही हूँ।'

पुस्तकों की बात सुन माँ को नेल-पालिश की बात स्मरण हो आयी। उसने समझा था कि वह नेल-पालिश की शीशी ढूंढ रही होगी। अपनी लडकी को सचेत और सतर्क करने का यह अवसर विचार कर वह रसोईघर से निकल सुमित्रा के कमरे में जा पहुंची।

समित्रा अपना बस्ता खोल सब पुस्तकें निकाल सामने रखे हुए देख रही थी। उसको विश्वास था कि नेल-पालिश की शीशी उसने अपनी पुस्तकों में रखी थी और वह विचार कर रही थी कि वह गयी कहाँ? वह अभी विचार ही कर रही थी कि शीशी कहाँ जा सकती है और वह कमरे में खाट के इधर-उधर देख रही थी कि माँ कमरे में आ उसे सब पुस्तकें फैलाये और सम्मुख रखे देख पूछने लगी, 'क्या ढूंढ़ रही हो?'

'माँ! एक वस्तु मैंने अपने बस्ते में रखी थी किन्तु अब नहीं है।'

'क्या था?'

सुमित्रा बताने में हिचकिचाहट अनुभव करने लगी। उसे पिछले दिन बोला झूठ समझ में आ गया और वह न तो नेल-पालिश के विषय में बताना चाहती थी और न ही अपने झूठ बोलने की बात। उसने निराशा-भरी दृष्टि में पुनः अपनी पुस्तकों को देखा और फिर उनको उठा-उठा बस्ते के थैले में रखने लगी। अब माँ उनके समीप बैठ उसका हाथ पकड़ कर थैले में झाँक कर देखते हुए पूछने लगी, 'आखिर तुम देख क्या रही थी जिसके लिये स्कूल जाने में भी देर कर रही हो?'

'माँ, कुछ था।'

अब माँ ने नेल-पालिश की शीशी लाकर दिखाते हुए कहा, 'इसे तो नहीं देख रही थी?'

शीशी को देखते ही सुमित्रा ने झपट कर माँ के हाथ से शीशी छीनने के लिये अपना हाथ बढाया तो माँ ने हाथ पीछे कर कहा, 'यही ढूँढ रही थी? यह क्या है?'

'माँ! यह भी कुछ है।'

'सुमित्रा! तुम तो माँ से भी अधिक चतुर हो गयी हो। तुम मुझको मूर्ख मानकर ही बात कर रही हो। भला मैं नहीं जानती कि यह क्या है?'

अब तो सुमित्रा पुस्तक समेटनी छोड़ हाथ-पर-हाथ रख बैठ गयी। वह बताना नहीं चाहती थी कि उसको कहाँ से मिली है। माँ को क्रोध आ गया। उसने एक चपत मुख पर लगा दी और कहा, 'बोलती क्यों नहीं? जुबान कहाँ गुम हो गयी है?'

सुमित्रा ने साहस पकड कह दिया, 'यह किसी ने भेंट में दी है।'

'कौन है वह?'

'तुम उसे नहीं जानतीं।'

'तुमने उसको क्या दिया है जो उसने तुम्हें यह भेंट में दिया है?' सुमित्रा चुप थी। माँ ने कह दिया, 'ठीक है। तुम आज स्कूल नहीं जाओगी। घर पर ही काम करोगी।'

सुमित्रा की आँखों में आँसू भर गये थे। एक तो चपत लगने के अपमान से और दूसरे स्कूल जाने से मना किये जाने पर।

'चलो।' माँ ने कह दिया, 'भोजन करो और घर का कामकाज करो। पढ़ाई बन्द।'

'पर मैं तो श्रेणी में बहुत अच्छे अंक लेकर पास होती चली आ रही हूँ।'

'हाँ। हमें ऐसे अंकों की आवश्यकता नहीं।'

::2::

सुमित्रा अपने स्थान से उठी नहीं। माँ उसे कह कि भोजन तैयार है, स्वयं रसोईघर में चली गयी। सुमित्रा विचार कर रही थी कि वह क्या करे? उसके नेल-पालिश का रहस्य तो प्रकट हो गया था। वह समझ रही थी कि उसने उस नेल-पालिश के प्रतिकार में क्या दिया है। यह माँ को ज्ञात नहीं हुआ। यदि ज्ञात होता तो वह उस विषय पर कुछ कहती। इससे वह मन में विचार कर रही थी कि क्या बताये कि नेल-पालिश के प्रतिकार में उसने अपने मित्र महेश को क्या दिया है? दाम देने की बात माँ मानेगी नहीं। उसके पास दाम आये कहाँ से? वह तो यह भी नहीं जानती थी कि शीशी का मूल्य कितना है? एकाएक उसे एक बात सूझ पड़ी और वह उससे उत्साहित हो रसोईघर को चल पड़ी। माँ मन-ही-मन क्षुब्ध हो रही थी। वह समझ नहीं पा रही थी कि यह समस्या सुलझेगी कैसे? सुमित्रा आयी और मां के सामने एक पटरे पर बैठ गयी और रोटी की प्रतीक्षा करने लगी। माँ ने लडकी को आया देख उसके लिये दाल और रोटी परोस दी। जब सुमित्रा सूखी रोटी, उबली दाल में भिगो मुख में डाल चबाने लगी तो उसे ऐसा अनुभव हुआ कि वह भूसा खा रही है। इस पर भी मां का क्रोध शान्त करने के लिये वह चुप थी। माँ ने उसे दो-तीन ग्रास जल के घूंट से गले से नीचे उतरते देखा तो कहा, 'अच्छा, यह बताओ! तुम स्कूल नहीं जाओगी तो क्या करोगी?'

'जो लड़कियाँ प्रायः करती हैं।'

'आजकल तो लड़कियाँ प्रधानमन्त्री से लेकर भंगी, चमार तक का सब काम करती हैं।'

'माँ! प्रधानमन्त्री अथवा कोई भी सरकारी पद मैं पा नहीं सकती। वह मेरे भाग्य में लिखा नहीं। मैं तो वही करूंगी जो प्रायः सब लड़कियाँ करती हैं। अर्थात् विवाह करूंगी।'

'किससे विवाह करोगी?'

'जिससे वह नेल-पालिश ली है और जो तुमने चुरा ली है।'

'इसे चोरी करना नहीं कहते। इसे छीनना कहते हैं। मैंने समझा है कि यह तुम्हारी नहीं। यह तुम कहीं से चुराकर लायी हो। जब तक तुम बताती नहीं कि यह तुम कहाँ से और कैसे लायी हो, तब तक वह तुम्हें वापस नहीं मिल सकती। चोरी की

वस्तु जब्त हो जाती है।'

'और यदि बता दूंगी तो दे दोगी?'

'यदि वह चोरी की नहीं हुई तो बता दो कि कैसे प्राप्त की है?'

'माँ! मैंने चोरी नहीं की। उसके बदले में मैंने किसी को एक वचन दिया है।'

'क्या वचन दिया है?'

'यही कि मैं उससे विवाह करूँगी।'

'वस एक इस नेल-पालिश की शीशी के बदले में?'

'नहीं। यह तो उन सब भेंटों का अग्रिम है जो वह मुझको जीवन भर देगा।'

'कौन है वह?'

'अभी उसने नाम बताने की स्वीकृति नहीं दी। यदि कहो तो स्कूल जा उससे स्वीकृति ले आऊँ?'

'तो वह स्कूल में है?'

'हाँ। वह हमारी श्रेणी में पढ़ता है।'

'उसका पिता क्या करता है?'

'यह बताऊँगी तो सब-कुछ बताना पड़ेगा और मैंने उसको वचन दिया है कि अभी नहीं बताऊँगी।'

'तो मैं स्वयं मालूम कर लूँगी।'

'कैसे मालूम कर लोगी?'

'यह अभी बता नहीं सकती। हाँ, तुमको इस काम के लिये स्कूल जाने की आवश्यकता नहीं।'

'माँ! मैं जाऊँगी।'

'जाओगी तो टाँगें चीर डालूँगी। देखो सुमित्रा, तुम्हारा पिता मुझे मूर्ख मानता है और तुम भी यही समझने लगी हो। किन्तु मैं मूर्ख नहीं हूँ। मैं सब-कुछ समझ रही हूँ। मैं यह भी जानती हूँ कि इस तीन-चार रुपये की वस्तु के बदले में उसने तुमसे क्या प्रतिकार माँगा होगा और कदाचित् तुमने वह दिया है।

'मैं इसे एक गम्भीर बात समझती हूँ। इसके परिणाम भी गम्भीर हो सकते हैं। इस कारण तुम्हारी उन परिणामों से रक्षा करने के लिये मैं तुम्हें स्कूल नहीं भेज रही। हम निर्धन अवश्य हो गये हैं, परन्तु अपने मान-अपमान को घोलकर पी नहीं गये।

'जिसने तुम्हें यह नेल-पालिश दी है, उसका पता मैं करूँगी और सीधी उससे

बात करूँगी। यदि वह तुम्हारे योग्य हुआ और उसके घर वालों ने एक क्लर्क की लड़की को बहू बनाना स्वीकार किया तो विवाह हो जायेगा।'

सुमित्रा ने इससे प्रसन्न हो कह दिया, 'वह मान जायेगा।'

'क्या आयु है उसकी?'

'मेरी ही आयु का हो सकता है। हम दोनों हायर सैकेण्डरी में पढ़ते हैं।'

'तो वह अभी अपना विवाह स्वयं नहीं कर सकता। केवल इतना ही नहीं, तुम भी अभी विवाह नहीं कर सकती। यह कानून से मना है कि लड़की का विवाह अट्ठारह वर्ष की आयु से कम में हो।'

'तो विवाह के लिये हम दो वर्ष तक ठहर जायेंगे।'

'लड़के को बीस वर्ष की आयु पार करनी आवश्यक है।'

'माँ! कभी तो वह बीस वर्ष का होगा।'

'ठीक है। तब तक तुम वहाँ नहीं जा सकोगी।'

'कहाँ?'

'जहाँ-जहाँ वह जायेगा अथवा रहेगा।'

इसी समय बालकृष्ण अँगड़ाइयाँ लेता हुआ रसोईघर में आ गया। माँ-बेटी को बातचीत करते देख वह समझ गया कि नेल-पालिश की बात हो रही होगी। उसने इस बात को बदलने के लिये पूछ लिया, 'सुमित्रा! आज स्कूल नहीं गयी?'

उत्तर माँ ने दिया, 'नहीं। यह अब स्कूल नहीं जायेगी। इसका विवाह होना चाहिये।'

'हो जायेगा। अभी यह विवाह की आयु की नहीं है।'

'हो न हो, विवाह हो जाना चाहिये।'

'अच्छी बात है। मैं यत्न करता हूँ।' इतना कह वह शौचालय की ओर चला गया। उसने दो विषयों पर रात देर तक जागते हुए विचार किया था। एक तो अपनी जीविका के लिये वह वीरेन्द्र से मिलना चाहता था। उसका विचार था कि वह तो अवश्य खाने-पीने का प्रबन्ध कर देगा। दूसरा सुमित्रा के नेल-पालिश के विषय में। इसका पता वह सीताराम से करना चाहता था। अतः जल्दी-जल्दी तैयार होने लगा।

सुमित्रा स्कूल नहीं गयी। वह अपने कमरे में जा पुस्तकें समेट बस्ते में डाल, सामने रख बैठी विचार कर रही थी कि माँ कैसे महेश का पता करेगी? महेश, एक दस-बारह बीघे भूमि के स्वामी का लड़का था। इस पर भी उसके घर के लोग धनी

प्रतीत होते थे। महेश भी छुट्टी के दिन घर पर काम-धन्धा करता था। उसके घर वाले एक जुराबों के कारखाने से जुराबें लाकर, उनके फालतू धागे काट कर उनको लोहा लगा कर, उन पर लेबल लगा डिब्बों में बन्द करने का काम करते थे। कारखाने से इतना काम मिल जाता था कि घर के सब प्राणी मिलकर इसे रिक्त समय में कठिनाई से कर पाते थे।

प्रातः तो माँ-बाप और महेश का बड़ा भाई खेत में काम करने जाते थे। महेश और उसकी छोटी बहन स्कूल में पढ़ने जाते थे। घर में महेश के बड़े भाई मोहन की पत्नी रहती थी। वह घर की सफाई, कपड़े धोने तथा खाना तैयार करने का काम करती थी।

सायंकाल महेश और उसकी बहन निर्मला स्कूल का काम करते थे। बहुत छोटे दर्जे का किसान होने पर भी महेश के माता-पिता का खाना-पीना भली-भाँति चलता था।

स्कूल जाने वाले बच्चों को पच्चीस-पच्चीस पैसे नित्य जेब-खर्च मिलता था। घर की नकदी महेश की मां सोना के अधिकार में रहती थी। वह सब रुपये, जो नित्य के काम की उजरत में प्राप्त होते थे, एक सन्दूकची में रख अपने सोने के कमरे की अलमारी में रख छोड़ती थी। उसमें नित्य की आय डाल देती थी और नित्य का व्यय निकाल लेती। थी। हिसाब-किताब रखने वाला कोई था नहीं अथवा रखने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती थी। जिसको जितनी आवश्यकता होती थी, उतना माँग लेता था।

एक दिन वह स्कूल के हलवाई की दुकान से गुलाबजामुन लेकर खा रहा था। चार आने के दो छोटे-छोटे गुलाब जामुन मिल जाते थे। इस दिन उसने दो गुलाब जामुन लिये और खाने लगा तो उसने दुकान के बाहर सुमित्रा को खड़े देखा। उसने पूछ लिया, 'सुमित्रा खाओगी?'

'नहीं, मेरे पास दाम नहीं हैं।' कहने का अर्थ स्पष्ट था कि खाने को चित्त तो करता है, परन्तु दाम नहीं।

महेश को एक बात सूझी। उसने एक प्लेट में दो और गुलाब जामुन लिये और प्लेट सुमित्रा के हाथ में देते हुए कहा, 'खाओ! जब दाम होंगे, दे देना।'

सुमित्रा जानती थी कि उसके पास दाम तो कभी भी नहीं होंगे। इस पर भी गुलाब जामुन खाने की लालसा के कारण वह चुप रही और खाने लगी।

वास्तव में महेश ने दुकानदार से दूसरी प्लेट उधार ली थी। इस कारण अब उसे

चिन्ता लगने लगी कि वह इस ऋण का भुगतान कैसे करेगा? उसे एक बात सूझी। वह थी माँ की सन्दूकची में से कुछ पैसे निकाल लेने की बात। अतः घर पहुंच वह इस ताक में रहा कि किस प्रकार माँ की नज़र बचाकर वह माँ के कमरे में जाये और सन्दूकची में से पैसे निकाल लाये?

वह अवसर मिल गया। परिवार के सब लोग जुराबों के काम में लगे थे। वह पेशाब करने के बहाने से उठा और शौचालय में जाने के स्थान माँ के सोने के कमरे में गया और सन्दूकची खोल, जो वस्तु सबसे ऊपर पड़ी दिखायी दी, उसे ले जेब में डाल चला आया। वह दस रुपये का नोट था। सन्दूकची से निकाल अपनी जेब में रखते समय उसने ध्यान नहीं किया। वह कमरे से शीघ्र निकल जाना चाहता था।

शेष दिन और रात-भर वह डरता रहा था कि सन्दूकची में रुपये कम पाये गये तो पूछताछ होगी और उस चोरी के माल के साथ वह पकड़ा भी जा सकता है। इसी चिन्ता में वह दिन और रात-भर परेशान रहा ।

अगले दिन जागने पर भी जब रुपयों की चर्चा नहीं हुई तो उसे विश्वास हो गया कि माँ को पता नहीं चला। स्कूल जाने से पूर्व वह और उसकी छोटी बहन जेब-खर्चा लेने माँ के पास गये और उसने सन्दूकची खोल पच्चीस-पच्चीस पैसे दिये। इस समय भी माँ को सन्देह नहीं हुआ। अतः वह स्कूल में मध्य की विश्रान्ति के समय जब हलवाई की दुकान को जाने लगा तो उसे सुमित्रा बरामदे में खड़ी दिखायी दी। वह हलवाई की दुकान की ओर नहीं जा रही थी।

महेश जाता-जाता रुक गया और घूमकर पूछने लगा, 'सुमित्रा! आज गुलाबजामुन नहीं खाओगी?'

'नहीं। अभी कल के खाये का दाम भी नहीं है।'

'तो फिर क्या हुआ? आओ, सब इकट्ठे ही दे देना।'

'नहीं, नहीं। आप जाइये।'

'आओ न! इकट्ठे मिलकर खाने में मज़ा आता है।'

सुमित्रा अनिच्छा से, परन्तु लालसा से खिंची-सी महेश के साथ चली गयी और दुकान के बाहर ही खड़ी हो गयी। महेश भीतर गया और दो प्लेटों में गुलाबजामुन लेकर बाहर आ गया।

सुमित्रा ने खाते हुए कहा, 'तो आपके पास इसके लिये भी पैसे हैं?'

'हाँ। कल मैंने उधार किया था, परन्तु आज तो कल के और आज के सब दाम दे दिये हैं।'

जब सुमित्रा खाली प्लेट वापस करने लगी तो महेश ने पूछ लिया, 'और लोगी?'

'बस, बहुत है।'

महेश ने कहा, 'बहुत का क्या अभिप्राय? पेट में स्थान नहीं अथवा जेब में दाम नहीं?'

'जेब में दाम तो इसके लिये भी नहीं हैं। पेट में स्थान भी अभी सब खाली पड़ा है, परन्तु मैं विचार करती हूँ कि जब भी दाम देने पड़ेंगे तब कहाँ से दूँगी? हमारे घर में तो ईश्वर जाने कब मिठाई के लिये दाम आयेंगे?'

'तब तो और खाने चाहियें।'

'किसलिये?'

'इसलिये कि मेरे पास पैसे हैं। तुम्हारे पास कभी होंगे नहीं। इस कारण न मुझे लेने की आवश्यकता होगी और न तुम्हें वह देने की सामर्थ्य होगी।'

इतना कह बिना सुमित्रा के उत्तर की प्रतीक्षा किये महेश भीतर गया और अब दो प्लेट रसगुल्लों की ले आया। सुमित्रा को ये गुलाबजामुन से भी अधिक पसन्द आये।

इस प्रकार एक रुपया व्यय कर दोनों श्रेणी में चले गये। नौ दिन तक तो काम चलता रहा। इसके उपरान्त पुनः महेश ने यत्न किया और माँ की सन्दूकची में से एक और दस रुपये का नोट निकाल लाया। अब उसने जान-बूझ कर दस रुपये का नोट निकाला।

इस समय तक दोनों में खुलकर बात होने लगी थी। अब उन्होंने एक-दूसरे से मन के लगाव की चर्चा की तो दोनों एकान्त में मिलने के लिये व्याकुल हो उठे। इसके लिये भी स्थान मिल गया। स्कूल में ही चौकीदार का कमरा था जो उन दिनों रिक्त पडा था। वे वहाँ सायंकाल आने लगे।

तदनन्तर एक दिन वह सुमित्रा के लिए नेल-पालिश ले आया। वह भेंट में दिया और साथ ही उसके प्रयोग का ढ़ंग बता दिया। इसके अगले दिन सुमित्रा स्कूल नहीं आई।

::3::

सीताराम लड़के को पहचान तो सकता था। उसे स्पष्ट रूप में स्मरण था कि एक इस रूप-राशि का लडका नेल-पालिश लेने पहले दिन आया था। नेल-पालिश प्रायः लड़कियाँ अथवा स्त्रियाँ ही लेने आती थीं। इस कारण लड़के को लेने के लिए आते देख उसे विचित्र लगा था और उसने लड़के को ध्यान से देखा था।

अतः जब बालकृष्ण ने पूछा तो सीताराम लडके के वस्त्र, उसकी रूप-राशि बताने लगा। बालकृष्ण ने पूछा, 'यह किसका लड़का है?'

'बालकृष्ण! यह स्थान अब कोई छोटा-सा गाँव नहीं रहा। यह एक छोटा-मोटा नगर हो गया है। बहुत-से बाहर के लोग और शुगर मिल में काम करने वाले भी गाँव में रहने लगे हैं। इससे अब हम सबके बाल-बच्चों को जानते नहीं।'

'अच्छा भैया! यदि वह फिर आये तो उसका पता जानना।'

'क्यों, क्या बात है?'

'वह नेल-पालिश की शीशी लड़की की पुस्तकों में रखी मिली है।'

'तब तो पता करना बहुत सुगम है। वह अवश्य लड़की के स्कूल में ही पढ़ता होगा। चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। स्कूल बन्द होने पर लड़कों को स्कूल से निकलते देखेंगे और मैं पहचान जाऊँगा। तब तुम उससे नाम-धाम पूछ सकते हो।'

लक्ष्मी दुकान पर थी। सीताराम ने साढ़े-ग्यारह बजे लक्ष्मी से दस मिनट की छुट्टी ली और दोनों स्कूल के द्वार पर जा खड़े हुए। महेश सुमित्रा के न आने से कुछ उदास था। वह जब स्कूल के फाटक से नकला तो सीताराम ने उसे पहचाना और बालकृष्ण को बता दिया। बालकृष्ण ने सीताराम को वहीं छोड़ा और महेश के साथ चलते हुए पूछने लगा, 'किसके लड़के हो?'

'क्या काम है आपको?' महेश ने उत्तर देने के स्थान प्रश्न पूछ लिया। 'मुझे तुम्हारे पिता से काम है।'

'तो उनसे ही नाम भी पूछ लो।' यह कह महेश जाने लगा तो सीताराम ने बालकृष्ण को कहा, 'यह लड़का जान गया है कि उसकी मित्र लड़की के सम्बन्ध में पूछा जा रहा है। मेरा विचार है कि इसका पीछा करिये और इसके घर का पता कर लीजिये।'

बालकृष्ण को भी यही उपाय उचित प्रतीत हुआ, परन्तु महेश से छुपकर उसका पीछा नहीं किया जा सका। वह सतर्क हो गया था। कुछ दूर घर की ओर जाकर वह खड़ा हो गया और बालकृष्ण और सीताराम को आता देखने लगा। जब वे उसके आगे से गुज़रने लगे तो महेश ने आवाज़ दे दी, 'देखो जी! मेरा पीछा करने का प्रयोजन बता दो, मैं आपको सीधा अपने पिता के पास ले जाऊँगा।'

बालकृष्ण ने जेब में से नेल-पालिश की शीशी निकालकर दिखाते हुए कहा, 'मैं यह तुम्हारे पिता को देना चाहता हूँ।'

'किसलिये?'

'उसका लड़का यह लोगों में बाँटता-फिरता है। क्या यह उसकी अनुमति से कर रहा है अथवा कहीं से चोरी करके इसका दाम लाता है?'

'बस। यही बात है? तो जाइये, मेरा घर पीपल वाले चौक में चौधरी सोहनसिंह का मकान है।'

'तुम झूठ बोल रहे लगते हो।'

'तो अदालत में मुकद्दमा चला दो।'

सीताराम हँस पड़ा। उसने कहा, 'अदालत से एक अन्य स्थान भी है जहाँ तुम्हारे-जैसों का मुकद्दमा किया जा सकता है।'

'कहाँ?'

सीताराम ने एक चपत महेश के मुख पर जड़ दिया। बालकृष्ण तो सीताराम से भी अधिक क्रोध से भरा हुआ था। उसने भी एक घूंसा चलाया। वह महेश की कुक्षि में लगा। महेश भाग खड़ा हुआ। भागते समय उसके हाथ से पुस्तकों का थैला गिर गया, परन्तु वह थैला लेने लौटा नहीं।

जब वह भाग गया तो राह चलते लोग खड़े हो पूछने लगे, 'क्या हुआ है?'

बालकृष्ण ने कह दिया, 'वह लड़का एकाएक गालियाँ देने लगा था। उसे मना किया था, परन्तु वह गालियाँ देने से रुका नहीं। आखिर उसे पीटने की धमकी दी तो भाग खड़ा हुआ है।'

सीताराम ने महेश की पुस्तकें उठायीं और पीपल वाले चौक की ओर चल पड़े।

चौधरी सोहनसिंह, महेश का पिता खेतों से लौट मकान पर पहुंचा तो दो व्यक्तियों को वहाँ खड़े देख प्रश्न-भरी दृष्टि में उनकी ओर देखने लगा। सीताराम को पुस्तकों का थैला उठाये हुए देख सोहनसिंह समझ रहा था कि थैला उसके घर का ही है। इस

कारण वह उनके मुख पर देखता रहा। बात सीताराम ने की। उसने कहा, 'आपका लड़का अपनी पुस्तकें सड़क पर ही फेंक घर चला आया है।'

'क्यों?'

'किसी लड़की के पीछे भाग रहा मालूम हुआ है।'

'आप कौन हैं?'

'मैं 'श्रृंगार प्रसाधन दुकान' पर काम करता हूँ। मुझे वहाँ मिलियेगा तो लड़की का पता भी बताऊँगा।'

'परन्तु वह लड़का मेरा ही था क्या?'

'यह तो इन पुस्तकों से पता चला है।'

सोहनसिंह ने पुस्तकें ले लीं और कहा, 'मैं आपसे मिलूँगा।' इतना कह वह मकान के भीतर चला गया। सीताराम और बालकृष्ण लौट गये।

सोहनसिंह भीतर गया तो महेश की माँ उसके गाल पर सेंक कर रही थी। सोहनसिंह ने पछा, 'क्या हआ है?'

उत्तर महेश ने दिया, 'दो गुण्डों से झड़प हो गयी थी।'

'और वे तुम्हारी पुस्तकें मुझे दे गये हैं।'

अब महेश ने पूछा, 'क्या कहते थे, पिताजी?'

'वे कह रहे थे कि मेरा लड़का पुस्तके सड़क पर फेंक किसी लडकी के पीछे भाग गया है।'

'झूठ।' अकस्मात् महेश के मुख से निकल गया।

'झूठ? तो यह पुस्तकें वहाँ क्यों फेंक आये थे?'

'वह मुझे पीटने लगे थे और यदि मैं पुस्तकें इकट्ठी करने के लिये खड़ा रहता तो वह मेरा लातों और घूंसों से मलीदा ही कर देते।'

'तो यह बात है। परन्तु यह पुस्तकें लाने वाले तो गुण्डे मालूम नहीं होते थे।'

'कैसे कहते हैं यह, पिताजी?'

'वह मुझे अपने मिलने का स्थान बता गये हैं। गुण्डे ऐसा नहीं करते। एक बात उनमें से एक ने और बतायी है। वह यह कि मुझे उस लड़की का पता भी बतायेगा जिसके पीछे तुम भाग रहे थे।'

'तो पिताजी! उनसे अवश्य मिलिये। मैं तो किसी लड़की के पीछे भागा नहीं। इस कारण मैं बता नहीं सकता कि वह कहाँ रहती है।'

'बात बहुत गम्भीर हो गयी है, महेश! तुम्हारे पीटे जाने से तो यह विचार आता है कि पुलिस में रिपोर्ट लिखा दूँ और यह लड़की की कहानी सुन तो कुछ ऐसा समझ आया है कि इस बात की स्वयं ही जाँच करूँ और यदि उसका कहना ठीक है तो मैं भी तुम्हारी पिटाई करूँ।'

महेश स्वयं कहने वाला था कि मुझे इन गुण्डों की पुलिस में रिपोर्ट लिखवानी चाहिये, परन्तु पिता को उसकी बात के मुख से निकलने के पूर्व ही बताते और फिर उसका स्वयं ही उत्तर देते देख, वह उनका मुख देखने लगा।

बात माँ ने बदली। उसने कहा, 'महेश को पीटने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह लड़का इतना अच्छा है कि अपने माता-पिता से कभी कोई बात छुपाकर रख ही नहीं सकता। यदि सत्य ही किसी लड़की की बात हुई तो यह पृथक में मुझे बता देगा और फिर मैं उससे स्वयं निपट लूँगी।'

महेश की कनपटी पर हल्दी और घी की पट्टी बाँध दी गयी। सबने भोजन किया और तब अपने नियमित काम पर लग गये।

महेश आज काम नहीं कर सका। उसने यह कह कि उसके सिर में पीड़ा हो रही है, काम बन्द करने का बहाना कर दिया। माँ देख रही थी कि वह चंचलता अनुभव कर रहा है। इस कारण उसने पूछ लिया, 'सिर दर्द है अथवा गालों पर पीड़ा हो रही?'

'माँ। सिर दर्द है।'

'तो लाओ। मैं सिर पर घी लगा देती हूँ। सिर दर्द ठीक हो जायेगा।'

महेश ने उत्तर नहीं दिया और माँ थोड़ा घी गरम कर ले आयी और उसके सिर में डाल धीरे-धीरे मसलने लगी। सिर मसलते हुए उसने पूछा, 'मुझे बता दो, वह कौन लड़की है?'

'कोई नहीं, माँ।'

'तो माँ से भी झूठ बोलते हो?'

'नहीं माँ!'

'तो मेरी सन्दूकची में से रुपये किसलिये चुराते रहे हो?'

यह तो महेश पर वज्रपात के समान बात हो गयी। वह समझ रहा था कि सन्दूकची में से रुपये निकालने की बात घर में किसी को पता नहीं। वह स्तब्ध रह गया। फिर एक बात विचारकर वह माँ से पूछने लगा, 'माँ! तुम्हारी सन्दूकची में कितने रुपये थे और उसमें कितने चोरी हो गये हैं?'

'देखो महेश! रुपये मैं रखती हूँ, परन्तु हिसाब तुम्हारे पिता रखते हैं। उन्होंने ही

तीन बार दस रुपये कम होने की बात बतायी है। मैं जानती हूँ कि तुम ही हो जो रुपये चुरा सकते हो। आज उसका कारण भी पता चल गया है।'

'पर और कोई क्यों नहीं चुरा सकता?'

'इस प्रकार की चोरी वह करता है जिसे किसी अनियमित काम के लिये रुपयों की आवश्यकता होती है। जो कुछ भी तुम और तुम्हारे बहन-भाई और भाभी किसी उचित काम के लिये माँगते हैं, वह मिल जाता है। चोरी करने की आवश्यकता तब होती है जब किसी अनियमित काम के लिये धन चाहिये। सबसे अधिक विवश करने वाला अनियमित काम लड़कों के लिये लड़की और लड़कियों के लिये लड़का प्राप्त करना होता है। बताओ ठीक है न?'

महेश समझ गया कि बात छुपी रह नहीं सकती तो फिर स्वयं ही क्यों न बता दे। उसने पूर्ण बात माँ को बता दी।

'यह किसकी लड़की है?' माँ ने पूछा।

'उसके पिता का नाम बालकृष्ण है। वह कभी धनपतराय के स्टोर का एकाउन्टेण्ट था। आजकल वह बेकार है। सुमित्रा बताती थी कि इनके घर महीनों से ही मक्की की रोटी और अरहर की दाल बन रही है। ये दो वस्तुएँ भी उनके घर में बहुत कम रह गयी हैं। उसकी माँ चिन्ता किया करती है कि जब वह भी समाप्त हो जायेंगी तो फिर खाना-पीना भी बन्द हो सकता है।'

माँ ने पूछ लिया, 'उससे विवाह करोगे?'

'माँ! वह भाभी जैसी सुन्दर नहीं है।'

'वैसी सुन्दर हो भी कैसे सकती है? भाभी तो छोटी माँ है न। माँ के बराबर सुन्दर कोई भी स्त्री नहीं हो सकती।'

महेश माँ का मुख देखता रह गया। उसकी माँ ने एक बात कही, 'तुमने उसका अनिष्ट किया है। इसके लिये तुम्हें उससे क्षमा माँगनी चाहिये। मैं समझती हूँ कि केवल क्षमा से भी काम नहीं चल सकता। उस अनिष्ट के प्रतिकार में तुम्हें उसे अपनी पत्नी बना लेना चाहिये।'

'पर..।' महेश कुछ कहना चाहता था, परन्तु कह नहीं सका। माँ ने कुछ देर तक उसका मुख देखा और कह दिया, 'देखो, महेश! तुमने जो कुछ किया है उसके लिये उससे विवाह करना होगा। विवाह करोगे तो स्कूल की पढ़ाई बन्द और जीविकोपार्जन के लिए खेतों पर काम करना होगा।'

'पर पिताजी तो कह रहे थे कि ट्रैक्टर के गाँव में आ जाने से खेत पर तो दो

व्यक्तियों का भी काम नहीं रहा। वीरेन्द्र का नवीन ट्रैक्टर तो हल चलाता है, निराई करता है और कटाई भी कर देता है। वह एक दिन के बीस रुपये लेता है और वर्ष में दो अथवा तीन दिन भाड़े पर लाने से फसल-भर का काम हो जाता है।'

'तो किसी अन्य स्थान पर काम किया जा सकता है।'

'माँ! एक बात करो।'

'बताओ?'

'सगाई कर दो। विवाह मेरी पढ़ाई समाप्त होने के उपरान्त हो।'

'और तब तक तुम किसी अन्य लड़की को खराब कर दो? नहीं महेश, तुमने भारी पाप किया है। इसका फल तुम्हें भोगना ही पड़ेगा।'

महेश माँ का मुख देखता रह गया।

::4::

बालकृष्ण सीताराम को उसकी दुकान पर छोड़ लाला धनपतराय के मकान को चल पड़ा। यद्यपि उसने अपनी पत्नी को यह कहा था कि उसे धनपतराय से काम पाने की आशा नहीं, इस पर भी अब काम पाने का अन्य कोई स्थान न देख वह विवश हो वहाँ गया था।

बालकृष्ण ने द्वार खटखटाया तो घर के नौकर सरवन ने द्वार खोल पूछ लिया, 'किनसे मिलना है?'

'लालाजी से।'

'आपका नाम क्या है?'

'बालकृष्ण। मैं लालाजी की दुकान का पुराना एकाउन्टेण्ट हूँ।'

'आप भीतर आ जाइये और बैठिये। लालाजी से कोई मिलने आये हुए हैं। वह इस समय उनसे बातचीत कर रहे हैं।'

बालकृष्ण चुप रहा। सरवन भीतर गया और एक मिनट में ही आ बालकृष्ण से कहने लगा, 'आइये! लालाजी आपको बुला रहे हैं।'

बालकृष्ण इतनी जल्दी बुलाये जाने की आशा नहीं कर रहा था। वह विस्मय

करता हुआ उठा और सरवन के साथ भीतर बैठक में जा पहुंचा। वहाँ पहुँच उसकी पहली दृष्टि ही सुमित्रा की माँ, सरस्वती पर पड़ी। वह आश्चर्यचकित रह गया। उसके मुख से निकल गया, 'तुम?'

सरस्वती खड़ी थी और उसके समीप ही कुर्सी पर काहन की माँ सुखिया बैठी थी। सरस्वती भी विस्मय कर रही थी कि उसका पति यह कहकर कि वह लालाजी से मिलने नहीं जायेगा, फिर कैसे यहाँ आ गया है! जिस समय सरवन भीतर सूचना लाया था, उसी समय से वह खडी हो पति के भीतर आने की प्रतीक्षा कर रही थी। पति के पूछने पर कि वह यहाँ कैसे आयी है, उसने बता दिया, 'जब आपने कहा कि आप यहाँ नहीं आ रहे तो मैंने स्वयं ही आना उचित समझा है। घर पर पानी नाक तक आ गया था। वहाँ की सब बात मैंने माताजी को बतायी तो ये मुझे लालाजी के पास ले आयीं। यहाँ मैं पूर्ण स्थिति बता ही रही थी कि आप आ गये हैं। अब आप ही बता दीजिये।'

वार्तालाप का सूत्र धनपतराय ने अपने हाथ में लेते हुए कहा, 'बैठो बालकृष्ण।'

वह और उसकी पत्नी दोनों जब बैठ गये तो धनपतराय ने कहा, 'जो कुछ तुम्हारी पत्नी ने बताया है, मैं उससे समझ गया हूँ कि तुम लोग बहुत कष्ट में हो। इसने यह भी बताया है कि तुमको मेरे यहाँ से सहायता मिलने की आशा नहीं थी। यह ठीक हो सकता है। कारण यह कि सत्य ही अभी तक मैं यह समझ नहीं सका कि किस प्रकार तुम्हारी सहायता करूँ? इस पर भी तुम यदि एक की सिफारिश लेकर आते तो कुछ तो हो ही सकता था। वह तो सबकी सहायता करता ही रहता है।'

बालकृष्ण समझ नहीं सका था कि लाला धनपतराय किसकी सिफारिश कह रहा है? उसने विस्मय में पूछ लिया, 'किसकी सिफारिश चाहते हैं आप?'

धनपतराय ने मुस्कराते हुए कहा, 'मेरा बताना तो ठीक प्रतीत नहीं होता। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारी पत्नी उसी का वास्ता डाल काहन की माँ के पास आयी होगी। तभी तो यह तुम्हारी पत्नी को यहाँ लायी है। काहन की माँ जानती है कि उसकी सिफारिश को मैं इनकार कर ही नहीं सकता।'

बालकृष्ण तो अभी भी नहीं समझा और आश्चर्यवत् मुख देखता रह गया। बात धनपतराय ने ही आगे चलायी। उसने कहा, 'यह कह रही है कि पानी नाक तक आ गया है और तुमने भी यहाँ आकर इस बात का प्रमाण दे दिया है। इस कारण पहले तो डूबतों को जल से बाहर करने की आवश्यकता समझ आयी है। यह तो मैं अभी किए देता हूँ।'

'सुखिया !' धनपतराय ने अपनी पत्नी को सम्बोधन कर कहा, 'इनके घर चली जाओ और देखो इनकी क्या सहायता कर सकती हो।'

सुखिया पति के व्यवहार को जानती थी और वह सहायता का अर्थ भी समझती थी। इस कारण वह उठ खड़ी हुई और सरस्वती से कहने लगी, 'चलो बेटी ! शेष बात तो तुम्हारे घर चल कर ही करूँगी। अब तुमको नाक से ऊपर जल के चढ़ जाने का तो भय नहीं करना चाहिये।'

सरस्वती ने यह समझा कि लालाजी उसके पति को किसी प्रकार का काम बताने के लिये उसे वहाँ से टाल रहे हैं। साथ ही उसने सुमित्रा की बात सुखिया से बतायी थी और यह विचार कि उसके सुखिया के साथ वहाँ से टल जाने से उसके पति को पता नहीं चलेगा कि उसने घर की गुह्यतम बात घर से बाहर बता दी है।

अतः वह तुरन्त उठी और सुखिया का मुख देखने लगी। सुखिया सरस्वती को लेकर मकान के भीतर चली गयी। वहाँ उसने वस्त्र बदले, और सरस्वती के साथ उसके घर को चल पड़ी।

दोनों स्त्रियों के चले जाने के उपरान्त धनपतराय ने बालकृष्ण से पूछा, 'पहले बताओ, इतनी देर तक कहाँ रहे हो और क्या करते रहे हो?'

बालकृष्ण ने अपने काम के लिये गाँव के भिन्न-भिन्न व्यावसायिक व्यक्तियों के पास जाने, नगर में दफ्तरों की खाक छानने और फिर बेकार घूमने का पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया।

'पर तुम मेरे पास तो कभी आये नहीं? मैं भी तो यहाँ की मिट्टी का एक कण हूँ।'

'एक बार आया था। तब आपकी सम्पत्ति के अधिग्रहण की सूचना अभी आयी ही थी। आपने कहा था कि हम कर्मचारियों का सम्बन्ध तो व्यवसाय से था और हमें व्यवसाय के साथ ही जाना चाहिये।'

'उस समय कहा होगा। परन्तु तुम देख रहे थे कि मैंने बहुत से कर्मचारियों की सहायता की थी और उनको दुकानें ले दी थीं। कइयों को अपने खेतों का पट्टा लेने में सहायता की थी।'

'लालाजी ! मैं यह देख रहा था, परन्तु मुझमें किसी व्यवसाय का काम करने तथा खेत में हल जोतने की न तो रुचि थी और सामर्थ्य। मैंने जब से होश सम्भाला है, नौकरी ही करता रहा हूँ। व्यवसाय में घाटा हो सकता है और ऋतु प्रतिकूल होने से पैदावार नगण्य भी हो सकती है। इस प्रकार जीवन में भय तो मैंने कभी लिया नहीं और लेने का साहस भी नहीं है।'

'मैं अब भी इसी आशा से आया हूँ कि आपके यहाँ कोई भी छोटा-मोटा काम मिल जाये तो अन्न-दाने का प्रबन्ध हो सके।'

धनपतराय समझ गया कि यह व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता। इसको तो बगल में बैसाखी देकर ही खड़ा किया जा सकता है। इस कारण वह बालकृष्ण के विषय में इसी दृष्टि से विचार करने लगा था कि यह शूद्र-वृत्ति का व्यक्ति व्यवसाय अथवा कृषि की ऊँच-नीच का भय सिर पर नहीं लेगा। ऐसे ही लोगों के लिये नौकरी का आविष्कार किया गया है। वह अब बालकृष्ण के लिये नौकरी दिलाने का विचार करने लगा। उसने कुछ सतर्क हो पूछा, 'बालकृष्णजी! बताइये, आप क्या काम कर सकेंगे?'

'हिसाब-किताब रखना, यह मेरा काम रहा है और मैं इसी काम को भली-भाँति कर सकता हूँ।'

'परन्तु यहाँ तो इस प्रकार का काम है नहीं। तुम एक काम करो। मैं एक पत्र लिख देता हूँ। शुगर मिल के मैनेजर के पास चले जाओ। वहाँ जो बात हो, आकर मुझे बताना। उसके उत्तर पर और कुछ विचार कर लेंगे।'

बालकृष्ण दो बार पहले शुगर मिल के मैनेजर के पास जा चुका था और वहाँ से बैरंग लौट चुका था। इस कारण वह मौन रहा। एक क्षीण-सी आशा लालाजी के पत्र से बनी थी। वह उस आशा से पुनः शुगर मिल की यात्रा करने के लिये तैयार हो गया।

वह लालाजी का पत्र लेकर गया और तीन घण्टे में लौटा। धनपतराय घर पर नहीं था। सरवन ने बताया, 'लालाजी सायंकाल सात बजे तक आने वाले हैं।'

इस कारण वह पुनः तीन घण्टे के उपरान्त आने के विचार से अपने घर जा पहुंचा।

घर पर सरस्वती और सुमित्रा दोनों बैठकघर में बैठी एक-दूसरे का मुख देख रही थीं। दोनों मौन और गम्भीर विचार में मग्न बैठी थी। बालकृष्ण ने घर पहुंचते ही पूछा, 'अब क्या कर रही हो?'

सरस्वती ने सचेत हो, मानो वह किसी स्वप्न से जागी हो, पूछ लिया, 'क्या हुआ है?'

बालकृष्ण मुस्कराया और बोला, 'जैसे तुम परेशान प्रतीत होती हो वैसे ही मैं अपने को निराश अनुभव कर रहा हूँ।'

'मैं परेशान तो हूँ, परन्तु निराश नहीं। चाय पियेंगे?'

'हाँ। चीनी है?'

'अभी लालाजी की पत्नी ने अन्न, दालें, दूध, चीनी और कुछ वस्त्र भेजे हैं।'

'तो वह यहाँ की अवस्था देख गयी हैं?'

'हाँ। तभी तो यह सामान और उसके साथ पचास रुपये दिये हैं।'

सरस्वती ने सुमित्रा से कहा, 'जाओ, चाय बना लाओ।'

सुमित्रा गयी तो सरस्वती ने बताया, 'लालाजी की पत्नी अभी यहाँ की बात जान ही रही थी कि एक अन्य स्त्री घर पर आयी और वह एक नयी समस्या उत्पन्न कर गयी है। मैं और सुमित्रा उसी के विषय में विचार कर रही थीं।'

'कौन थी वह?'

'जिस लड़के से आपकी लाडली मुख काला कर आयी थी, वह उस लड़के की माँ थी। वह सुमित्रा से लड़के के विवाह का प्रस्ताव कर गयी है।'

'और तुमने क्या उत्तर दिया है? मैंने और सीताराम ने तो उसकी खूब मरम्मत की है।'

'क्या किया है?'

'सीताराम ने जब नेल-पालिश की बात सुनी तो कहने लगा कि अवश्य वह लड़का सुमित्रा के स्कूल का छात्र है। वह इसे पहचान लेगा। हम उसके पिता का नाम-धाम जान उसके पास लड़के की शिकायत करना चाहते थे, परन्तु लड़के को पहचान जब सीताराम ने उसके पिता का नाम इत्यादि पूछा तो उसने टेढ़ी-मेढ़ी बातें करनी आरम्भ कर दीं। इस पर सीताराम को भी क्रोध आया और कसकर एक चांटा उसको जड़ दिया। मैंने भी एक कसकर लगाया तो वह भाग खडा हुआ। वह अपनी पुस्तकें भी वहीं सड़क के किनारे फेंक गया। मैंने और सीताराम ने उसकी पुस्तकें उठायीं और उसके पिता को दे आये हैं। परन्तु हमने यहाँ का पता तो बताया नहीं था।'

'तो उस लड़के ने ही यहाँ का पता बताया होगा। लालाजी की पत्नी अभी यहीं थीं कि महेश की माँ आ गई। इस कारण वह लड़के की माँ की बात समझ उसके लड़के का नाम-धाम, लड़के की आयु उसके कारोबार के विषय में पूछने लगीं। जब वह सब जान गयीं तो उन्होंने ही लड़के की माँ से कहा, 'आप एक-दो दिन में मुझे मिलियेगा और मैं आपके इस प्रस्ताव का उत्तर दूंगी।

'वह स्त्री घर की स्थिति देख गयी है और मैं समझती हूँ कि वह कदाचित् पुनः न तो यहाँ आयेगी और न ही लालाजी की पत्नी से मिलेगी। हमारी हीन-दीन अवस्था देख तो वह इधर मुख नहीं करेगी। जाते समय उसके मुख पर स्पष्ट निराशा दिखायी दे

रही थी।

'लालाजी की पत्नी का कहना तो यह है कि यह विवाह नहीं होना चाहिये। परन्तु सुमित्रा कह रही थी कि वह वहीं विवाह करेगी। मैं उसे समझा रही थी कि हमारे घर की अवस्था देखने के उपरान्त वह विवाह की बात नहीं करेगा। मेरे इस कहने पर ही वह गम्भीर हो विचार करने लगी थी।'

'आप क्या कर आये हैं?'

'मुझे लालाजी ने एक पत्र देकर शुगर मिल के मैनेजर के पास भेजा था। उस पत्र का इतना प्रभाव तो हुआ कि मैनेजर ने मुझे भीतर बुला मेरी बात सुनी है। पहले तो वह भीतर से चपरासी के हाथ ही कहला दिया करता था कि कोई नौकरी नहीं है। मैनेजर ने कहा है कि मैं कल उसे फिर मिलूँ।'

'मुझे आशा है कि आपको नौकरी मिल जायेगी।'

इस समय सुमित्रा चाय बनाकर ले आयी।

धनपतराय को एक तो पाँच-पाँच सौ की किस्तें मिल रही थीं। उस पूरी रकम को वह या तो शुगर मिल के हिस्सों को खरीदने में लगा रहा था अथवा सरकार द्वारा नयी तोड़ी जा रही भूमि खरीद रहा था। पिछले ग्यारह महीने में उसे छः किस्त ही मिली थीं। इसमें से उसने दो सहस्त्र रुपये भूमि पर लगाये थे। नयी भूमि सरकारी थी। सिंचाई का प्रबन्ध होते ही सरकार ने पट्टे पर दो सौ रुपया प्रति एकड़ लेकर देनी आरम्भ कर दी थी। धनपतराय ने उसमें से पन्द्रह एकड़ तीन हजार रुपया देकर ले ली थी और वहाँ वह गाँव के लिये साक-भाजी की पैदावार करने लगा था।

शुगर मिल एक कम्पनी के अधीन थी और यह समझा जाता था कि आस-पास की सब शुगर मिलों से उसका प्रबन्ध सर्वश्रेष्ठ था। उस मिल की नौकरी पाने तथा वहाँ गन्ना बेचने की इच्छा सदा कर्मचारियों और किसानों में बनी रहती थी।

धनपतराय ने पाँच सौ रुपया, जो सरकार की ओर से उसे मिलता था, पूँजी ही के रूप में प्रयोग करने का निश्चय किया हुआ था। उसमें से वह अपने निजी व्यय के लिए कुछ भी व्यय नहीं कर रहा था। उसे वह व्यवसाय में लगा रहा था। हाँ, साक-भाजी के खेत तीन महीने की मेहनत के उपरान्त आय देने लगे थे। उसकी आय में से वह आधा पूँजी की वृद्धि के लिये रखकर आधा वह अपने पर तथा अपने सुकृतों पर व्यय कर रहा था। अब आठ-दस मास के परिश्रम करने पर उसकी खेतों में से प्रभावी आय होने लगी थी।

इस मद में से ही सुखिया ने सरस्वती की सहायता की थी। एक सौ रुपये के

लगभग वह व्यय कर आयी थी। वहाँ से वह सुमित्रा की समस्या मन में विचारते हुए अपने घर पहुंची थी।

उसी सायंकाल लाला धनपतराय ने पत्नी से पूछा, 'बालकृष्ण के घर क्या देख आयी हो?'

'वहाँ कुछ विशेष देखने योग्य था ही नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि बालकृष्ण ने अपने पूर्ण जीवन में कभी कुछ जमा किया ही नहीं। उसकी पत्नी सरस्वती बता रही थी कि जबसे उसका विवाह हुआ है, वह देख रही है कि उसके पति के पास जब भी वेतन का अथवा कहीं अन्य से धन आता था तो वह तब तक बेचैन रहता था जब तक सब-का-सब व्यय नहीं हो जाता था। यह ठीक है कि वह परिश्रमी है, बुद्धिशील और कार्यकुशल भी है। परन्तु ये गुण तो अवस्था के साथ क्षीण होते जाते हैं। पिछले वर्ष जब उसको सेवाओं से मुक्त किया गया तो उनके पास कठिनाई से लुका-छुपाकर रखा हुआ अथवा आभूषणों के रूप में प्रत्यक्ष रखा हुआ दो सहस्त्र के लगभग था। पिछले ग्यारह महीने से वह उसमें से ही निर्वाह कर रही है। दो मास पूर्व उसके पास दो सौ रुपया रह गया था। उस समय उसने बाज़ार में सबसे सस्ता अन्न मक्की, एक सौ रुपये मूल्य की और अरहर की दाल खरीद कर रख ली थी। तब से घर में यही खायी जाती है। वहाँ न चीनी थी और न घी-दूध था। वह मक्की और दाल भी अब समाप्त हो रही थी। दो-तीन दिन-भर के खाने के लिये और थी।'

'और तुम उनके लिये खाने-पीने को क्या दे आयी हो।'

'सरस्वती और सुमित्रा के लिये वस्त्र और एक महीने-भर के खाने के लिये गेहूँ का पिसान, चने और उड़द की दाल, कुछ आलू, प्याज, घी, नमक, मिर्च, चीनी और दूध आदि के लिये रुपये दे आयी हूँ।'

इस पर सुखिया ने बालकृष्ण की लड़की की बात बता दी। उसका कहना था, 'इस घटना को भी मैं निर्धनता की प्रतिक्रिया ही समझती हूँ।'

धनपतराय ने बताया, 'बालकृष्ण मेरे पास सायंकाल आया था। मैं समझता हूँ कि उसे दो सौ रुपया मासिक वेतन का काम मिल जायेगा। अपने स्टोर से वह पाँच सौ रुपया मासिक वेतन लेता था। इस कारण वह कह रहा था कि उसकी मिल से मिलने वाले वेतन से तो निर्धनता बनी ही रहेगी।

'मैंने उसे सम्मति दी है कि उसे अभी यह स्वीकार कर लेना चाहिये। मैंने उसे बताया है कि मेरी नकद बचत पचास रुपये प्रति वर्ष थी और अधिग्रहण के उपरान्त वह छः हजार प्रति वर्ष की रह गयी है। अतः हमने इस पर भी, इसे सहर्ष स्वीकार कर

लिया है। यह काल की गति है।

'मैंने उसे यह भी कहा है कि मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं कि काल की गति को ठीक मार्ग पर लाने का यत्न नहीं करना चाहिए। कठिन होने पर भी काल की गति पर प्रभाव डाला जा सकता है और इसके लिये यत्न करना चाहिये। परन्तु जो कुछ मिले, उसे अस्वीकार करने से तो काल की गति का विरोध होगा। यह शुभ का सूचक नहीं।

'मैं समझता हूँ कि वह समझ गया है और कल काम पर जायेगा।'

बालकृष्ण के घर पर भारी विवाद हो रहा था। पति-पत्नी सुमित्रा के विषय में सहमत नहीं थे। बालकृष्ण महेश की माताजी के प्रस्ताव को स्वीकार करना नहीं चाहता था। सरस्वती का विचार था कि विवाह हो जाना चाहिये। दोनों अपने-अपने मत की पुष्टि में युक्तियाँ दे रहे थे। सरस्वती की यह युक्ति थी कि पथच्युत करने वाला ही यदि उसका पति होगा तो सुमित्रा का मान बना रहेगा। अन्यथा बाद में कभी बात खुली तो भारी मान-हानि होगी।

उधर सुमित्रा आशा कर रही थी कि रात उसके माता-पिता में इस विषय पर बातचीत होगी। अतः वह अपने कमरे में सोने का बहाना कर चली गयी थी, परन्तु कुछ मिनट उपरान्त वह खाट से उठ, दबे पाँव माता-पिता के सोने के कमरे के बाहर द्वार से कान लगा दोनों में हो रहे वार्तालाप को सुनने लगी थी। वार्तालाप सुनते हुए उसे एक बात का विश्वास हो रहा था कि अपनी आर्थिक स्थिति का विचार छोड़, उसके माता-पिता उसके भावी-जीवन के सुखी एवं प्रतिष्ठित होने की बात कर रहे थे। माता-पिता के इस दृष्टिकोण ने उसके मन पर भारी प्रभाव डाला था।

वह अब तक अपने विषय में भी विचार कर रही थी कि उसने महेश से सम्बन्ध बनाकर भूल की है। उसे प्रलोभनों का प्रतिरोध करना चाहिये था। माता-पिता के वार्तालाप में उसे महेश के जीवन चला सकने में अयोग्यता की बात को भी वह समझ गयी थी। पिछले एक वर्ष के अकिंचनता के जीवन के कष्ट का उसे ज्ञान था और ऐसे ही पूर्ण जीवन की सम्भावना से वह काँप उठी।

माता-पिता के वार्तालाप समाप्त होने से पूर्व ही वह समझ गयी थी कि उसे ही इस विवाह के विरुद्ध कहना चाहिये। यह उसी के लाभ की बात है।

इस सब स्थिति पर सुखिया के आने और खाने-पीने तथा नये वस्त्रों के लिये कपड़ा देने ने प्रभाव उत्पन्न किया था। सुखिया ने पुनः आने का वचन दिया था।

माता-पिता के वार्तालाप के समाप्त होने से पूर्व ही वह अपने कमरे में जाकर सो

गई। अगले दिन वह स्कूल जाने के समय से पूर्व ही स्नानादि से निवृत्त हो स्कूल जाने के लिये तैयार हो गई। मां अभी खाना तैयार कर रही थी कि सुमित्रा ने आते ही कहा, 'माँ। देर हो रही है।'

'कहाँ जाना है? किस काम में देर हो रही है?'

'मैं स्कूल जा रही हूँ।'

'नहीं। वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे पिता ने उस स्त्री के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है।'

'क्या स्वीकार कर लिया है।'

'यही कि तुम्हारा विवाह तुम्हारे निर्वाचित लड़के से कर दिया जाये।'

'पर मैं वहाँ विवाह नहीं करूंगी।'

'क्यों?'

'मैं समझ गयी हूँ कि वह अच्छा व्यक्ति नहीं।'

'पर वह लड़का और उसके घर वाले भी तुम्हारी भारी बदनामी करेंगे।'

'माँ तो ऐसा करने वाली प्रतीत हुई नहीं।'

'बाहर की शक्ल-सूरत से कुछ नहीं कहा जा सकता।'

'पर मैं पढ़ना चाहती हूँ।'

'गाँव में एक ही स्कूल है और तुम फिर उसे देख, उस पर ऐसे लपकोगी जैसे पतंगा दीप-शिखा पर लपकता है और जल-भुन कर स्वाहा हो जाओगी।'

'नहीं, माँ! अब नहीं होगा।'

'देखो, तुम्हारे पिता भी आज काम पर जाने के लिये तैयार हो रहे हैं। उन्हें आने दो। उनसे पूछकर ही तुम्हें जाना चाहिए।'

लडकी को स्कूल में सात बजे उपस्थित होना था और शुगर मिल के खुलने का समय आठ बजे था। इस कारण वह सुमित्रा से कुछ पीछे तैयार हुआ था। सुमित्रा की माँ ने भोजन तैयार कर दिया। पिता और पुत्री दोनों ने दाल-रोटी खायी। पिता के लिये प्याज़, आलू का साग और रोटियाँ एक डिब्बे में बन्द कर मध्याह्न के भोजन के लिये दे दी गयी थीं।

सरस्वती ने जब सुमित्रा की बात बतायी तो बालकृष्ण ने कह दिया, 'मैं इससे प्रसन्न हूँ, परन्तु स्कूल जाने की बात पर विचार करना है। महेश भी स्कूल में पढ़ने आयेगा और दोनों में आकर्षण बना रहने की सम्भावना अधिक है। इस कारण इसी

स्कूल में पढ़ने जाने के विषय में सायंकाल तक विचार करके बताऊँगा। आज यह स्कूल नहीं जायेगी। रात विचार कर लेंगे। किसी से सम्मति भी करनी होगी।'

'किससे सम्मति करेंगे?'

'कल सीताराम भी इसके भविष्य के विषय में चिन्ता कर रहा था। उससे भी बात करनी होगी।'

सुमित्रा स्कूल नहीं गयी। मध्याह्न के समय महेश की माँ फिर आयी और सुमित्रा से पृथक् बैठ बातचीत होने लगी। सरस्वती ने कहा, 'लड़की अभी अल्पायु है और इसका विवाह कर देना तो कानून से भी वर्जित है। इस कारण सुमित्रा के पिता अभी निर्णय नहीं कर सके। आज वह अपने कुछ मित्रों से विचार करेंगे। दो-तीन दिन में स्वयं आपके घर आऊँगी और इस विषय में निणर्यात्मक बात कर जाऊँगी।'

इस विषय में महेश के पिता का भी वही विचार था जो बालकृष्ण का सुमित्रा के विषय में था। वह एक बात जानता था कि बेकार बैठने से तो स्वभाव बिगड़ता है और जुराबों का काम वह जीवन का कार्य नहीं समझता था। उसका सुझाव था कि महेश की पढ़ाई हो चुकी। अब इसके लिये काम ढूंढना चाहिये।

इस कारण जब महेश की माँ सरस्वती के घर गयी तो वह महेश के लिये काम ढूँढने चल पड़ा। वह जानता था कि किसी सरकारी काम में तो महेश लग नहीं सकता। उसने स्कूल की पढ़ाई भी अभी समाप्त नहीं की। अतः काम तो किसी दुकान पर ही मिल सकेगा। गाँव में ही किसी दुकान पर उसे काम मिलना चाहिये।

सोहनसिंह बाजार में से जा रहा था कि उसे एक नयी दुकान में वीरेन्द्र और काहनचन्द खड़े दिखाई दिये। दोनों दुकान में खड़े मशीनरी और अन्य सामान ठीक ढँग से रखवा रहे थे। वीरेन्द्र सोहनसिंह को देख पहचान गया। वह उसके मतदाताओं का एक नेता था।

'आइये, सोहनसिंह जी! किधर घूम रहे हैं?' वीरेन्द्र ने पूछ लिया।

'मैं आज एक मतलब से बाज़ार में घूम रहा था कि आपको इस दुकान पर खड़ा देख समझने लगा हूँ कि आपसे भी तो वह मतलब सिद्ध हो सकता है। इस कारण दुकान में चला आया हूँ।'

'हाँ, बताओ किस मतलब से घूम रहे हो?'

'अपने लड़के के लिये नौकरी ढूंढ रहा हूँ।'

'कितना पढ़ा है?'

'हायर सैकेण्डरी की अन्तिम श्रेणी में पढ़ता है।'

'तो पास हो लेने दो। फिर कहीं नौकरी लगवा दूँगा।'

'वीरेन्द्र जी! मैं उसे स्कूल में भेजना नहीं चाहता। वह वहाँ जाने से आवारा होता जा रहा है।'

'यह तो बहुत बुरी बात है।'

'मैं उसे किसी दुकान पर काम सीखने के लिये लगाना चाहता हूँ।'

'पर वह क्या कर सकेगा?'

'चपरासी का काम तो कर ही लेगा।'

'लो काहन! तुम चपरासी की खोज में थे। एक चपरासी तो मिल रहा है।'

काहन सोहनसिंह को सिर से पाँव तक देखने लगा। उसके देखने के प्रयोजन को समझ वीरेन्द्र ने कह दिया, 'यह नहीं काहन! इसका लड़का काम करेगा।'

'तो लड़के को ले आओ। पहले देख लूँ फिर बताऊँगा।'

सोहन ने कहा, 'अभी लाता हूँ।'

सोहन जाने लगा तो काहन ने कह दिया, 'उस सामने वाली दुकान पर ले आना।'

सोहनसिंह गया और पन्द्रह मिनट में महेश को ले वहाँ आ गया। काहन ने लड़के को देखा और उसका कद तथा शारीरिक गठन को देख समझ गया कि वह काम कर सकेगा।

काहन ने पूछा, 'नौकरी करोगे?'

'क्या करना होगा?'

'जो मैं बताऊँगा।'

'अर्थात् आप दुकान की सफाई करने को कहेंगे तो वह भी करनी होगी?'

'हाँ।'

'ठीक है। मैं कर दूँगा।'

'और देखो, छः महीने तक काम सीखने के लिये पचहत्तर रुपया महीना वेतन मिलेगा। दुकान आठ बजे खुलती है और सायं सात बजे बन्द होती है। बीच में तीन घण्टे खाने और आराम के लिये हैं।'

'कब से नौकरी देंगे?'

'अभी से।'

महेश मुख देखता रह गया। उत्तर सोहनसिंह ने दिया, 'लो महेश! तुम्हारे विवाह का प्रबन्ध आरम्भ हो गया है। तुम अब यहीं रहो। छुट्टी होने पर घर आना।'

सोहनसिंह गया तो काहन महेश को लेकर नयी दुकान पर पहुँच गया। वहाँ उसे बता दिया कि वह अभी चौकीदार है। उसे देखना है कि कोई बाहर का व्यक्ति आकर कुछ उठाकर न चल दे।

::5::

सोहन ने घर जाकर अपनी पत्नी को बताया कि महेश की नौकरी लग गयी है। इससे माँ को भी बहुत प्रसन्नता हुई। उसने बताया, लड़की का पिता लड़की की आयु विवाह योग्य नहीं मानता। वह अपने कुछ मित्रों से सम्मति करना चाहता है।'

'मैं विवाह के लिये इतना चिन्तित नहीं। मैं तो लड़के के आवारा हो जाने की चिन्ता कर रहा था। यदि लड़की के माता-पिता चाहें तो विवाह हो सकता है, परन्तु गौना अभी दो वर्ष पीछे दिया जा सकता है।'

'नहीं जी। मैं यह नहीं चाहती।'

'तो क्या चाहती हो?'

'विवाह हो जाये। लड़की हमारे घर में आकर रहने लगे। शेष देख-रेख मैं कर लूँगी। मैं अपनी होने वाली पतोहू को उस निर्धनता के वातावरण में रहने देना नहीं चाहती। वहाँ लड़की आवारा हो जायेगी।'

सोहनसिंह अपनी पत्नी की भावना को समझता था। इस पर उसने कहा, 'मैं लड़की के पिता से मिल सकता हूँ क्या?'

'मिल लीजिए।'

सोहनसिंह सायंकाल बालकृष्ण के मकान पर जाने का विचार बना बैठा।

बालकृष्ण शुगर मिल से लौटते समय धनपतराय के मकान पर जा पहुंचा। वहाँ धनपतराय से उसने मिल-मैनेजर के व्यवहार और अपने काम के विषय में वर्णन कर दिया।

धनपतराय का कहना था, 'बालकृष्ण! तुम्हारी आय में कमी तो सरकार के

एक अनाधिकार कार्य के कारण हुई है। इसमें दोष तुम्हारा नहीं। तुममें यदि दोष था तो यह था कि तुम और तुम्हारे जैसे भारत में कोटि-कोटि मानव वस्तुस्थिति को न समझते हुए बातें करते हैं।

'सरकार ने हमारी एक दुकान की बीस दुकानें बना दीं। हमारी दुकान पर तीस व्यक्ति काम करते थे। उसके स्थान पर साठ काम करने वाले हो गये, परन्तु दुकान एक वर्ष तक भी चल नहीं सकी। इसमें मुख्य कारण यह था कि दुकान के मालिक वे बन गये, जो मालिक नहीं थे।

'मैं अकेला सरकार को लगभग पच्चीस हजार आयकर देता था। इस वर्ष सरकार को काहन कुछ आयकर देगा। वह राशि सात-आठ सौ रुपये होगी। कुछ चार-पाँच सौ लक्ष्मीदेवी देगी और दूसरे लोग तो एक कौड़ी भी नहीं दे सकेंगे। मेरा अनुमान है कि कुछ तो दुकान की पूँजी में से भी खा गये होंगे।'

'तो शेष धन कहाँ गया है?'

'आय बँट गयी है और बहुत से ऐसे हैं जो आयकर दे ही नहीं सकते। कुछ तो पूँजी में से रुपया निकाल चुके हैं।'

'मैं तो यह समझ रहा था कि जिस किसी ने भी दुकान ली है, वह मालामाल हो रहा है।'

'मेरे कथन का प्रमाण तुम्हें अगले मास मिल जायेगा। सरकार को भी इस बात का ज्ञान है कि इस व्यवसाय में घाटा हो रहा है, परन्तु अपने पूर्वाग्रहों से ग्रसित वह इसका इलाज ठीक नहीं कर रहे। यह सुनने में आया है कि सरकार फिर इन सब दुकानों को एक कर, एक ही प्रबन्ध के अधीन कर रही है। यह रोग का गलत निदान और चिकित्सा है। दुकान इस कारण घाटे पर नहीं जा रही कि एक से बीस कर दी गयी हैं। इससे तो सरकार के आयकरों में कमी हुई है, परन्तु सरकार को इस बात की चिन्ता नहीं। सरकार का विचार था कि इतने बड़े कारोबार से एक व्यक्ति लाभ उठा रहा है और एक की बीस दुकानें करने से लाभ बीस और कदाचित् अधिक व्यक्तियों में बँट जायेगा। यही बात सरकार ने मेरे खेतों से की थी। सात सौ एकड़ भूमि चालीस व्यक्तियों में बाँट दी है। मेरे खेतों पर काम करने वाले एक सौ के लगभग व्यक्तियों को निकाल उसके स्थान पर चालीस मालिक बना दिये। उन चालीस व्यक्तियों ने डेढ़ सौ के लगभग कर्मचारी नियुक्त किये थे। परन्तु पैदावार कम हई है और चालीस-के-चालीस मालिकों की आय कठिनाई से उनका खर्चा पूरा कर सकी है। कुछ ऐसे हैं जो अपने कर्मचारियों को पूरा वेतन भी नहीं दे सके।'

'इसमें भी सरकार ने कारण यह समझा है कि बहुत से मालिक हो जाने से पैदावार कम हुई है। यह भी मिथ्या धारणा है। कम पैदावार और अधिक खर्च का कारण यह नहीं। उसमें कारण यह है कि भूमि पट्टे पर है और प्रत्येक कृषक को भय है कि आगामी वर्ष पट्टा उसको नहीं मिलेगा। प्रत्येक कर्मचारी को यह विश्वास हो गया है कि वह सरकारी नौकर है और उसे पट्टेदार निकाल नहीं सकता। वह समझता है कि यह नया प्रबन्ध उसके लिये है। परिणाम यह हुआ है कि किसी ने भी मेहनत नहीं की तथा बुद्धि से भविष्य का विचार नहीं किया।'

'इस वर्ष नहीं तो अगले वर्ष अथवा एक-दो वर्ष और उपरान्त जब ये खेत बंजर होने लगेंगे अथवा आय का साधन होने के स्थान बोझा बन जायेगा तब सरकार इस प्रबन्ध को बदलेगी। उस बदलने में भी मिथ्या पथगामी व्यक्ति की भाँति यह पुनः भूल करेगी। कदाचित दुकान की भाँति वह पुनः भूमि को एक फार्म में परिवर्तित कर देगी। उसमें भी लाभ-हानि की सम्भावना नहीं है।'

'बालकृष्ण! उस समय तुम लाभ में रहोगे। मैं यत्न कर रहा हूँ कि तुम्हें काम भी तुम्हारी योग्यता अनुसार मिल सके और वेतन में भी वृद्धि हो।'

'तो यह समाजवाद मिथ्या है? इससे जनता का कल्याण नहीं होगा?'

'जनता के कल्याण का न तो उद्देश्य है और न ही प्रायोजन। समाजवाद के शब्दार्थ भी समाज-कल्याण नहीं। न तो शब्दार्थ यह है और न ही इस योजना का उद्देश्य यह है।'

'तो क्या अर्थ है इस सब नारेबाजी का?'

'नारेबाजी तो बुद्धि-विहीनों को कुपथगामी करने के लिये है, पथ-भ्रष्ट लोगों के ज्ञानवर्धन के लिये नहीं। यह आँखों पर बँधी पट्टी खोलने के लिये भी नहीं, वरन् पट्टी बँधे रहते हाथ से पकड़, उसे उस राह पर ले जाने के लिये है जिस पर ले जाने वाला ले जाना चाहता है। ले जाने वाला स्वार्थ एवं पूर्वाग्रहों से ग्रसित स्वयं मिथ्या-पथ का राही है और वह आँखों पर अज्ञान की पट्टी बँधी जनता को भी उधर ही ले जा रहा है जिधर वह स्वयं जा रहा है।'

'परन्तु लालाजी! एक बात समझ में नहीं आती कि हमारी संसद के क्या सब-के-सब सदस्य स्वार्थी और पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं?'

'संसद सदस्य तो वह इसलिये हैं क्योंकि आँखों पर बँधी पट्टी जनता ने उनको मत दिया है। साथ ही वे पूर्वाग्रह-युक्त भी हैं। पूर्वाग्रह से मेरा अभिप्राय है कि पूर्व निर्मित धारणाओं से प्रेरित और बुद्धि के बिना कार्य करने वाले। स्वार्थ इनका यह है

कि यह उस सब के मालिक बने हुए हैं जिसके स्वामी होने के वे योग्य नहीं। इनमें से बहुत ऐसे हैं जो स्वयं अर्थ-व्यवस्था के विषय में कुछ नहीं जानते और पूर्ण देश की अर्थ-व्यवस्था को चालना दे रहे हैं। ये इस कार्य के अनाधिकारी हैं।

'सुना है न? यह चर्चा तो संसद में समय-समय पर आती रहती है कि संसद सर्वाधिकार सम्पन्न संस्था है। इतना बड़ा निरंकुश अधिकार प्राप्त कर भला कौन है जो इसे छोड़ना चाहेगा? अधिकांश संसद सदस्य वकील होते हैं। कुछ व्यापारी भी हैं और कुछ समाज के अन्य वर्गों से भी आये हैं। सब पचपन करोड़ व्यक्तियों के परिश्रम-फल पर अधिकार पा कैसे उसे वापस कर सकते हैं?

'इन वकीलों और व्यवसाय में असफल व्यक्तियों को जब देश के धनी-से-धनी व्यक्ति की सम्पत्ति छीन लेने का अधिकार मिल गया है, जब विद्वान-से-विद्वान की पगड़ी उछालने की स्वीकृति प्राप्त हो गयी है, जब घोर-से-घोर अपराधी को पुरस्कृत करने की सामर्थ्य प्राप्त हो गयी है, जब प्रत्येक प्रकार की झूठ और छल-युक्त बात संसद में बैठ कर करने की स्वतन्त्रता मिल गयी है तब भला कौन है जो इस सब असीम उच्छृंखलता करने की उद्दण्डता का प्रयोग नहीं करेगा?

'यह है स्वार्थ। संसद अब स्वयं ही कर्ता है, स्वयं ही भोक्ता है और स्वयं ही भले-बुरे का निर्णायक है। ये लोग इस अधिकार को छोड़ेंगे नहीं।

'समाजवाद में दूसरे दर्जे के मालिक हैं अफसरशाही। यह तो संसद सदस्यों की पीठ-पीछे खड़े उनके सामने रखे प्लेट में से उठा-उठा सब-कुछ खा रहे हैं। संसद सदस्य यह समझते हैं कि उनकी प्लेट में से जनता का पेट भर रहा है। वास्तव में पेट भर-भर कर फूट रहा है 'ब्यूरो क्रेसी' का।'

'परन्तु लालाजी! कुछ तो फल सामान्य जनों को भी मिल रहा है। देखिये, अब तो तहसीलदारों के घर में भी 'टेलीविजन' और 'फ्रिज' लगे हैं। चार-पाँच सौ रुपया वेतन पाने वालों के पास भी मोटरगाड़ी नहीं तो स्कूटर तो हो ही गया है।'

धनपतराय हँस पड़ा। हँसते हुए पूछने लगा, 'गाँव में कितनी मोटर गाडियाँ और स्कूटर हैं?'

'ठीक-ठीक तो नहीं कह सकता। इतना जानता हूँ कि एक बार बाजार में घूम जाओ तो दो-चार फट-फट करते मिल ही जाते हैं और गाँव में चार-पाँच मोटर गाड़ियाँ भी हो ही गयी हैं।'

'इससे सामान्य जनता की बात कहाँ से आ गयी? गाँव की जन-संख्या चार-पाँच गुना बढ़ गयी है। गाँव में पहली मोटरगाड़ी तब आई थी जब शुगर मिल खुली

थी। यह दस वर्ष पूर्व की बात है। अब गाँव में पाँच गाड़ियाँ हैं। इसका अभिप्राय है कि मोटर रखने की सामर्थ्य अथवा आवश्यकता एक से पाँच को प्राप्त हो गयी है, परन्तु दस वर्ष पूर्व गाँव में एक भी बेकार नहीं था। अब तो बेकारों की संख्या पहले से बीस गुना हो गयी है।

'पहले निर्धन किसी भी किसान के घर में चला जाता था तो उसे दूध नहीं तो छाछ मिल ही जाती थी। अब माँग कर देख लो, एक खाली जल का गिलास भी कोई नहीं देगा। सुना है कि तुम्हारे घर की अवस्था भी अच्छी नहीं और तुम्हारी पत्नी समझ रही है कि भूखों मरने की नौबत आ सकती है।

'मैं जानता हूँ कि गाँव में तुम्हारे-जैसों की संख्या बढ़ रही है। देखो, तुम रामधन को जानते हो। हमारे फार्म पर सिंचाई इत्यादि में सहायता के लिये रखा हुआ था। उसके परिवार-भर के खाने-पीने को अनाज के साथ उसे फार्म से पचास रुपये मासिक वेतन मिलता था। पिछले वर्ष वह भी पाँच एकड़ भूमि पा गया था। मुझे विदित है कि उसने भूमि लेने के लिए परिरक्षक को पाँच सौ रुपया रिश्वत दिये जो कि उधार लिया था। पिछली फसल अच्छी हुई थी। उसने खेत पर मेहनत की थी और पत्नी के आभूषण बेचकर खाद का भी प्रबन्ध किया था। परन्तु अनाज सरकारी खरीद-विभाग से जो कुछ मिला है, वह रिश्वत में ही चला गया है। रुपये का ब्याज और अन्य व्यय देकर वर्ष-भर के निर्वाह के लिये भी पर्याप्त नहीं बचा। परिणामस्वरूप रामधन तो नगर में काम ढूंढने चला गया है और उसकी पत्नी तथा बच्चे अब खेत पर काम कर रहे हैं। रामधन मेहनती व्यक्ति था जो दस वर्ष से खेत पर काम करने से कृषक के काम को भली-भाँति जानता था उसकी पत्नी बेचारी अपने बड़े लडके के साथ उस काम को करता देखी जाती है जिसके न तो वह योग्य है और न ही उसमें सामर्थ्य है। मुझे भय है कि यह परिवार भी शीघ्र ही आपदग्रस्त होने वाला है।'

इस पूर्ण भयंकर चित्र को देख बालकृष्ण भयभीत और एक सीमा तक आश्वस्त था। वह मिल में काम करते हुए दिन-भर असन्तुष्ट रहा। इस वत्तान्त को सुन, वह मन में संकल्प कर रहा था कि अब वह दिल लगाकर काम करेगा और घर के अभाव को दूर करने के लिये अपनी उन्नति के लिये खून-पसीना एक कर देगा।

धनपतराय ने बात बदल दी। उसने कहा, 'आज मध्याह्न के समय काहन की माँ तुम्हारे घर पर गयी थी और वहाँ तुम्हारी लड़की की समस्या को करवट लेते देख आयी है।'

'वह बता रही थी कि तुम्हारी लड़की उस लड़के से विवाह करना नहीं चाहती जिसने उसको पथच्युत किया था और लड़के की मां विवाह के लिये आग्रह कर रही है।'

'जी। लड़की के मन की बात तो मैं घर से चलने के पहले सुन आया था। मैं माँ और बेटी को यह कह आया था कि लड़की का यह विचार शुभ है। परन्तु वह स्कूल पढ़ने जाये अथवा न जाये, इस विषय में किसी से सम्मति कर ही बता सकूंगा।'

'किससे बात करना चाहते थे?'

'एक तो आपसे ही और दूसरे लक्ष्मीजी की दुकान के मैनेजर सीताराम से। उसने लड़के को ढूंढने और उसकी मरम्मत करने में मेरी सहायता की थी।'

धनपत मुस्कराता हुआ सुनता रहा। बालकृष्ण कह रहा था, 'मैं समझता हूँ कि लड़की को लड़के से भेंट लेने की चटक पड़ गयी है और वह स्कूल में आवारा हो जायेगी।'

'और उसके विवाह में किसलिये आपत्ति करते हो?'

'वह अभी अल्पायु है।'

'परन्तु काहन की माँ का विवाह तो पन्द्रह वर्ष की आयु में हो गया था और वह पिछले वर्ष जब वह सत्तावन वर्ष की आयु की थी तब भी लाठी ले, अपने पुत्र सन्तराम को घर से निकालने में सफल हो गयी थी।'

बालकृष्ण हँस पड़ा और पूछने लगा, 'तो आपकी सम्मति में विवाह किया जा सकता है?'

'विवाह में आयु बाधा नहीं। वह शास्त्र में लिखी विवाह योग्य वयस की हो चुकी है। बाधा लड़के के घर-गृहस्थी चलाने में योग्यता के विषय में है। लड़का इस योग्य है कि कभी पिता के घर से पृथक उसे अपना घर बनाना पड़े तो उसमें निर्वाह योग्य पैदा करने की सामर्थ्य हो?'

'वही तो इस समय प्रतीत नहीं होती।'

'परन्तु इसका इलाज है कि उसको किसी काम पर लगा दिया जाये और जब वह इस योग्य हो जाये कि अपना और अपनी पत्नी का पेट भर सके तो उसका विवाह कर दिया जाये।'

'लालाजी! यही करने का विचार है।'

'मैं तो कुछ उलटा समझा था। काहन की माँ ने जो कुछ कहा हैं उसका अर्थ यह है कि लड़की उस लड़के से घृणा करने लगी है। इस कारण विवाह नहीं चाहती।'

'यह हो भी सकता है। उसे इस पूर्ण दुर्घटना में लड़के का दोष समझ आया होगा।'

'परन्तु दोष तो उसका अपना भी है। दोनों समान रूप में दोषी हैं।'

'तब आप क्या सम्मति देते हैं?'

'लड़की को तो घर के काम-काज में सुघड़ाई प्राप्त करने का अवसर दो और लड़के को कहीं काम-धन्धा ढूंढकर स्वावलम्बी होने का अवसर दो। बाद में विवाह हो जाना चाहिये।'

'स्कूल में पढ़ने के विषय में आप क्या कहते हैं?'

'स्कूल की शिक्षा पर्याप्त हो चुकी है। अधिक तो उन दोनों को अशिक्षित बनाने में योगदान देने लगी थी।'

'लड़की के विषय में तो उसकी माँ से कहूँगा, परन्तु लड़का तो हमारे अधीन नहीं है।'

'लड़की के विषय में तुम उसकी माँ को सुखिया के पास भेज देना। वह कुछ विचार कर बतायेगी और लड़के के पिता से मिल उसे मेरे पास भेज देना। लड़के के लिये किसी प्रकार के काम का प्रबन्ध मैं विचारकर बताऊँगा।'

::6::

सोहनसिंह सायंकाल बालकृष्ण के घर पर पहुंचा तो वह अभी मिल से लौटा नहीं था। सरस्वती ने मकान के नीचे आ पूछा कि वह कौन है और उसको क्या काम है? सोहनसिंह ने बता दिया, 'मैं महेश का पिता हूँ और बालकृष्णजी से मिलना चाहता हूँ।'

मकान के नीचे एक कमरा था जो बैठक के रूप में प्रयुक्त होता था। यह तब से था जब बालकृष्ण लाला धनपतराय के व्यवसाय का एकाउन्टेण्ट था। तब उसके घर भी मित्र मिलने आया करते थे। परन्तु जबसे काम छूटा था, बालकृष्ण के पास न तो उन लोगों से गप्पें हाँकने का समय था और न ही उनके आने पर उनका आतिथ्य करने की सामर्थ्य रही थी। धीरे-धीरे मित्रों का आना बन्द हुआ तो बैठक खुलनी बन्द हुई और फिर उसका झाड़ना-फूँकना भी समाप्त हुआ।

सरस्वती ने बैठक खोल दी। वहाँ अब चटाइयाँ बिछी थीं, परन्तु उन पर मिट्टी की तह जम रही थी। सरस्वती ऊपर से एक बिस्तर की चादर ले आयी थी और धूल-

धूसरित चटाई पर बिछाने लगी तो सोहनसिंह ने कह दिया, 'बहनजी! इसे रहने दीजिये। मैं चटाई पर बैठने का अभ्यास रखता हूँ और बैठ जाऊँगा।'

सोहनसिंह ने चादर बिछाने नहीं दी और वैसे ही चटाई पर बैठ गया। सरस्वती चादर वहीं रख पुनः ऊपर की मंजिल पर गयी और एक मोमबत्ती जला कर ले आयी। उसे दीवार में एक आलने में लगा पूछने लगी, 'चाय पियेंगे या..।' वह पूछना तो चाहती थी कॉफी। एक समय तो घर में तीन-चार प्रकार के पेय रहते थे, परन्तु आज वह पूछती-पूछती रुक गयी। सोहनसिंह ने कह दिया, 'मैं चाय तो घर से अभी-अभी पीकर आ रहा हूँ।'

सरस्वती ने कहा, 'बहनजी भी मध्याह्नोत्तर आयी थीं।' उसका अभिप्राय महेश की माँ से था, 'मैंने उनको बताया था कि सुमित्रा के पिता अपने कुछ मित्रों से विचार करने के उपरान्त ही विवाह के विषय में अपना मत प्रकट कर सकेंगे।'

'इसी कारण,' सोहन सिंह ने कहा, 'मैं स्वयं इस समय आ गया हूँ। हम कारोबारी आदमी हैं। पूर्ण परिवार मेहनत-मजदूरी करता है। इस कारण हमारे पास आने-जाने के लिये कुछ अधिक समय नहीं, यदि तो सम्बन्ध बनना है तो एक-दो दिन में प्रबन्ध हो जाना चाहिये।

'मैं समझता हूँ कि बहुत देर करना न तो लड़की-पक्ष वालों के लिये ठीक है और न ही हमारे लिये। महेश की माँ तो लड़की को पसन्द कर गयी है।'

'तब ठीक है। आप यहाँ बैठने का कष्ट करिये। सुमित्रा के पिता आने ही वाले हैं।'

बालकृष्ण रात पौने-आठ बजे घर पहुंचा और घर की बैठक में मोमबत्ती जली देख विस्मय करता हुआ वहाँ पहुँच गया। बैठक में चटाई पर सोहन सिंह को पाल्थी मारे बैठा देख वह चकित हो मुख देखता रह गया। सोहनसिंह ने बालकृष्ण को देखा तो कह दिया, 'आप आ गये। बहुत अच्छा हुआ है। मैं आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

'कितनी देर हुई है आपको आये हुए?'

'डेढ़ घण्टे से अधिक हो गया है। मुझे महेश की माँ से यह तो ज्ञात हो गया है कि आपको शुगर मिल में नौकरी मिल गयी है। यह विचार कर कि मिल पाँच बजे बन्द होती है और आप छः बजे तक घर पहुँच आराम कर चुके होंगे, मैं साढ़े-छः बजे से कुछ पहले यहाँ पहुँच गया था।'

बैठक के पहले द्वार से आँगन में जा बालकृष्ण ने आवाज़ दे दी, 'सुमित्रा!

हमारे लिये चाय नीचे ही ले आओ।'

सोहन सिंह ने कहा भी, 'चाय की आवश्यकता नहीं। मैं आपसे विवाह के विषय में बात करने आया हूँ। जब से मैंने लड़की के साथ महेश के व्यवहार की बात सुनी है, तब से मैं समझ रहा हूँ कि हमारे लड़के ने भारी अन्याय किया है और अन्याय का प्रतिकार ही हम देना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त महेश की माताजी तो लड़की से बातचीत कर उसको पसन्द कर गयी हैं।'

'देखिये सोहनसिंहजी! लड़की का विवाह तो करना ही है। आपमें कुछ दोष तो प्रतीत नहीं हो रहा। केवल यह विचार था कि लड़की की आयु अभी कम है, परन्तु मेरे एक मेहरबान हैं। उनसे मैं सम्मति करने गया था। उनका कहना था कि यदि लडकी को आप ऐसे ही लाल चादर में लपेट कर ले जाने के लिये तैयार हो तो विवाह कर देना चाहिये।'

'बालकृष्णजी! लड़की क्या और पतोहु क्या? मैं दोनों में अन्तर नहीं मानता। लड़कियाँ घर में जब पैदा होती हैं तो अवस्त्र ही पैदा होती हैं और पीछे जो कुछ भी उनको प्राप्त होता है वह उनके भाग्य का ही होता है। इस कारण जो उसके भाग्य में होगा, वह उसे पहनने और खाने-पीने को मिल जायेगा।'

बालकृष्ण ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, 'और लड़के क्या वस्त्रादिक पहन कर पैदा होते हैं?'

सोहनसिंह खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा, 'पैदा तो वह भी उसी प्रकार से अवस्त्र होते हैं जैसे लड़कियाँ होती हैं, परन्तु लड़के तो अपने साथ परिश्रम करने की क्षमता लिये हुए जन्म लेते हैं। वे शीघ्र ही परिवार में उपार्जन करने वाला अंग बनने वाले होते हैं और कन्या भवानी तो जो कुछ भी यह प्राप्त करती हैं, अपने भाग्य के भरोसे ही करती हैं।'

'माता-पिता के घर से अथवा ससुराल में जो कुछ भी उनको मिलता है, वह भगवान ने उनके पूर्वजन्म में ही निश्चय कर रखा होता है।'

बालकृष्ण को वीरेन्द्र की पत्नी लक्ष्मी के व्यवसाय की बात स्मरण आ गयी। उसने कहा, 'परन्तु अब तो लड़कियों में भी ऐसी उत्पन्न होने लगी हैं जो अपने परिश्रम का पैदा किया भोग करती हैं।'

'देखिये, मैं अभी लालाजी धनपतरायजी के श्रृंगार प्रसाधन की दुकान से आ रहा हूँ। वह दुकान लगभग एक वर्ष से लालाजी की पोती चला रही है।'

'हाँ। सुना तो मैंने भी है, परन्तु साथ ही यह भी सुना है कि उस दुकान के पीछे

लालाजी का वरद् हाथ है। इससे वह चल रही है। उनकी पोती तो केवल दिखावे के लिये वहाँ है।'

'परन्तु लालाजी को वहाँ दुकान पर जाते कभी देखा नहीं।'

'उनका एक योग्य कर्मचारी सीताराम जो उस लड़की की सहायता कर रहा है।'

सोहनसिंह ने बात विषय पर लाते हुए कहा, 'सुमित्रा को पहनाने के लिये वस्त्र तो हम अपने घर से लायेंगे। यही तो हम हिन्दुओं में रीति है कि लड़की माँ के घर से ससुराल के कपड़े पहन विदा होती है। अर्थात् जैसे माँ के घर में वह अवस्त्र आयी थी वैसे ही वह ससुराल को विदा कर दी जाती है।'

'ससुराल वाले अपने घर की मान-प्रतिष्ठा के अनुसार ही उसे आभूषण, वस्त्र पहनाकर ले जाते हैं।'

इस समय सरस्वती एक थाल में बनी-बनायी चाय दो प्यालों में डाल कर ले आयी। साथ ही उसने आज घर पर गेहूँ के आटे को भून कर मिठाई बनायी थी। कई महीनों के उपरान्त घर में घी आया था और घर पर ही मिठाई बनायी गयी थी।

सोहनसिंह ने एक प्याला उठा लिया और मुख लगाने से पहले कहा, 'देखिये, बहनजी! मैं यह चाय तब ही ले सकता हूँ जब लड़की को भी देने का वचन दें।'

सरस्वती पति का मुख देखने लगी। वह यह कहना चाहती थी कि लड़की पढ़ने का हठ कर रही है, परन्तु उसके कुछ कहने से पूर्व ही बालकृष्ण ने कह दिया, 'आज बृहस्पतिवार है। यदि कहो तो रविवार को विवाह हो जाये।'

सरस्वती के मुख से निकल गया, 'परन्तु।' वह आगे कुछ कह नहीं सकी। वह विवाह की तैयारी एवं देने के लिये दित्त-दाज के विषय में कहना चाहती थी कि इतनी जल्दी नहीं। परन्तु सरस्वती की बात के समाप्त होने की प्रतीक्षा किये बिना ही सोहनसिंह ने कह दिया, 'मैं अपने पुरोहित को यहाँ भेज सब प्रबन्ध करवा दूँगा। आपको तो केवल यह करना होगा कि किसी को कहकर घर को झाड़-फूँक रखे। मेरे कुछ सम्बन्धी तथा मित्र आयेंगे।'

'देखिये, बालकृष्ण जी! हम सब लोग यहाँ दो बजे मध्याह्नोत्तर पहुँचेंगे। आते ही विवाह होगा और पाँच बजे हम यहाँ चाय-पानी पीकर लड़की को ले जायेंगे।'

'आपको इसके अतिरिक्त कुछ नहीं करना होगा। सब प्रबन्ध मेरा पुरोहित कर जायेगा।'

चाय समाप्त कर बिना मिठाई को चख उसने कहा, 'बहन जी। एक कागज़ लाइये।'

सरस्वती कागज़ माँगने का आशय न समझते हुए ऊपर गयी और समित्रा की कापी में से एक कागज़ फाड़ कर ले आयी। वह कलम भी ले आई। उसका विचार था कि कुछ लिखने के लिये कागज़ माँगा है।

सोहनसिंह ने मुस्कराते हुए कागज़ लिया और गेहूँ के आटे के बने लडडू उसमें लपेट अपनी जेब में रखते हुए कहा, 'यह मैं लड़की की सगाई के उपलक्ष में लिये जा रहा हूँ।'

बालकृष्ण और सरस्वती परेशानी में मुख देखते रह गये। सोहनसिंह उठा और पति-पत्नी दोनों को नमस्ते कह चल दिया। जब वह चला गया तो सरस्वती ने कहा, 'यह आपने क्या कर दिया है?'

'मैं लाला धनपतराय के पास इसी विषय पर सम्मति करने गया था। उनकी ही यह सम्मति थी कि विवाह हो जाना चाहिये।'

इसने सरस्वती का मुख बन्द कर दिया।

बालकृष्ण के पास तो कुछ था नहीं। उसने उन पचास रुपये में से कुछ रुपये व्यय कर सफेदी मँगवायी और एक सफेदी करने वाले को बुलाकर घर-भर की सफेदी करवा दी। परन्तु जब सुखिया ने सुमित्रा के विवाह की तिथि का निश्चय सुना तो उसने शनिवार को ही अपने घर के पण्डित को भेज विवाह-संस्कार का सब प्रबन्ध करवा दिया। उसने लड़की और लड़के के कपड़े भी खरीद लिये। परन्तु उनके सिलवाने का तो समय नहीं था। सुखिया ने घर से कुछ आभूषण निकाल लड़की को पहना दिये और विवाह रविवार के मध्याह्नोत्तर चार बजे तक सम्पन्न हो गया। तदनन्तर सब बारातियों के लिये खाने-पीने का प्रबन्ध भी लालाजी की ओर से हुआ था। यद्यपि सोहनसिंह ने रविवार प्रातः ही हलवाई सब रसद के साथ भेज दिये थे, परन्तु तब तक लाला धनपतराय के हलवाई वहाँ पहले ही पहँचे हुए थे और उन्होंने सोहनसिंह के आदमियों को लौटा दिया। सोहनसिंह के हलवाई उसके घर में मेहमानों के भोजन का प्रबन्ध करने लगे।

::7::

जब लड़की विदा हो चुकी तो बालकृष्ण के कुछ मित्र और सम्बन्धी रह गये थे जो उसे बधाई देने के लिये ठहरे हए थे। इनमें काहनचन्द भी ठहर गया था। काहन के साथ वीरेन्द्र, सीताराम और लक्ष्मी भी थे।

धनपतराय ने सबको कहा, 'ये बराती तो घर से पेट-भर कर आये प्रतीत होते थे। कुछ खा ही नहीं गये। अधिकांश खाने-पीने का सामान बचा रह गया है। मैं समझता हूँ कि आपकी बालकृष्ण की बधाई तो तब ही फलीभूत होगी जब आप उसके इस सब बने हुए सामान के साथ भी न्याय करते जायेंगे।'

आए हुए प्रायः सब जानते थे कि धनपतराय ने ही यह सब प्रबन्ध किया है। अतः सब किंचित् मात्र निमन्त्रण पर बैठ गये और खानापीना होने लगा।

काहन तो पिता के समीप ही बैठा था। उसने पिता से पूछ लिया, 'आपने बालकृष्ण की लड़की पर कितना व्यय किया है?'

'ठीक-ठीक तो तुम्हारी माँ को पता है। मैं तो यह सब प्रबन्ध देख अनुमान लगा रहा हूँ कि तुम्हारी माँ ने दो सहस्त्र रुपये के लगभग व्यय कर दिया है।'

दो सहस्त्र की बात सुन काहन अवाक् बैठा रह गया। वह जानता था कि उसके पिता सब-कुछ सरकार द्वारा अधिग्रहण किये जाने पर भी खुले हाथ से दान करते रहते हैं। उसके विस्मय का कारण यह था कि यह आता कहाँ से है? उसके मुख से अनायास ही निकल गया, 'माँ के पास इतना कुछ था क्या?'

'अवश्य होगा।' धनपतराय ने मुस्कराते हुए कहा, 'परसों ही तो उसे पता लगा था कि बालकृष्ण की लड़की का विवाह है और उसकी पत्नी अकिंचन के रूप में कुछ ऋण लेने आयी थी।

'आज प्रातः तुम्हारी माँ ने कहा, 'मैंने सरस्वती की लड़की के विवाह का प्रबन्ध कर रखा है। आपको बरात के आने के समय वहाँ उपस्थित होना चाहिये। आपके वहाँ पहुँचने से बालकृष्ण की शोभा बन जायेगी।

'मैंने पूछा, 'क्या प्रबन्ध किया है?

'उसने बताया, 'मकान के बाहर खुले स्थान पर शामियाना, दरियाँ, कुसियाँ

इत्यादि बरातियों के बैठने के लिये लग जायेंगी। गाँव के हलवाई कण्ठे वाले को तीन सौ लोगों के खाने-पीने का प्रबन्ध करने के लिये कह दिया है। पुरोहितजी को दक्षिणा मिलने की बात कहकर विवाह का सामान ले तैयार रहने को कह दिया है। काहन की बहू मेरी सहायता कर रही है।

'मैं यहाँ डेढ़ बजे आ गया था। बरात के आने का समय दो बजे नियत था। शेष तो तुम भी देख रहे हो।'

'पिताजी! देश में ज़माना द्रुत-गति से बदल रहा है। इस कारण हमें अब कुछ अधिक दान-दक्षिणा करने की आवश्यकता नहीं।'

'क्यों?'

'सरकार को पता चला कि हमारे पास इतना है कि हम खुले हाथ व्यय कर सकते हैं तो सब-कुछ छीन लेगी।'

'तब तो और भी खुले-हाथ से दान-दक्षिणा में देना चाहिये। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि सरकार के छीनने से पहले ही हम उसको दे दें जिसे हम पात्र समझते हैं। इससे सरकार को यही हमारी कमाई कुपात्रों को देने का कष्ट नहीं करना पड़ेगा।'

बालकृष्ण मेज़ पर सामने बैठा था। उसने कहा, 'मैंने मिल के एक कर्मचारी को जो यहीं पड़ोस में रहता है, अपनी लड़की के विवाह के समय उपस्थित होने का निमन्त्रण दिया था। वह आया भी था, परन्तु ये शामियाने, कनाते, दरियाँ, मेज़-कुर्सी देख बिना बधाई दिये चला गया है।' वह एक अन्य साथी को कह रहा था, 'यह बालकृष्ण भी बुर्जुआ है। भूखा मरता था, परन्तु विवाह के लिये न जाने कहाँ से चोरी कर लाया है।'

'यह ठीक है।' धनपतराय ने कहा, 'इन लोगों पर दुःखी होना स्वाभाविक ही है। ये बेचारे इस योग्य नहीं कि इनके पास कुछ भी बचा हो। सम्पदा जमा करने के लिए दो तत्त्व मनुष्य में होने आवश्यक है। एक तो संयम। संयम का अभिप्राय है अपनी कामनाओं पर नियन्त्रण और दूसरा अर्जन के लिए उपयुक्त गुण, कर्म और स्वभाव।'

'अधिकांश लोगों में संयम रहा नहीं। कारण यह कि राजा लोगों में संयम नहीं और 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत प्रसिद्ध ही है। राजा लोग, मेरा अभिप्राय है कि शिक्षित वर्ग को संयम की शिक्षा नहीं मिली। उनको आवश्यकताओं के बढ़ाने की शिक्षा मिली है। उनके देखादेखी जनसाधारण भी असंयमी हो रहा है।'

'शेष रही गुण, कर्म और स्वभाव की बात। ये बहुत सीमा तक तो पूर्वजन्म के

कर्म का फल है। सबमें गुण समान नहीं होते। सबमें कर्म की सामर्थ्य समान नहीं है और सबका स्वभाव एक-समान नहीं होता। इससे सब धनी नहीं हो सकते।'

'परन्तु लालाजी!' बालकृष्ण ने ही पूछा, 'श्रेष्ठ गुण, कर्म और स्वभाव के लोग सरकारी काम क्यों नहीं करते? वे यदि अपनी योग्यता से धन-सम्पदा उपार्जन कर सरकार का कोष भर दें तो सरकार सबको सुख-सुविधा का भोग करा सकेगी।'

'यह अव्यावहारिक बात होगी।' धनपतराय का कहना था, 'वेतनधारी सेवक के श्रेष्ठ गुण, कर्म और स्वभाव उसे छोड़ जाते हैं। श्रेष्ठता दासता की शृंखलाओं में नहीं पनपती। इसके उन्नति करने के लिए स्वतन्त्रता का वातावरण चाहिये।

'सरकार का उच्च-से-उच्च सचिव भी अपने श्रेष्ठ गुण, कर्म और स्वभाव का प्रयोग नहीं कर सकता। कारण यह कि उससे बहुत कम शिक्षित मन्त्री बना होता है जो एक श्रेष्ठ गुण, कर्म और स्वभाव के सचिव को अपने श्रेष्ठ गुणों का प्रयोग करने नहीं देता और समय पाकर गुण सचिव को छोड़ जाते हैं।'

'परन्तु बाबा!' अब लक्ष्मी ने भी अपने अनुभव की बात बतायी, 'निजी क्षेत्र में उद्योगपति भी तो बहुत बेईमानी करते हैं। स्वयं लाखों कमाते हैं। उस पर आय-कर से बचने के लिये दोहरी हिसाब की किताबें रखते हैं और अपने मजदूरों का सामान्य-सा वेतन भी उनको अखरता है।'

'यह है। मैं इस बात को जानता हूँ, परन्तु इसका इलाज यह नहीं कि धनोपार्जन का साधन उनसे छीन लिया जाये। उनमें ईमानदारी, दयाभाव और दान का भाव उत्पन्न करना ही इस समस्या का सुझाव है।'

'ये सद्गुण शिक्षा से ही उत्पन्न किये जा सकते हैं। और आज शिक्षा है धनोपार्जन और भोग-विलास की। तपस्या, मितव्ययता और धर्मयुक्त उपायों से उपार्जन की प्रवृत्ति तथा उपार्जित को धर्मयुक्त ढँग से भोग करने का स्वभाव बनाने वाली नहीं। ये दोनों बातें तो की ही नहीं जातीं और जब पढ़े-लिखे लोग सम्पदा उपार्जन का भोग करना जीवन का लक्ष्य बना लेते हैं तो फिर चोरी-चकारी, घूस और छीनाझपटी तो चलेगी ही।

'आज समाज बिना सम्पदा के चल नहीं सकता। इस उद्योगीकरण के युग में सम्पदा एक महान योगदान दे रही है। यदि शिक्षा त्याग, तपस्या, मितव्ययता और दया-दान के पक्ष में नहीं होती तो सम्पदा जिस किसी के पास भी होगी, वही ऐसा व्यवहार करेगा जिससे उसका स्वार्थ सिद्ध हो। भले ही वह सरकारी कर्मचारी हो अथवा व्यक्तिगत सम्पत्तिधारी हो।

'इसका प्रत्यक्ष प्रमाण गाँव में मेरी सम्पत्ति के अधिग्रहण के परिणाम में सरकारी परिरक्षक के व्यवहार से मिल चुका है। बैंक का मैनेजर मिस्टर धवन लाखोंपति बन गया है और वह एक पैसा भी किसी निर्धन को देता नहीं। उससे पहले मैं तो खुले-हाथ से अपने अर्जन का फल दिन-रात बाँटता रहता था।'

चतुर्थ परिच्छेद

::1::

एक वर्ष और व्यतीत हो गया। धनपतराय की दुकानें और खेत दूसरे वर्ष भी ठेके पर ही दिये गए।

इसके दो परिणाम हुए। एक तो गाँव के सामान्य लोग इसे समाजवाद की प्रगति में बाधा मानने लगे। उन्हें सरकार की नीयत पर अविश्वास उत्पन्न होने लगा। इनका नेता बन गया गजानन्द। यह पंचायत का एक सदस्य था।

इसका दूसरा परिणाम यह होने लगा कि सरकार को बरगलाने वालों का नाम लिया जाने लगा। इनमें स्टेट बैंक के मैनेजर मिस्टर धवन और पंचायत के सदस्य वीरेन्द्र का नाम सबसे ऊपर था।

गजानन्द को भड़काने में भी एक कारण हो गया। एक दिन पंचायत हो रही थी। गजानन्द ने यह सुझाव उपस्थित कर दिया, 'यह प्रस्ताव किया जाये कि गाँव में अधिग्रहण की गयी दुकानों और खेतों के पट्टे रद्द कर उनको सरकारी क्षेत्र में ले आया जाये।'

वीरेन्द्र ने इस सुझाव का विरोध करते हुए कहा, 'इस प्रकार का प्रस्ताव पंचायत नहीं कर सकती। हाँ, यदि सरकार किसी ऐसी बात पर सम्मति माँगे तो सम्मति ही देने का अधिकार रखती है।'

'वाह!' गजानन्द ने पूछ लिया, 'यह कैसे?'

वीरेन्द्र ने पंचायत कानून में एक धारा दिखा दी जो इस प्रकार थी कि गाँव की अर्थ-व्यवस्था को बदलने की क्षमता पंचायत में नहीं होगी। इस प्रकार की योजना उच्चाधिकारियों से उठायी जाने पर पंचायत जनता का मत अपने वोट से प्रकट कर सकती है। गजानन्द का कहना था, 'मैं गाँव की अर्थ-व्यवस्था की बात नहीं कर रहा। मेरा प्रस्ताव है सरकार से सिफारिश करने का कि समाजवाद में हो रही प्रगति को द्रुत-गति से चलाये।'

वीरेन्द्र मौन हुआ तो मुखिया ने इस सुझाव पर पंचों का मत ले लिया। इस बार इस सुझाव के पक्ष में केवल गजानन्द का मत ही आया। सिद्ध और ब्रह्मदत्त तो इसके विरुद्ध समझे ही जाते थे। वे दोनों विरुद्ध रहे। परिणाम यह हुआ कि गजानन्द का सुझाव अस्वीकार हो गया।

परिणामस्वरूप गजानन्द ने वीरेन्द्र के विरुद्ध प्रचार करना आरम्भ कर दिया कि यह भी सरमायेदार हो गया है। यह कहा जाने लगा कि जब से वीरेन्द्र की पत्नी लक्ष्मी ने दुकान की है, वीरेन्द्र को भी धन सम्पदा की चटक लग गयी है और वह समाजवादी नहीं रहा।

गजानन्द को सन्तराम की सहायता मिल गयी। सन्तराम, अपने दामाद वीरेन्द्र के विरुद्ध बातें करता हुआ स्टेट बैंक के मैनेजर पर भी लाँछन लगाने लगा। वह खुलकर मैदान में तो नहीं आ सका, परन्तु गाँव के सब चोर तथा गुंडों के साथ उसका सम्पर्क था। उनमें उसने कानाफूसी करनी आरम्भ कर दी थी।

गाँव की इस राजनीति में पंचायत के निर्वाचन ने नया रंग भर दिया। वीरेन्द्र पंचायत के लिए खड़ा नहीं हुआ। उसके क्षेत्र के वे मतदाता, जो उसके कारण बहुत लाभ उठा चुके थे, वीरेन्द्र के पास आ-आकर उसे पंचायत के निर्वाचनों में प्रत्याशी खड़ा होने का आग्रह कर रहे थे। इनमें बालकृष्ण का समधी सोहनसिंह प्रमुख था।

एक दिन वह अपने पीपल चौक के पचास-साठ मतदाताओं को लेकर वीरेन्द्र से मिलने आया। उसने उसे पंचायत का चुनाव पुनः लड़ने का आग्रह किया तो वीरेन्द्र ने स्पष्ट कह दिया, 'गाँव में बहुमत है समाजवाद के पक्ष में। मैं समाजवादी हूँ नहीं। इस कारण मैं सफल हो नहीं सकता।'

'परन्तु,' सोहनसिंह ने कह दिया, 'आप पहले भी तो समाजवाद के पक्ष में नहीं थे। तीन वर्ष हुए, पंचायत के निर्वाचन से पूर्व मैं आपसे मिलने आया था। तब आपने इस बात का संकेत दिया था कि मत प्राप्त करने का इससे सुगम उपाय नहीं।'

'ठीक है, सोहनजी! तब मैं व्यवहार में शत-प्रतिशत समाजवादी था। समाज के हित में झूठ बोलना एक सफल नीति मानता था, परन्त आज मैं व्यवहार में समाजवादी नहीं रहा। मैं सत्य और झूठ को समाज-हित के विपरीत मानता हूँ। मैं अब उस निस्संकोच भाव से झूठ नहीं बोल सकता जैसे कि पहले बोला करता था।'

सोहनसिंह समझ गया कि वीरेन्द्र के मन में परमात्मा का भय उत्पन्न हो गया है। वह समाज के राग-द्वेष-युक्त सामान्य घटकों से अधिक परमात्मा से डरने लगा है। इस कारण उसने कहा, 'तो वीरेन्द्रजी! इस बार खुलकर समाजवाद का विरोध करते

हुए निर्वाचन लड़ा जाये।'

'और जानते हो, परिणाम क्या होगा?'

'क्या होगा?'

'मेरा मकान फूँक डाला जायेगा। दुकानों को आग लगा दी जायेगी। खेतों की फसल लोग काट कर ले जायेंगे और उनके विरुद्ध थाने में रिपोर्ट भी नहीं लिखी जायेगी।'

'तो यह समाजवाद है?'

'हाँ। मुझे इसका अनुभव इसमें रहकर ही हुआ है। जब एक बार यह मान लिया गया कि कानून का अर्थ समाज के हित में होना चाहिये तो यह सब बातें स्वयमेव सिद्ध हो जाती हैं।'

'देखो, मैं समझाता हूँ। थाने में झूठी रिपोर्ट लिखाने का दण्ड छः मास तक कैद का है। मैं यदि यह रिपोर्ट लिखाने जाऊँ कि मेरे खेतों की फसल गाँव के भूखे-नंगे और बेकार लोग मिलकर काट ले गये हैं तो थानेदार मेरी रिपोर्ट को झूठ समझ दर्ज ही नहीं करेगा। कह देगा कि यह इस प्रकार है नहीं। समाज की सम्पत्ति समाज के अभाव-ग्रस्त लोग ले गये हैं इस कारण मेरी नहीं। समाज के हित में चोरी के अर्थ ही बदल जायेंगे।

'चोर मैं माना जाऊँगा जिसके खेत उसके परिश्रम से लहलहाते हैं। मेरी तो दुकानें चलती हैं। इस कारण मेरे खेत की फसल समाज की चोरी हो जायेगी और काट ले जाने वाले, जिन्होंने उस खेत में कभी एक खुरपा भी नहीं चलाया, वे उस फसल के अधिकारी मान लिये जायेंगे।'

सोहनसिंह सामाजिक न्याय का अर्थ समझ गया और चुपचाप उठ पड़ा। परन्तु उसे विस्मय हुआ, जब वीरेन्द्र के स्थान पर उसकी पत्नी के खड़े होने की चर्चा चल पड़ी।

वीरेन्द्र को इसका ज्ञान हुआ तो उसे इस समाचार से चिन्ता लग गई। और उसने यही समझा कि दुकान ले देने की भाँति यह कार्य भी लाला धनपतराय का है। वह इसका अर्थ समझता था कि समाजवाद नोक को गाँव में पीछे की ओर घुमाने का यत्न किया गया है। वह इसमें अपना कल्याण नहीं समझता था।

अतः वह सीधा लाला धनपतराय के घर जा पहुँचा। वहाँ लोगों की भीड़ लगी थी। मकान के प्राँगण में पचास-साठ व्यक्ति कुर्सियाँ लगाये बैठे थे। उसकी पत्नी भी वहाँ बैठी थी और, लाला धनपतराय खडा उन लोगों को अपने विचार बता रहा था।

उसने कहा, 'अर्थ-व्यवस्था बदलने का अधिकार पंचायत को नहीं है। इस कारण इस पंचायत में समाजवाद और व्यक्तिवाद का झगड़ा उठाने वाले कानून के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। इस कारण कानून का पालन करने वाले लोगों को कानून के पालन पर बल देने के लिये मैंने अपनी पोती लक्ष्मीदेवी को इन निर्वाचनों में खड़ा होने का आग्रह किया है। वह मान गयी है। इस कारण मैं चाहता हूँ कि आप इसके क्षेत्र के प्रमुख व्यक्ति हैं। आपको कानून के विरुद्ध समाजवाद के नाम पर मत माँगने वालों का विरोध करना चाहिये।'

वीरेन्द्र प्राँगण में आया तो धनपतराय खड़ा हो एकत्रित लोगों को सम्बोधन कर रहा था। वह भी सबके पीछे खड़ा सुनता रहा।

धनपत राय के कथन के उपरान्त सोहनसिंह खड़ा हो कहने लगा, 'मैं अभी अपने खेत से लौटा तो पता चला कि लक्ष्मीदेवीजी पंचायत की सदस्या पद की प्रत्याशी हैं। इस शुभ समाचार को सुनकर मैं लक्ष्मीदेवी की दुकान पर गया था। मैं इनको अपने समर्थन का आश्वासन देना चाहता था। इनके घर से पता चला कि यह लालाजी के घर पर हैं और वहाँ अपने समर्थकों की एक सभा कर रही हैं। अतः मैं यहाँ समर्थन के लिये आ गया हूँ। मैं इनको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि हमारे चौक में तीन सौ मत हैं। वे सब-के-सब इनके पक्ष में जायेंगे।

'मैं इनका समर्थक क्यों हूँ? यह मैं बता देना चाहता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि यह समाजवाद के पक्ष अथवा विपक्ष में नहीं है। परन्तु इनके विरुद्ध खड़ा सुरेश पण्डित कट्टर समाजवादी है। वह खुले-आम घोषणा कर रहा है कि कानून के अर्थ वह होते हैं जो समाज के हित में हों। अर्थात् यदि मजिस्ट्रेट को यह समझ आ जाये कि आपका घर फूँक देने से समाज का हित है तो वह आपके घर को आग लगाने वालों को कानून के विरुद्ध नहीं, वरन् कानून के अनुसार काम करने वाला मानेगा। और आपको उस घर का मालिक होने से कानून का विरोधी समझेगा।

'मेरी समझ में यह नहीं आया। इस कारण मैं समाजवाद के पक्ष-विपक्ष की बात तो जानता नहीं। सुरेश पण्डित बी० ए० पास कर गाँव में अभी आया है और मैं तो कुछ भी पढ़ा-लिखा नहीं, परन्तु वह यही कह रहा है जो मैंने आपको बताया है।

'सुरेश पण्डित ने यह कहा है कि यदि किसी की दुकान समाज के अहित में समझी जाये तो उस दुकान का मालिक अपराधी है और उसकी दुकान को लूट लेने वाले न्यायप्रिय नागरिक। मैं तो सुरेश के इस विचार का विरोध करने के लिये लक्ष्मी देवीजी का समर्थन करता हूँ।'

वीरेन्द्र एक बात से तो प्रसन्न था कि जिस बात के कहने और प्रचार करने का वह साहस नहीं करता था, उसके लिये उसकी पत्नी तैयार हो गयी है। इससे वह मौन खड़ा सभा की कार्यवाही सुनता रहा। सबसे अन्त में लक्ष्मी ने दो शब्द कहे। उसने कहा, 'मैं गाँव का वातावरण राजनीति से अलिप्त रखना चाहती हूँ। मेरे पंचायत का सदस्य बनने का उद्देश्य यह है कि पंचायत को राजनीति का अखाड़ा न बनाकर इस गाँव की नागरिक सेवाओं के लिये लगा दिया जाये। मैं जानती हूँ कि पिछले तीन वर्ष पंचायत के पंच इस झगड़े में फंसे रहे कि समाजवाद क्या है और कैसे लाया जाये? पंचायत ने गाँव के स्वास्थ्य और वातावरण की शुद्धता को उन्नत करने में कुछ नहीं किया। यह इसी कारण है कि जो काम पंचायत का नहीं था, उस पर समय और धन व्यय करते हुए उन्होंने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया।'

::2::

नामाँकन पत्र उपस्थित करने के दिन धनपतराय ने लक्ष्मी को अपने घर बुलाया था। जब वह आई तो बाबा ने उसे अपने पति के क्षेत्र के पंचायत के निर्वाचनों में खड़ा होने के लिये सम्मति दे दी। लक्ष्मी तैयार नहीं हो रही थी। लाला ने यह कहा, 'आज नामांकन पत्र दाखिल करने की अन्तिम तिथि है। इसके पाँच दिन उपरान्त तक कभी भी यह पत्र वापस लिया जा सकता है। इस बात पर विचार कर लिया जायेगा कि पत्र वापस लेना चाहिये अथवा नहीं। यदि कहोगी तो वापस हो जायेगा।'

इस शर्त पर वह मान गयी। परन्तु जब वह तहसीलदार के कार्यालय में अपने समर्थकों के साथ पहुंची तो पहली ही बात तहसीलदार ने ऐसी कही कि जिससे वह आग-बबूला हो गयी। तहसीलदार ने कहा, 'तुमने इसमें अपने पिता का नाम गलत लिखा है।'

'क्या गलत लिखा है?'

'तुम मिस्टर सन्तराम की लड़की नहीं हो। सन्तराम तो कहता है कि उसकी कोई लड़की नहीं है।'

'परन्तु आप तो जानते हैं कि मैं कानूनगो साहब की लड़की हूँ।'

'ठीक है। परन्तु मैं यहाँ रिटर्निंग अधिकारी के रूप में हूँ। एक नागरिक के

अधिकार से नहीं। तुम साक्षी लाओ कि तुम मिस्टर सन्तराम की लड़की हो।'

लक्ष्मी ने अपने जन्म का सर्टिफिकेट तहसील के रिकार्ड से निकलवाया। उसकी सर्टिफाईड नकल ली और वह उपस्थित की। इस प्रकार दिन-भर भाग-दौड़ के उपरान्त उसका नामांकन-पत्र दर्ज किया जा सका।

लक्ष्मी के मुकाबले में सुरेश पण्डित खड़ा था। उसने गाँव के वकील देवेन्द्र मिश्र को किया हुआ था और उसने ही लक्ष्मी के नामांकनपत्र पर आपत्ति उठायी थी।

लक्ष्मी ने कहा भी, 'यह आपत्ति 'स्क्रूटिनी' के दिन उठायी जानी चाहिये। परन्तु तहसीलदार वीरेन्द्र के विरुद्ध था और उसने वकील की आपत्ति को स्वीकार कर वलदीयत के विषय में 'ऐफिडेविट' लाने के लिये कह दिया। तहसीलदार की यह आज्ञा थी कि नामांकन-पत्र के साथ यह 'ऐफिडेविट' संलग्न होना चाहिये।

ज्यों-त्यों कर साढ़े तीन बजे सर्टिफिकेट नामांकन-पत्र के साथ लगाकर दिया जा सका था।

लक्ष्मी को इस आपत्ति पर और वह भी वकील और तहसीलदार की ओर से जो उसे भली-भाँति जानते थे, क्रोध चढ़ आया था। उसके क्रोध में अपार वृद्धि तब हुई जब गाँव के निम्न कोटि के कुछ लोग जो तहसील के अहाते में बाहर खड़े थे, जब वह नामांकन-पत्र देकर निकली तो उन्होंने उसके चरित्र और व्यवसाय के विषय में नारे लगाने आरम्भ कर दिये।

इससे वह अपने संकल्प कि वह निर्वाचनों में प्रत्याशी नहीं बनेगी, पर विचार करने लगी थी। तहसील से वह सीधी बाबा के मकान पर पहुँची और वहाँ चालीस-पचास वार्ड के प्रमुख व्यक्तियों को एकत्रित देख वह बाबा की बात सुनने लगी। जब बाबा और एकत्रित लोगों में से कुछ और बोल चुके तो उसने उठकर कहा, 'मैं एक बात समझ गयी हूँ कि गाँव में दो प्रकार के लोग हैं। एक भले आचार-विचार के और दूसरे दुष्ट विचार और चरित्र के लोग। इन्हीं दो प्रकार के लोगों का भगवद्गीता में वर्णन आया है। वहाँ इनको दैवी और आसुरी स्वभाव वाला कहा है।

'असुरी स्वभाव वाले गाली-गलौज, झूठ, ठगी और गुण्डागर्दी से भले लोगों को इस संसार से भगा कर अपनी गुण्डागर्दी चलाना चाहते हैं। इस कारण मैं यह विचार कर रही हूँ कि मैं मैदान से भाग जाऊँ अथवा मैदान में खड़ी रह कर इन गुण्डों, शोहदों का मुकाबला करूँ। विचारोपरान्त मैं इस परिणाम पर पहँची हूँ कि भाग खड़े होने से काम नहीं चलेगा। इसका अर्थ होगा कि गाँव के गुण्डों को मनमानी करने का अवसर दिया जाना। इस कारण मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि क्या श्रेष्ठ विचार के

लोग संगठित हो दुष्टता का विरोध कर सकेंगे?

'मानव समाज में भले लोगों की संख्या अधिक है, परन्तु वह कीचड़ में चलने से डरते हैं और अल्प-संख्या में दुष्ट लोग भले लोगों की इस त्रुटि को समझते हैं। वह इसका लाभ उठा, हो-हल्ला कर भले लोगों पर राज्य करते हैं।

'मैं इस विचार से इन निर्वाचनों को लड़ने के लिये तैयार हो गई हूँ। सत्य, न्याय और श्रेष्ठ आचार-विचार के नाम पर मैं निर्वाचन लड़ रही हूँ। मैं भले लोगों के समर्थन की आशा लेकर चली हूँ। मैं समझती हूँ कि गाँव में भले लोगों की संख्या अधिक है और कोई कारण नहीं कि वे गालियों और धींगा-मस्ती से डर कर गुण्डे, शोहदों के लिये मैदान छोड़ दें।'

इस पर उसने तहसीलदार और वकील देवेन्द्र मिश्र के उसके वलदीयत पर आपत्ति उठाने और तहसीलदार का यह कहना कि मेरे पिता कहते हैं कि मैं उनकी लड़की नहीं हूँ, का वृत्तान्त सुना दिया।

इस पर सबको विस्मय हुआ। लक्ष्मी ने यह भी बताया कि पिछले वर्ष 'श्रृंगार प्रसाधन' की दुकान लेने के समय देवेन्द्र मिश्र मेरा वकील बन मेरे स्थान पर बाबा की सम्पत्ति के परिरक्षक से बातचीत करते रहे थे। यदि यह है राजनीति तो हमें इसका विरोध करना चाहिए। सब न्यायप्रिय और भले लोगों को संगठित हो एकत्रित हो जाना चाहिये।

धनपतराय ने लक्ष्मी को विजयी कराने का संकल्प कर लिया था। इसके लिए वह यत्न करने लगा। लक्ष्मी का विरोध करने के लिये दो प्रत्याशी थे। एक सुरेश पण्डित था और दूसरा एक चमार जाति का झींगुर नाम का व्यक्ति था। 'स्क्रूटिनी' के दिन ये तीनों उम्मीदवार निर्वाचन लड़ने के अधिकारी मान लिये गए। इस दिन के उपरान्त पाँच दिन का अवसर दिया गया कि यदि कोई उम्मीदवार चाहे तो अपना नाम वापस ले सकता है।

इस समय तक दो प्रत्याशियों का प्रचार अति उग्र हो रहा था। सुरेश पण्डित का और लक्ष्मीदेवी का। झींगूर चमार में तो प्रचार के लिए दम नहीं था। इस प्रचार में सुरेश पण्डित की ओर से समाजवाद का नारा उठाया गया, परन्तु लोग अब इसे सुन-सुनकर हँसते थे। कारण यह कि सरकार के प्रबन्ध में धनपतराय की बीस दुकानों में चौदह-पन्द्रह तो बन्द पड़ी थीं। कोई नयी दुकान निजी क्षेत्र में खोलना नहीं चाहता था। उसके सरकार की ओर से अधिग्रहण किये जाने का भय था। अतः सामान्य जनता को कष्ट होने लगा था। बहुत लोगों को अपनी आवश्यकताओं के लिये नगर जाना पड़ता था।

नाम वापस लेने की तिथि आयी और लक्ष्मी के दोनों प्रतिस्पर्धियों ने अपना नाम वापस ले लिया। लक्ष्मी अकेली ही प्रत्याशी रह जाने से निर्वाचित घोषित करनी पड़ी।

यह समाचार वीरेन्द्र को तब मिला जब वह काहन की नयी दुकान पर लक्ष्मी के निर्वाचन के प्रबन्ध के विषय में विचार कर रहा था। दोनों इस समाचार से आश्चर्यचकित रह गये।

वीरेन्द्र भागा हुआ लक्ष्मी की दुकान पर गया। वह वहाँ नहीं थी। वह लक्ष्मी की दूसरी दुकान पर गया जहाँ बालकृष्ण की पत्नी सरस्वती दुकान का काम देख रही थी। धनपतराय ने लक्ष्मी से कहकर उसे इस नयी दुकान पर पत्तीदार बनवा दिया था। लक्ष्मी वहाँ भी नहीं थी। अतः वह उसके दुकान पर आने की प्रतीक्षा करने लगा।

उस दिन एक घटना और घटी। एक दिन पूर्व गाँव में डुग्गी पीट-पीट कर यह घोषणा की गयी, कि धनपतराय की अन्न की दुकान नीलाम होगी। जो दुकान लेकर चलाने का वचन देगा, वह अगले दिन आकर दुकान का ठेका लेने की बोली दे सकता है।

दुकान को बन्द पड़े डेढ़ वर्ष से ऊपर हो चुके थे। अन्न भीतर पड़ा सड़ गया था और कीड़े-मकोड़े दुकान के बाहर तक चलने लगे थे।

गाँव के कुछ लोगों को विशेष विज्ञापन भी आया था कि वे आकर दुकान के लिये बोली दे सकते हैं। इस विज्ञापन में यह लिखा था कि एक तो दुकान में पड़े माल की बोली होगी और दूसरे ठेके की। काहन ने विज्ञापन पढ़ा तो रद्दी की टोकरी में डाल दिया।

कदाचित् जिसने भी विज्ञापन पढ़ा अथवा डुग्गी सुनी, उसने इसको मस्तिष्क से निकाल दिया। परिणामस्वरूप अगले दिन नीलाम पर कोई भी बोली देने नहीं आया।

लक्ष्मी तो तहसील में यह देखने गयी थी कि निर्वाचन में उसके विरोधी नाम वापस लेते हैं अथवा नहीं। नाम वापस लिये गए तो वह बाबा के मकान पर यह सूचना देने गयी। वास्तव में धनपतराय ने ही दोनों प्रत्याशियों को ले-देकर नाम वापस लेने पर तैयार किया था। दोनों को कुछ अग्रिम रकम तो पहले दे दी गयी थी और शेष रकम उनके नाम वापस लिये जाने की घोषणा होने पर दी जाने वाली थी।

धनपतराय ने लक्ष्मी से सूचना प्राप्त की तो उसको कह दिया, 'देखो लक्ष्मी! तुमको गाँव के पंचायत सम्बन्धी मामलों के अतिरिक्त बातों में भाग नहीं लेना है।'

'बाबा! आपके दामाद कह रहे थे कि उनकी भाँति मेरा कारोबार भी पंचायत के काम में बरबाद हो जायेगा।'

'मैं समझता हूँ कि यदि तुममें पंच बन जाने का मद सवार नहीं होगा तो तुम्हारे व्यवसाय में भी उन्नति होगी।'

'सायंकाल एक घण्टा ही पंचायत के काम के लिए सुरक्षित रखना।'

गजानन्द के विरुद्ध भी एक व्यक्ति खड़ा था और उनका परस्पर मुकाबला होना निश्चित था। चौधरी रामावतार भी लक्ष्मी की भाँति बिना मुकाबले के निर्वाचित हो गया था।

::3::

वीरेन्द्र लक्ष्मी के निर्वाचित हो जाने पर प्रसन्न तो था, परन्तु वह इस सफलता पर विस्मय भी करता था। वह तो केवल एक कार्य में ही सफल हुआ था। वह यह कि दूसरों के खेतों में भाड़े पर ट्रैक्टर चलाकर कमाई करे। जिस दिन यह काम करता था तो बीस रुपये पा जाता था। उसका अपना खेत लगभग तीन-चार सहस्त्र रुपया वार्षिक की आय देता था, परन्तु वह जानता था कि यह आय उसके खेतों पर काम करने वालों की है। वह स्वयं तो अपने खेतों पर बहुत कम जाता था। इस तीन-चार सहस्त्र के अतिरिक्त घर के प्रयोग के लिए अन्न-अनाज आ जाता था। कुछ साक-भाजी भी प्राप्त हो जाती थीं।

परन्तु इस खेत से अधिक तो लक्ष्मी दो दुकानों से आय करती थी। उसकी एक दुकान से पाँच सहस्त्र नकद बचत हुई थी और अब दूसरी दुकान साथ आ जाने पर उसकी आय आठ-नौ सहस्त्र की होने वाली थी।

इस कारण वह खेतों से उचाट हो स्वयं भी किसी प्रकार का कारोबार करना चाहता था।

अतः वह उन दिनों अपने कर्मचारियों से बातचीत कर रहा था कि वे उसके खेत ठेके पर ले लें। परन्तु किसी में भी इतना साहस नहीं था कि खेत को लेकर स्वयं चला सके।

लक्ष्मी पंचायत की बैठक से लौटी थी और दुकान पर जाने लगी तो वीरेन्द्र आ गया। उसने उसे देख पूछ लिया, 'लक्ष्मी ! जा रही हो ?'

'जी। दुकान पर जा रही हूँ।'

'मैंने आज अपने खेतों पर काम करने वाले कर्मचारियों को कहा था कि वे मुझे खेतों का पाँच सौ रुपया वार्षिक दे दें तो मैं खेतों का सब लाभ उनको देने को तैयार हूँ। इस पर कोई भी खेत लेने के लिए तैयार नहीं हुआ।'

'परन्तु आप ऐसा क्यों करना चाहते हैं?'

'मैं भी व्यापार करना चाहता हूँ। कृषि का काम पर्याप्त लाभ नहीं देता।'

'कुछ तो लाभ देता है।'

'परन्तु व्यापार के मुकाबले में नगण्य है।'

'तो ऐसा करिये। आप दुकानों को सम्भालिए और मैं आपके खेतों का प्रबन्ध करती हूँ।'

'तुम खेतों में जाकर क्या करोगी?'

'जो कुछ आप करते हैं उससे कुछ अधिक ही करूँगी। परन्तु एक बात आप समझ लें कि दुकान का काम करते हुए आप ट्रैक्टर नहीं चला सकेंगे। उसके लिये आपको समय ही नहीं मिलेगा।'

'ट्रैक्टर पर ड्राईवर रख लूँगा। वह पाँच रुपये नित्य पर काम करेगा। शेष पन्द्रह रुपये ट्रैक्टर के भाग के होंगे।'

'और जिस दिन काम नहीं हुआ करेगा तो उस दिन क्या होगा। ड्राईवर तो अपना वेतन ले लेगा।'

'तो मैं ट्रैक्टर बेच दूँगा।'

'और अपने खेतों पर काम करने के लिये भाडे पर लिया करेंगे?'

वीरेन्द्र पत्नी के प्रश्नों से उसका मुख देखता रह गया। उसने इस प्रकार कभी विचार नहीं किया था। इस पर लक्ष्मी हँस पड़ी। हँसते हुए बोली, 'आप व्यापार नहीं कर सकेंगे। करेंगे तो हानि उठायेंगे। आप में व्यवसायात्मक बुद्धि नहीं है।'

'वह क्या होती है?'

'आप इसे किसी एक विषय पर केन्द्रित नहीं कर सकते। आप काम करते हैं खेतों पर और विचार करते हैं दुकानों का। इस प्रकार की खण्डित वृद्धि को अव्यवसयात्मक बुद्धि कहते हैं।'

'परन्तु इससे आय बढ़ जायेगी क्या?'

'आय बढ़ाने का यही एक उपाय है। बढ़ेगी अथवा नहीं बढ़ेगी, यह कहा नहीं जा सकता। इसमें तो भाग्य का भी हाथ है। भाग्य और पुरुषार्थ दोनों सफलता में

कारण होते हैं।'

'तो मेरे भाग्य में और अधिक आय करना नहीं लिखा हुआ?'

'यह मैं कैसे बता सकती हूँ? भाग्य तो अदृष्ट है। यह दिखायी नहीं देता। हाँ, आय-वृद्धि में दूसरे उपाय पुरुषार्थ पर तो विचार हो सकता है। मैं समझती हूँ कि उसमें आप वृद्धि कर सकते हैं।'

'कैसे?'

'मैं तो एक बात जानती हूँ कि पुरुषार्थ के तीन अंग हैं। एक बुद्धि, दूसरा प्रयत्न और तीसरा काल। आपके कृषि-सम्बन्धी कार्य में तीनों का समुचित प्रयोग नहीं हो रहा। इसी कारण इसमें उन्नति नहीं हो रही।'

'लक्ष्मी! मैं समझा नहीं।'

'आप एक-एक पर विचार करिये तो बात समझ में आ जायेगी। आप पुरुषार्थ के तृतीय अंग काल से ही विचार करिये। आप कितने घण्टे नित्य काम करते हैं?'

'जब काम ही नहीं तो करूँगा क्या? नित्य प्रातः खेतों पर जाता हूँ। आने-जाने में समय लगे तो लगे, परन्तु वहाँ पर काम तो दस-पन्द्रह मिनट से अधिक नहीं होता। तीन कर्मचारी दिन-रात काम करने के लिये रहते हैं। वे देख-भाल, रक्षा और सिंचाई-निराई इत्यादि भी कर देते हैं।'

'शेष दिन-भर रिक्त रहता हूँ। सप्ताह में एक अथवा दो दिन ट्रैक्टर पर कार्य मिल जाता है। पिछले तीन वर्ष मैं पंच रहा था और गाँव के बीसियों झगड़ों में समय व्यय होता रहता था। अब वह काम भी नहीं रहा। यही कारण है कि मैं इस रिक्त समय में कुछ अन्य काम करना चाहता हूँ।'

'ठीक है। अब पुरुषार्थ के प्रथम अंग बुद्धि का प्रयोग करिये और देखिये कि आप क्या कर सकते हैं? यहाँ गाँव में किस काम की आवश्यकता है?'

'यही तो कह रहा हूँ कि मैं किसी प्रकार का व्यापार कर लूँ।'

'मैं समझती हूँ कि आप व्यापार से अधिक कुशलता से उपज का काम कर सकेंगे। देखिये, हमारी बगल की दुकान मियाँ ज़हूर ने ले ली है और वह वहाँ मुर्गियाँ और अण्डे बेचने का काम करता है।'

'तो तुम मुझे अण्डे और मुर्गियाँ बेचने के काम की सम्मति देती हो?'

'बेचने की नहीं। इनकी खेती करने की बात कह रही हूँ। मेरा अभिप्राय है कि आप 'पोल्टरी फार्म' खोल दीजिए।'

'परन्तु इस प्रकार की खेती-बाड़ी के विषय में तो मैं कुछ नहीं जानता।'

'यही तो कह रही हूँ। इसी में बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता है। बुद्धि एक चक्की है। इसमें पिसने वाला अन्न-अनाज है ज्ञान। अतः बुद्धि की चक्की चलाने से पहले इसमें पीसने के लिये ज्ञान प्राप्त करिये।'

'आपके पास स्कूटर है। आप सप्ताह में एक-दो चक्कर सरकारी पोल्टरी फार्म के लगाने आरम्भ करिये। वहाँ इस कला को सीख कर अपने यहाँ एक फार्म खोल दीजिये। तब आप ज़हूर की दुकान पर अपना माल रख कर बेचिये। मेरी कल्पना तो यह कहती है कि यदि आप चित्त लगाकर यह काम करेंगे तो आपकी उपज की बिक्री केवल एक ज़हूर की दुकान नहीं कर सकेगी। तब आप इस उपज को बेचने के लिये पड़ोस के गाँव में अथवा नगर में भी कई ज़हूर जैसी दुकाने खुलवा सकेंगे। यह पुरुषार्थ का तीसरा अंग होगा। इसे प्रयत्न कहते हैं।'

वीरेन्द्र को मार्ग मिल गया। पुरुष होने से वह यह सहन नहीं कर पा रहा था कि उसकी पत्नी एक स्त्री होते हुए उससे अधिक आय कर सकती है। एक बात वह मान गया कि वह उससे तीव्र बुद्धि रखती है। वह उसकी समस्या का सुझाव विचार कर सकी है।

इस योजना में एक छिद्र उसे दिखायी दिया था। वह अनायास ही उसके मुख से निकल गया। उसने कहा, 'एक बात से संकोच होता है कि एक ठाकुर का लड़का मुर्गियों का व्यापार करेगा।'

'हाँ! यह विचारणीय है।' लक्ष्मी ने मुस्कराते हुए कहा, 'मैं यह तो देख रही हूँ कि एक ठाकुर के बेटे ने ब्राह्मण का कार्य करना आरम्भ किया था। आपने जीवनारम्भ अध्यापक के कार्य से किया था, परन्तु वह आपको पसन्द नहीं आया।

'अध्यापक के कार्य को आप पसन्द नहीं कर सके। कारण यह कि वह कार्य आपके स्वभाव के विपरीत था। अध्यापक का कार्य सफलतापूर्वक वह कर सकते हैं जिनके स्वभाव में त्याग, तप, शम, दम शान्ति आर्जव हो और जो स्वभाव से ज्ञान-विज्ञान एवं आस्तिक्य के लिये यत्नशील हों। यह आपका स्वभाव नहीं था। अतः आपने अपना कार्य बदला। पिछले दस वर्ष से आप वैश्य का कार्य कर रहे हैं। आपने कृषि का व्यवसाय स्वीकार किया और मैं समझती हूँ कि आप इसमें सफल हुए हैं। बीच में आप पुनः ब्राह्मण का कार्य करने लगे थे। आप पंच बन गये और गाँव के लोगों के झगड़ों को सुलझाने में यत्न करने लगे। यह आंशिक रूप में एक ब्राह्मण का कार्य था।'

'मैं समझती हूँ कि आप पुनः इस कार्य में असफल हुए हैं। आपके कार्यों को अब मैं देखती हूँ तो वे प्रायः अभाव-युक्त, ज्ञान-विज्ञान-विहीन और नास्तिकों के-से प्रतीत होते हैं। अतः आप ब्राह्मण का स्वभाव रखते नहीं थे। इस कारण पंच के कार्य में भी असफल हुए हैं।'

'आज आपने आय-वद्धि की बात भी एक वैश्य-वृत्ति के बालक के स्वभाव की भाँति की है। अतः मुर्गी-पालन का कार्य आपके स्वभाव के सर्वथा अनुकल होगा।'

'मैं तो समझा था कि पंच का कार्य एक क्षत्रिय का कार्य है।'

'तो क्या आपको पंच इसलिए बनाया गया था कि आप लाठी लेकर युद्ध किया करेंगे? गाँव के छोटे-मोटे झगड़ों में न्याय करने के लिए आप पंच बनाये गए थे। यह क्षत्रिय का काम नहीं था। यह एक ब्राह्मण का कार्य था।

'उस दिन बाबा बता रहे थे कि आप पंच होने के सर्वथा अयोग्य थे। और यदि इस बार आप पंचायत के निर्वाचन में प्रत्याशी होते तो बाबा आपको पराजित कराने का यत्न करते।'

'अर्थात् बाबा की दृष्टि में तुम किसी ब्राह्मण की बेटी हो और ब्राह्मण के कार्य की परीक्षा पास कर चुकी हो?'

लक्ष्मी हँसी तो वीरेन्द्र भी यह समझा कि उसने अपनी बुद्धिशील पत्नी को निरुत्तर कर दिया है, हँस पड़ा।

लक्ष्मी ने हँसते हुए कहा, 'निर्वाचन के समय बाबा ने क्या समझा कि एकाएक मुझे बुलाकर नामांकन-पत्र भरने के लिये कह दिया। यह मैं नहीं बता सकती। यह तो आप कभी उनसे चलकर पूछिये। हाँ, एक बात मैं समझ रही हूँ कि मुझे गाँव के झगड़ों को निपटाने में रस आता है। जहाँ लोग आते हैं और अपनी समस्या में मेरी और पंचायत की सहायता माँगते समय मुझे भेंटस्वरूप अथवा रिश्वत देने के लिये रुपये अथवा भाँति-भाँति की वस्तुएँ देते हैं और मैं उनको लिये बिना उनके झगड़े निपटाती हूँ तो मेरे मन में एक प्रकार का आह्लाद उत्पन्न होता है। वह अवर्णनीय है। इससे मैं समझती हूँ कि एक ब्राह्मण-स्वभाव की स्त्री एक वैश्य-स्वभाव वाले की पत्नी बन गयी है।'

इस पर तो वीरेन्द्र और भी जोर से हँसा। उसने कहा, 'अच्छा, पण्डितायिनजी! कुछ चाय-पानी भी मिलेगा अथवा नहीं?'

::4::

बात वीरेन्द्र के मन को ठीक प्रतीत हुई। अगले ही दिन उसने अपना स्कूटर निकाला और गाँव से दस मील के अन्तर पर सरकारी 'पोल्ट्री फार्म' पर जा पहुँचा। वहाँ उसे यह बताया गया कि वहाँ सप्ताह में दो बार इस व्यवसाय की शिक्षा दी जाती है। वह भी वहाँ का छात्र बन सकता है।

एक विश्वविद्यालय का स्नातक और दस वर्ष कृषि-कार्य का अनुभव रखने वाला तो दो मास में ही इस व्यवसाय को भली-भांति समझ गया। और फिर उसने सरकारी फार्म से ही मुर्गियाँ खरीद कर अपने ही खेतों के एक कोने में पॉल्टरी फार्म बना लिया।

काम आरम्भ हुआ तो एक दिन उससे धनपतराय मिलने चला आया।

वीरेन्द्र अपने स्कूटर पर सवार नगर को जाने को तैयार था। धनपतराय ने पूछ लिया, 'वीरेन्द्रजी! कहाँ से आ रहे हैं?'

'मैं नगर को जा रहा हूँ। वहाँ एक छोटी-सी दुकान ली है जिसमें यहाँ की उपज विक्रय करने का प्रबन्ध कर रहा हूँ। उसके प्रबन्ध में जा रहा हूँ।'

'उस दुकान पर बैठेगा कौन?'

'अभी तो निश्चय नहीं हुआ।'

'देखो वीरेन्द्र! दुकान तब तक मत खोलना जब तक वहाँ काम करने वाले का निश्चय न हो जाये।'

'मैंने तो यही विचार किया था कि वहाँ दो घण्टे नित्य मैं चला जाया करूँगा।'

'नहीं वीरेन्द्र! इस प्रकार काम नहीं चलेगा। मेरा कहा मानो। वहाँ के लिये कोई ठेकेदार तैयार करो। उससे जमानत जमा कराओ और उससे शर्तें लिखाओ।'

'पर बाबा! आप तो ऐसा नहीं करते थे। मैं समझता हूँ कि अब भी नहीं कर रहे।'

'हाँ। परन्तु मैं काल की गति में पिछड़ा हुआ अनुभव करने लगा हूँ। जमाना बहुत तेजी से ईमानदारी को छोड़ रहा है और मुझ जैसे बुड्ढे इसका अनुभव नहीं कर रहे।'

'मुझे आज ही एक बात का पता चला है और उसका कारण मैंने ढूँढा है। वह यह है कि लिखा-पढ़ी के बिना कोई काम मत करो। आजकल का स्वार्थी संसार द्रुत-गति से भूल रहा है कि उसने किस प्रकार की शर्तों के अधीन काम पाया था? काम पाने के समय तो वह गिड़गिड़ाता था और जब काम पा जाता है तो वह भूल जाता है कि वह नौकर है। वह मालिक बनने का यत्न करता है।'

'बाबा! क्या हुआ है?'

'गौरीशंकर को मैंने पाँच एकड़ भूमि पर जमादार नियुक्त किया था। कल मुझे पता चला कि खेत की उपज उठवा-उठवा कर कहीं भेज रहा था। मैंने उससे जाकर पूछा कि कहाँ भेज रहे हो? तो वह बोला, 'सरकारी गोदाम में।

'मेरा अगला प्रश्न था, 'किसके हुक्म से भेज रहे हो?

'हुक्म की क्या आवश्यकता है? माल खेत में तैयार हुआ है और मैंने उसे बेच दिया है। सरकार ने खरीदा है और सरकारी माल सरकारी गोदाम में भेज रहा हूँ।

'मैंने उसे कहा, 'ठहरो! मैं तुम्हें अपने छकड़े भेज देता हूँ। इससे इन सरकारी छकड़ों का भाड़ा नहीं देना पड़ेगा।

'नहीं लालाजी! सब-कुछ सरकारी प्रबन्ध है। ये सरकारी छकड़े सरकारी माल ले जा रहे हैं।

'अब बताओ, बदल रहा है न ज़माना? इस बदलते ज़माने में हमें भी बदलना चाहिये। मैंने अपने अन्य मैनेजरों को शर्तनामा भरने के लिये कह दिया है।'

'और गौरीशंकर को छोड़ दिया है?'

'नहीं। मैंने चोरी का आरोप लगा उसे पकड़वा दिया है। वह इस समय हवालात में है और अब वह अपनी ज़मानत पर छोड़े जाने का प्रबन्ध कर रहा है और मैं ज़मीन और उसकी उपज पर अपनी मल्कीयत सिद्ध करने का यत्न कर रहा हूँ।'

'यह कब की बात है?'

'कल मध्याह्नोत्तर पता चला था। मैंने अपने साथ के एक कर्मचारी को समझा कर थाने में पुलिस बुलाने भेज दिया और उसे रंगे हाथ पकड़वा दिया है। वह तो कहता रहा है कि वह स्वयं भूमि का मालिक है और वह इस उपज का स्वामी है। परन्तु थानेदार ने कहा है कि यह बात जब वह मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित होगा तो कह दे। थानेदार ने उसे एक खेत से माल ले जाते देखा है और सन्देह में पकड़ लिया है।

'अब ग्यारह बजे मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित होगा। मैं भी वहाँ जा रहा हूँ।'

वीरेन्द्र भौंचक्का मुख देखता रह गया। उसने पूछा, 'बाबा! यह पहले भी कभी हुआ है?'

'नहीं। खेतों को बिना लिखत-पढ़त के पट्टे पर देता रहा हूँ और कर्मचारियों के हवाले भी करता रहा हूँ। मेरा पहला जमादार तो बीस वर्ष मेरे पास काम करता रहा था और एक पैसे का भी हेर-फेर नहीं किया था। यही कारण था कि उसकी लड़की के विवाह पर मैंने पाँच सहस्त्र रुपया व्यय किया था। पिछले वर्ष भूमि लेने के समय उसके पास रिश्वत देने के लिये धन नहीं था। मैंने धन का प्रबन्ध मौखिक वचन पर कर दिया था, परन्तु यह गौरीशंकर तो एक वर्ष में ही मालिक बन गया है।'

'बाबा! तुम चलो। मैं भी थाने में आता हूँ।'

धनपतराय बहुत प्रातःकाल का घर से निकला हुआ था। इस समय दस बज रहे थे। उसे घर जा स्नानादि कर और ग्यारह बजे से पूर्व थाने में पहुंचना था। इस कारण वह लम्बे-लम्बे पग उठाता हुआ घर को चला गया। वीरेन्द्र ने भी स्कूटर स्टार्ट किया और घर जा पहुंचा। लक्ष्मी दुकान पर जाने के लिये तैयार खड़ी थी। उसने पति को लौटते देख पूछ लिया, 'आप तो नगर को जा रहे थे?'

'हाँ, फार्म पर बाबा मिल गये थे। उन्होंने बताया कि उनके फार्म पर चोरी हो रही थी और उनका कर्मचारी चोरी करता हुआ रंगे-हाथ पकड़ लिया गया है। वह आज ग्यारह बजे थाने में जाने वाले हैं। मैंने विचार किया है कि मैं भी वहाँ जा, बाबा की कुछ सहायता करूं।'

थाने में धनपतराय ने अपने भूमि के कागज़ दिखाये जिनसे यह सिद्ध होता था कि उसने पिछले वर्ष वह भूमि सरकार से मोल ली है और दो सौ रुपया प्रति एकड़ दाम दिया है। पुलिस इस प्रमाण को पाकर मजिस्ट्रेट के सामने उपस्थित हो गयी।

गौरीशंकर को भी उपस्थित किया गया। पुलिस ने धनपतराय की रिपोर्ट पढ़कर सुनायी जिसमें यह कहा गया था कि गौरीशंकर उसके खेत की उपज चरा-चुरा कर बेच रहा है। इस पर पुलिस ने खेत पर छापा मारा। तीन छकडे गेहूँ सरकारी गोदाम पर जा रहे थे। इस पर गौरीशंकर ने बताया कि वह गेहूँ उसने सरकारी क्रय-विभाग के पास बेचा है और भेज रहा है। इसने बताया है कि खेत इसके अपने हैं और माल इसका है, परन्तु धनपतराय ने खेतों की मल्कीयत के कागज़ दिखाये हैं।

इससे यह प्रतीत होता है कि माल तो चोरी-चोरी बेचा गया है। उसका दाम गौरीशंकर ने वसूल किया है और खेतों पर मल्कीयत इस चोरी करते पकड़े जाने पर झूठ प्रकट कर दी है।

अतः पुलिस पन्द्रह दिन की 'रिमाण्ड' चाहती है कि इस मामले के लिये और जाँच की जाये।

गौरीशंकर ने 'रिमाण्ड' का विरोध नहीं किया। उसने कहा, 'सरकारी माल जिसका मूल्य वह ले चुका है, सरकारी गोदाम पर भेज दिया जाये और उसे जमानत पर छोड़ दिया जाये।'

मजिस्ट्रेट ने पूछा, 'कितना माल बेचा है?'

'दो सौ क्विंटल माल बेचा है और उसका दाम बारह हजार रुपया प्राप्त किया है।'

'ठीक है। बीस हज़ार की हाज़िर ज़मानत दाखिल कर दो तो छोड़े जा सकते हो।'

'हजूर! यह बहुत अधिक है।'

'और भी माल फार्म पर है?'

'हाँ। कुछ अपने खाने-पीने के लिये रखा है।'

'ज़मानत इससे कम नहीं हो सकती।'

पुलिस ने ज़मानत का विरोध नहीं किया। गौरीशंकर ने रामावतार पंचायत के मुखिया की जमानत उपस्थित की और वह छूट गया।

वीरेन्द्र ने लौटते हुए रामावतार से कहा, 'मुखियाजी महाराज! आपने इसकी जमानत देकर ठीक नहीं किया।'

'भाई वीरेन्द्र! आज कानूनगो साहब घर पर आये थे और कह रहे थे कि यह भूमि गौरीशंकर के नाम 'दाखिल-खारिज' है। इस कारण वह मालिक है और लाला उसे इस कारण तबाह कर रहे हैं। क्योंकि गौरीशंकर ने निर्वाचनों में मेरे नामांकन-पत्र पर हस्ताक्षर किये थे।'

'और लालाजी आपके विरुद्ध हैं क्या?'

'होने ही चाहिये। मैंने ही उनकी सम्पत्ति के अधिग्रहण के लिये अपना वोट दिया था।'

'उस समय तो मैंने भी आपके साथ ही मत दिया था।'

'भाई! तुम दामाद हो और कानूनगो साहब कहते थे कि तुम्हारी पत्नी एक सुन्दर लड़की है। इस कारण तुम्हारी बात दूसरी है।'

::5::

वीरेन्द्र समझ गया कि लक्ष्मी के पिता का इस पूर्ण घटना में गहरा हाथ है। अतः मुखिया को विदा कर वह धनपत के पास आकर पूछने लगा, 'बाबा! भूमि अपने नाम दाखिल-खारिज नहीं करायी थी?'

'करायी थी। मेरे पास इसकी फीस जमा करने की रसीद है।'

'तो ऐसा करो। दाखिल-खारिज के रजिस्टर की नकल के लिये प्रार्थना-पत्र दे दो।'

धनपतराय उसी समय तहसील में गया और नकल के लिये अर्ज़ी दे आया। भूमि के नम्बरों के दाखिल-खारिज के रजिस्टर में नकल मिली तो वह गौरीशंकर के नाम दर्ज लिखी मिली। इस पर वीरेन्द्र ने लाला को कहकर तहसीलदार के पास एक याचिका करवा दी कि अमुक भूमि का उसके नाम बयनामा है। उस बयनामे के नाम पर उसने दाखिल-खारिज के लिये तहसील में अर्ज़ी की है, परन्तु यह भूमि गलती से गौरीशंकर के नाम लिखी गयी है। यह सरकारी कागज़ात में अदला-बदली की जाँच की जाये।

तहसीलदार ने याचिका अस्वीकार कर दी। तहसीलदार का हुक्म था कि भूमि के लगान की वसूली गौरीशंकर के नाम से है। इस कारण जाँच की आवश्यकता अनुभव नहीं होती।

वीरेन्द्र के कहने पर नगर के डिप्टी-कमिश्नर के पास याचिका की गयी और वहाँ से 'रिकार्ड' मँगवाये गए। अगली पेशी पर कानूनगो गौरीशंकर की ओर से सरकारी रजिस्टर लेकर गवाह उपस्थित हुआ। उसके 'हलफिया' बयान हुए। इस पर दो प्रकार के परस्पर विरोधी सरकारी कागज़ों की जाँच होने लगी।

गाँव के पटवारी को उपस्थित किया गया। उसने बताया, 'इस भूमि का रजिस्टर भरने के समय मैंने कानूनगो साहब को कहा था सरकारी भूमि की बिक्री धनपतराय के नाम हुई है। उसकी रसीदें धनपतराय के पास उपस्थित हैं।

'परन्तु कानूनगो-साहब ने कहा कि जब लालाजी को आपत्ति होगी तो सरकार में अर्ज़ी करेंगे। तब 'समाजवादी स्टेट' के नियमोपनियम के अनुसार निश्चय कर दिया

जायेगा। जिसके पास पहले ही काफी भूमि है, उसके नाम और यह दर्ज नहीं कर सकता।'

'अतः मैंने अफसर की आज्ञा से हस्ताक्षर कर दिये।' मजिस्ट्रेट ने सरकारी रिकार्डों को बदलने के आरोपों में सन्तराम के वारण्ट निकाल दिये। सन्तराम से दस हजार रुपये की ज़मानत माँगी गयी। सन्तराम जमानत दे नहीं सका और वह हवालात में रोक लिया गया।

गाँव में तीन व्यक्ति थे जो इतनी बड़ी जमानत दे सकते थे। एक काहनचन्द, दूसरा सन्तराम की पत्नी मोहिनी और तीसरा सन्तराम की लड़की लक्ष्मी। ये तीनों गाँव में इतनी बड़ी ज़मानत के लिए अचल सम्पत्ति रखते थे।

गाँव का वकील देवेन्द्र मिश्र गौरीशंकर की ओर से मुकद्दमा लड़ रहा था। उसने मोहिनी से मिलकर कहा कि वह अपने पति की ज़ामिन बन जाये।

मोहिनी ने कहा, 'वकील साहब! आपने आने का कष्ट क्यों किया है? लक्ष्मी के पिता स्वयं क्यों नहीं आये?'

'मैं उनके मुख्त्यार के रूप में ही आया हूँ।'

'तो सुन लीजिये। मैं उनके और अपने बीच में किसी मुख्त्यार की आवश्यकता नहीं समझती।'

'परन्तु वह तो हवालात में हैं।'

'मैं जानती हूँ। आपको मुख्त्यारनामा देने के लिये हवालात में ही तो बुलाया है। वह मुझे भी वहाँ बुला सकते थे।'

देवेन्द्र मिश्र ने कहा, 'आपको अपने पति की सहायता करनी चाहिये। इस ज़मानत देने से आप मुकदमे में कोई पक्ष नहीं ले रहीं। आप तो केवल सन्तराम के अदालत में हाजिर होने की ज़ामिन बन रही हैं।'

'और यदि वह लापता हो गये और निश्चित दिन हाजिर नहीं हुए तो?'

'ऐसा वह नहीं कर सकेगा। उसकी नौकरी का भी तो प्रश्न है।'

'मैं उनकी जामिन नहीं बनूंगी।'

वकील लक्ष्मी के पास पहुंचा। लक्ष्मी ने तो स्पष्ट कह दिया कि उसकी कोई अचल सम्पत्ति नहीं है। इस कारण वह जामिन नहीं बन सकती। इसके उपरान्त देवेन्द्र स्टेट बैंक के मैनेजर मिस्टर धवन के पास पहुंचा। बैंक का मैनेजर स्वयं सरकारी कर्मचारी होने से जमानत नहीं दे सका, परन्तु उसने अपनी पत्नी सुशीला को कहा। वह सन्तराम की ज़ामिन बन गयी।

राज्य में समाजवाद को प्रगति देने के लिये एक मन्त्री नियुक्त था। जब सन्तराम ज़मानत पर छूटकर आया तो देवेन्द्र मिश्र उसे लेकर मन्त्री के पास पहुँचा। वहाँ सन्तराम ने यह कहा, 'मैंने रजिस्टर में अदला-बदली की है, परन्तु इसे समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार ही किया है।'

'धनपतराय के पास दस एकड़ और भी भूमि है। अतः उससे यह अन्न की कमी नहीं। उसके दो एकड़ भूमि में साक-भाजी लगी है। इससे उसको पर्याप्त आय हो रही है। अतः एक गरीब किसान की सहायता के लिये यह थोड़ी-सी हेरा-फेरी की है। यह क्षम्य होनी चाहिये।'

मन्त्री ने कहा, 'बहुत नालायक हो तुम! यह काम तुम्हारा नहीं था। गौरीशंकर को तुम्हारे पास नहीं, वरन् इस सरकारी विभाग के पास आना चाहिये था। यह तुम नहीं कर सकते थे।'

'परन्तु हजूर! यह तो हो गया है। अब बताइये, मैं क्या करूँ?'

'गाँव में कितने लोग हैं जिनके पास दस एकड़ भूमि है?'

'कुछ हैं, परन्तु उनकी गिनती अँगुलियों पर की जा सकती है।'

मन्त्री साहब के पास सिफारिश के लिये देवेन्द्र मिश्र का एक सम्बन्धी था जो मन्त्री साहब के दरबार में प्रायः जाया करता था। इस कारण मन्त्री ने सन्तराम को आश्वासन दिया कि मुकद्दमे की पेशी से पहले कुछ करने का यत्न किया जायेगा।

यही हुआ। तारीख के दिन मजिस्ट्रेट घर से ही नहीं आया और उस दिन उपस्थित होने वाले सब मुकद्दमों की तारीख बदल दी गयी और हुक्म हो गया कि उनकी अगली तारीख बाद में सूचित कर दी जायेगी।

धनपतराय के मुकद्दमे की तारीख अभी घोषित नहीं की गयी थी कि नयी बुवाई के दिन आ गये और गौरीशंकर ने भूमि पर काम करने की स्वीकृति माँगी तो अदालत से वह मिल गयी।

धनपतराय ने कई याचिकाएँ की कि उसके मुकद्दमे की तारीख दी जाये, परन्तु मजिस्ट्रेट के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। धनपतराय ने ज़िला-कचहरी में जिला-हाकिम के पास भी अर्ज़ी की और उस अर्ज़ी की सुनवायी पर धनपतराय के बयान हुए। उन बयानों पर पूछा जाने लगा, 'आपके पास इस भूमि को खरीदने के लिये रुपया कहाँ से आया था?'

'मेरी सम्पत्ति का अधिग्रहण किया गया था और उसके प्रतिकार में मेरी कई लाख की सम्पत्ति का प्रतिकार छः सहस्त्र रुपया देना स्वीकार किया गया था। उसकी

अभी तक पाँच-पाँच सौ रुपये की दस किस्तें मिली हैं। उन किस्तों से ही मैंने दो सहस्त्र रुपये की दस एकड़ भूमि सरकार से ही खरीदी थी। उसमें से पाँच एकड़ भूमि का झगड़ा है। मेरे एक कर्मचारी ने उस पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया है और उस पर हुई फसल को बेचकर रकम खा गया है।'

'यह तो मुकद्दमा है। इसका निर्णय तो गाँव का मजिस्ट्रेट करेगा। वह मजिस्ट्रेट शासकीय मजिस्ट्रेट नहीं। वह न्यायाधिकरण के अधीन है। इसी कारण उसके विषय में न्याय-पालिका में याचिका करनी चाहिये।'

काहन और वीरेन्द्र को एक अन्य बात सूझी। दोनों प्रायः नित्य सायंकाल मिला करते थे। एक दिन काहन ने वीरेन्द्र से कहा, 'पिताजी के मस्तिष्क पर गौरीशंकर के मुकद्दमे का भारी सदमा पहुँचा है और वह कभी-कभी बे-सिर-पैर की बातें करने लगते हैं।'

वीरेन्द्र का क्षत्रिय-स्वभाव उभर रहा था। उसने कह दिया, 'यह तो लूट मच रही है।'

'हां, वीरजी! और इस लूट की समाजवाद की भाषा में गौण रूप में स्वीकृति है। बात यह हुई है कि मजिस्ट्रेट एक समाजवादी को प्रगति देने वाले मन्त्री के आदेश का विरोध नहीं कर सकता। यह हाई कोर्ट का निश्चय हो चुका है कि सब कानूनों का समाजवाद की परिभाषा के अनुसार अर्थ लगाना चाहिये। इस अर्थ लगाने के लिये ही समाजवादी मन्त्री की नियुक्ति है।'

'तो यह समाजवादी कानून है कि सरकार से भूमि मोल ले धनपतराय, और वह नाम कर दी जाये गौरीशंकर के। इसलिए कि गौरीशंकर के पास भूमि नहीं है।'

'भैया! बाबा के मुकद्दमे में यही हो रहा है।'

'कल पिताजी कह रहे थे कि वह अपने जीवन-काल में ही सब सम्पत्ति का बँटवारा कर देना चाहते हैं। उनका कहना था कि इस सम्पत्ति का बोझा उनका मस्तिष्क अब सहन नहीं कर सकता।'

'यह तो कर ही देना चाहिए। बाबा को अब सब काम करना छोड़कर भगवद्-भजन करना चाहिये।'

'ठीक है। मैं उनसे कहने वाला हूँ कि यह सब भूमि वीरेन्द्रजी के नाम कर दें।'

'यह गौरीशंकर वाली भी?'

'हाँ, सब। लक्ष्मी के नाम होगी तो वीरेन्द्रजी इसका प्रबन्ध कर लेंगे।' काहन ने यह कहा और मुस्कराते हुए वीरेन्द्र का मुख देखने लगा।

'मुस्करा किसलिये रहे हो, भैया?'

'इसलिये कि यह भूमि तुमको मिल गयी तो फिर पितरों के श्राद्ध के रूप में भूमि असुरों से छुड़ानी पड़ेगी।'

'मुकद्दमा करके?'

'जिस देश में कानून के अर्थ बदल रहे हैं उसमें मुकद्दमा और अदालत के भी अर्थ बदल गये समझने चाहिये।'

'क्या मतलब है, भैया?'

'अदालत अब सरकार द्वारा नियुक्त नहीं। कारण यह कि सरकार स्वयं एक पक्ष हो गयी है। अतः एक पक्ष द्वारा नियुक्त अदालत नहीं रह सकती। हमें अब किसी अन्य अदालत का द्वार खटखटाना चाहिए।'

वीरेन्द्र गम्भीर विचार में मग्न हो मौन रहा। वह काहनचन्द का अभिप्राय जान गया था। अर्थात् जब राजा ही प्रतिपक्षी हो तो वह न्यायकर्ता नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में परमात्मा ही सहायक हो सकता है और उसकी ही अदालत में चाराजोई करनी चाहिये।

परमात्मा क्या आदेश देगा और उस आदेश का पालन कराने के लिये किसको नियुक्त करेगा, विचारणीय होगा।

::6::

यह सत्य था कि धनपतराय समझ नहीं पा रहा था कि वह अब क्या करे? उसके मन पर गौरीशंकर वाले मामले का बहुत गम्भीर प्रभाव पड़ा था और वह रात को सोया-सोया उठ लाठी ले किसी काल्पनिक चोर को मारने दौड़ पड़ता था। सुखिया इससे बहुत परेशान थी।

जिस दिन काहनचन्द ने वीरेन्द्र से बाबा के सम्पत्ति को बाँट देने के विचार की बात बतायी थी, उसी सायं वह अपनी दुकान बन्द कर घर पहुँचा तो स्टेट बैंक का मैनेजर बाबा से बातचीत करने आया हुआ था। काहनचन्द को मिस्टर धवन की गाड़ी द्वार पर खड़ी देख विस्मय हुआ था।

घर के भीतर बैठकघर में मैनेजर साहब को बैठा देख पूछने लगा, 'धवन

साहब! कैसे आना हुआ है?'

'काहनचन्द! एक प्रस्ताव लेकर आया हूँ।'

'आज्ञा करिये?'

'अन्न-अनाज की दुकान के लिये 'औडिटर' का बहुत ही कड़ा 'नोट' आया है।'

'क्या 'नोट' आया है?'

'यही की परिरक्षक ने वीरेन्द्र कुमार के दुकान छोड़ जाने पर क्यों अन्न-अनाज की नीलामी नहीं की और एक क्लर्क के मूल्यांकन पर वीरेन्द्रजी को किसलिये तुरन्त धन दे दिया था? इस घटना को अब एक वर्ष होने जा रहा है। किसलिये अभी तक उसके माल को निकाल कर बेचा नहीं है?'

'यही तो मैं अभी वीरेन्द्रजी से कह रहा था कि वह सरकारी काम कितने अनभिज्ञ और अयोग्यों के हाथ में चला गया है कि अन्न-अनाज की दुकान को भी एक मशीनरी की दुकान समझ रहे हैं। एक वर्ष में तो बीस हजार का माल दो-तीन सौ से अधिक दाम का नहीं होगा।

'दुकान की असफल नीलामी के उपरान्त भी तो कुछ कार्यवाही की गयी। दुकान की बोली देने कोई आया ही नहीं था और मैंने बीस रुपये महीना देने का प्रस्ताव किया था। उसके अतिरिक्त कुछ आपकी नज़र-न्याज़ के लिये भी था, परन्तु मेरे प्रस्ताव का कुछ प्रतिकार नहीं हुआ। अब बताइये, आप क्या चाहते हैं?'

धवन साहब ने आँखें मूंद अपने कथन को सँयत भाषा में कहा, 'सरकारी कामों में यह 'औडिटर' की टीका-टिप्पणी अति भयंकर बात है। इससे बचने का ही एक उपाय विचार कर उसमें आपका सहयोग लेने आया हूँ।'

'फरमाइये?'

'यही कि आप बीस रुपये मासिक के स्थान दुकान का मूल्य बीस हजार एक ही बार देना स्वीकार कर लें तो हमारा काम बन जायेगा।'

'अर्थात् अब बीस रुपये मासिक न देकर एक ही बार आपको बीस हजार रुपया दे दूं।'

'नहीं, यह बात नहीं। आप तो वही कुछ देंगे जो पहले ही दे रहे हैं। यह तो सरकारी खाना-पूरी करने के लिये है। इस प्रकार अपने पर निष्क्रियता का लांछन निःशेष कर सकेंगे।'

'और यह रुपया?'

'उसके लिये आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं प्रबन्ध कर दूँगा।'

'तो धवन साहब! ऐसा करिये, मेरे नाम एक रसीद बीस सहस्त्र रुपया अग्रिम प्राप्त की जारी कर दें तो मैं अपनी याचिका में संशोधन कर देता हूँ।'

'यही करने तो आया हूँ।' इतना कह धवन ने अपने 'ब्रीफ केस' में से एक बैंक की बीस सहस्त्र रुपये की रसीद उससे छः मास पूर्व की देते हुए कहा, 'अब आप इस पत्र पर हस्ताक्षर कर दीजिये।'

घवन साहब ने एक हिन्दी में टाईप किया हुआ पत्र सामने रख दिया। पत्र में लिखा हुआ था-

'बाज़ार में सरकारी अन्न की दुकान जो मेरे पिता लाला धनपतराय से अधिगृहीत की गयी थी, की नीलामी हुई थी। उस दुकान की बोली नहीं हो सकी।

'मैं समझता हूँ कि व्यापार से अनभिज्ञ लोगों ने दुकान लेनी पसन्द नहीं की। मैं दुकान के विषय में जानता हूँ और उस दुकान तथा उसमें के माल का मूल्य बीस सहत्र लगाता हूँ। यदि स्वीकृति दे दी जाये तो मैं इस दुकान को निजी क्षेत्र में चलाने के लिये लेना चाहूँगा।'

काहनचन्द ने एक क्षण तक विचार किया और उस प्रस्ताव-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये।

इसे धवन साहब ने अपने 'ब्रीफ केस' में रखा और एक पत्र अन्य निकाल, जो छः सात पूर्व की तारीख का था, काहनचन्द के हाथ में देकर कहा, 'यह आज्ञा है और तुम कल से इस दुकान पर अधिकार कर इसको चालू कर सकते हो।'

'तुम बीस रुपये महीने के मेरे देनदार रहे। वह तुम प्रति मास देते रहना और दुकान एक-दो दिन में चालू हो जानी चाहिये।'

काहन ने कह दिया, 'यह दो सौ चालीस रुपया एक वर्ष का भाड़ा, मैं कल पहुंचा दूँगा और दुकान की सफाई कल आरम्भ हो जायेगी। एक सप्ताह में दुकान पर बिक्री आरम्भ हो जायेगी।'

धवन गया तो धनपतराय ने जो अभी तक चुपचाप बैठा सम्पूर्ण वार्तालाप सुन और समझ रहा था, लड़के से पूछ लिया, 'काहन! तुम भी इन बेईमानों के टोले में सम्मिलित हो गये हो?'

'नहीं बाबा! मैंने बेईमानी नहीं की। मैंने दुकान का मूल्य एक वर्ष के लिये दो सौ चालीस देना स्वीकार किया है। वही दूँगा। रही लिखत-पढ़त की बात। वह इन भले लोगों का दिन-रात का काम है। हाँ, मैं इस पूर्ण छलना को जानते हुए भी इनकी

मुखबरी नहीं कर रहा।'

'मुखबरी भी कर दूं, यदि मुझे विश्वास हो कि उसका कुछ परिणाम निकलेगा।'

'देख लो। मुझे तो समझ आया है कि तुम भी इस पाप की नौका पर सवार हो गये हो।'

'वह तो हम सब उस दिन से ही हैं जिस दिन से हमने इन अज्ञानी और धर्म-कर्म-विहीन लोगों के स्वर-में-स्वर मिलाया था। पूर्ण देश इनको नेता मान इनकी पापमय नौका में ही तो सवार हुआ था। बाबा, इस नौका को छोड़ कहीं जा भी तो नहीं सकते। यह बहुत ही गहरे जल में जा पहुंची है और इससे कूदकर बाहर जाने से सागर में डूब जाने का भय है।'

धनपतराय पागल नहीं हुआ था। हाँ, उसमें वह व्यवसायात्मक बुद्धि नहीं रही थी जो दो वर्ष पहले थी। वह काहन की बात को समझ रहा था। उसने आंख मूंद एक मिनट तक मौन रह कह दिया, 'हाँ, भारत छोड कहाँ जायें? अन्य कौन सा देश है जहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये अवसर है। एक-से-एक अधिक बेईमानों से भरा पड़ा है।'

'पिताजी!' काहन ने कहा, 'मेरी सम्मति है कि आप व्यवसाय की बातों को छोड़ प्रभु में ध्यान लगायें। जमाना बहुत गन्दा हो रहा है। आप इससे अलिप्त रहते हुए समाधिस्थ हो जायें।'

'हाँ। यह तो कभी-कभी विचार करता हूँ कि इस संसार को ही छोड़ जाऊँ। परन्तु अभी भी कुछ-एक की सहायता और पथ-प्रदर्शन करता रहता हूँ। इससे चित्त को शान्ति मिलती है।'

'अच्छा, ऐसा करो। एक कागज़ लो और उस पर मेरा इच्छापत्र लिख लो। और उसे मेरे जीवित रहते पूरा कर दो।'

'पिताजी! कल कर दूँगा। मिश्र को कहा था कि वह एक दिन आकर सब आँकड़े लिख ले जाये और फिर उसे कानूनी रूप दे दे।'

'नहीं काहन! उस बेईमान के बच्चे को मत बुलाना। मैं उसका मुख देखना नहीं चाहता। जानते हो, वह कितना सफेद झूठ बोल सकता है? एक दिन वह लक्ष्मी का वकील बन उसका प्रतिनिधि बन काम कर रहा था और कुछ दिन उपरान्त वह मजिस्ट्रेट के सामने कह रहा था कि वह लक्ष्मी को जानता नहीं।'

'काहन! एक दिन नगर चलो। वहाँ किसी अन्य और योग्य वकील से बात करेगे।'

'अच्छा, पिताजी! अब इस दुकान को ठीक करवा लूँ। फिर जिस दिन आप कहेंगे, चले चलेंगे।'

गाँव के लोग चकित रह गये जब काहन ने अन्न की सरकारी अधिगृहीत दुकान खुलवाकर उसका गला-सड़ा माल निकाल-निकाल कर गाँव के बाहर खाद के खेतों में डलवाना आरम्भ कर दिया। सब परिचित काहन से पूछते थे, 'यह दुकान किसने ली है?'

'भाई! यह पुनः हमारे ही पल्ले में पड़ी है।'

'क्या देना पड़ा है?'

'कुछ अधिक नहीं।'

'फिर भी कुछ तो दिया ही होगा?'

'केवल बीस हज़ार।'

'बीस हज़ार?' पूछने वाला मुख लम्बा कर कहता, 'सरकार ने लूट मचा रखी है।'

'परन्तु मास्टर साहब!' प्रश्न पूछने वाला स्कूल का एक हेड मास्टर जगदीश सहाय एम० ए०, एल० टी० था। जाति का कायस्थ और विचारों से समाजवादी था। पिछले पन्द्रह वर्ष से स्कूल में इस पद पर काम करते हुए गाँव की आधी से अधिक जनता से परिचित था। काहन ने मास्टर साहब की बेचैन हो रही आत्मा को सन्तोष देने के लिये कह दिया, 'यह दुकान ही हमारे परिवार की इस गाँव में मूल थी। पिताजी के पिता ने सबसे पहले यहीं आठ आना महीने भाड़े पर ली थी। उस समय यह एक छोटी-सी कोठरी थी और गाँव में बाज़ार नहीं बना था। इस दुकान से हमारी उन्नति हुई है। इस कारण पिताजी की भावनाएँ इस दुकान से सम्बन्धित हैं। यह उसी भावना के लिये हमने इतना मोल देना स्वीकार किया है। मैं तो बीस हज़ार दुकान की पगड़ी मात्र मानता हूँ।'

मास्टर जगदीश सहाय मुस्कराया और बिना शुभ-अशुभ कुछ भी कहे चल दिया। वह अभी दस पग ही गया था कि एक युवक जो सिर से नंगा था और पाँव में अत्यन्त घिस रहा जूता पहने था, मास्टरजी के साथ-साथ चलता हुआ पूछने लगा, 'मास्टरजी! क्या कह रहा था यह बुर्जुआ?'

जगदीश सहाय ने मुस्कराते हुए उत्तर देने के स्थान पूछ लिया, 'मकसूद! कहां रहे हो इतने दिन? और यह क्या सूरत बनायी है?'

जगदीश सहाय उसकी बुश-शर्ट की ओर देख रहा था जिस पर तीन-चार

स्थान पर पैबन्द लगे थे और जिसका रंग प्रायः बार-बार धुलने से उड़-सा गया था।

मकसूद अहमद ने मुस्कराते हुए कहा, 'मास्टरजी! आपके स्कूल में तो इम्तिहान बहुत मुश्किल होते थे। नवीं जमात में तीन बार फेल होकर छोड़ देवबन्द चला गया था। वहाँ अपने मजहबी मदरसा में दाखिल हो गया। वहाँ से 'हाफिज़' की डिग्री हासिल कर दिल्ली की एक मस्जिद में मुल्ला का काम करने लगा था। वहाँ एक भली औरत से निकाह पढ़ा लिया था। उसने आठ वर्ष में छः बच्चे पैदा कर दिये तो खाने-पीने की दिक्कत हो गयी थी।

'उधर बीवी बच्चे पैदा करती गयी और इधर ये बनिये अन्न महँगा करते गये। नतीजा यह हुआ है कि सब भूखे रहने लगे।

'मैं अब बीवी को बच्चों के साथ दिल्ली में ही छोड़ यहाँ भाग आया हूँ। यहाँ नाना के यहाँ रहता हूँ। रूखी-सूखी खाकर ठण्डा जल पी गुज़ारा करता हूँ।'

'पर तुमने परिवार नियोजन को क्यों नहीं इस्तेमाल किया?'

'वह मैं हर रोज़ मस्जिद के हर मैम्बर को इस्तेमाल करने के लिये मना करता था तो भला मैं खुद ही उसको कैसे इस्तेमाल करता?'

'अब काम-धन्धा क्या है?'

'अभी तो अपनी बीवी से छुपकर बैठा हूँ। कहीं वह यहाँ का पता पा गयी तो वह अपने आधे दर्जन बच्चों को लिये हुए यहाँ आ धमकेगी। तब मैं क्या करूँगा? यहाँ तो किसी भी मस्जिद में जगह खाली नहीं है। दिल्ली की मस्जिद में अजाँ देने के लिये कोई दूसरा मुकर्रिर हो चुका है।'

मास्टर जगदीश सहाय ने सुझाव उपस्थित कर दिया, 'कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो जाओ। कम-से-कम खाने-पीने की कमी नहीं रहेगी।'

'तो मास्टर साहब! यहाँ उस पार्टी का लीडर कौन है?'

'देवेन्द्रनाथ मिश्र वकील है। उससे मिल लो।'

'पर मास्टर साहब! यह बनिये का पूत दुकान पा गया है। यह तो गज़ब हो गया है।'

'और कोई लेता भी तो नहीं था। सरकार का इस पर बीस हजार रुपया लगा था।'

'बीस हज़ार? मास्टर साहब, मैंने तो सुना था कि सरकार ने यह अधिग्रहण की थी और लालाजी की तीन-चार लाख की सम्पत्ति का छः हज़ार रुपया दिया था।'

'हाँ। लेकिन जब एक बार सरकारी कागजात पर दाम बीस हजार लिखा गया तो यह बीस हज़ार की हो गयी। सरकार इतनी बड़ी जायदाद फोकट में तो देना नहीं चाहती थी। ऐसा मालूम होता है कि परिरक्षक ने इस मूर्ख के मन में बाप-दादाओं की तरक्की करने की जगह का जज़्बा पैदा कर सरकारी रुपया डूबता-डूबता बचा लिया है।'

'गाँव में यह अफवाह गरम हो रही है कि इस दुकान के किसी कोने में इनके बाबा का धन गड़ा रखा है। उसी के लोभ में इसने दुकान ली है।'

मास्टर हँस पड़ा। हँसते हुए बोला, 'मकसूद! मुझे मिलना। मैं तुम्हें कुछ और राज़ की बातें बताऊँगा।'

::7::

वीरेन्द्र और लक्ष्मी को भी विस्मय हुआ कि इस खस्ता हालत में भी दुकान काहन ने ले ली है। और जब यह पता चला कि काहन ने इसका बीस सहस्त्र रुपया दिया है तो वे अवाक् हो काहन का मुख देखते रह गये।

वीरेन्द्र नियमानुसार मध्याह्नोत्तर चाय के समय काहन की दुकान पर आया हुआ था और चाय पी जा रही थी। लक्ष्मी भी इस समय अपनी दुकान से उठकर चाचा की दुकान पर आ जाया करती थी और उनके साथ चाय पिया करती थी।

इस समय तक अन्न की दुकान खाली हो चुकी थी। दुकान का प्रायः सब माल निकलवा कर फिंकवा दिया गया था। दुकान का फर्नीचर दीमक चाट गयी थी। वह सब गाँव के बाहर ले जा ढेर कर फूँक डाला गया था और दुकान में लोबान, गुग्गुल इत्यादि सुगन्धित पदार्थ जला दुकान को बंद कर दिया गया था जिससे इसके सब कोनों और सूराखों में से दुर्गंध निकल जाए।

जब वीरेन्द्र दुकान पर आया तो आते ही पूछने लगा, 'भैया! मैं यह क्या सुन रहा हूँ?'

काहन ने मुस्कराते हुए कहा, 'यही न कि सरकार ने मुझे लूट लिया है?'

'हाँ। बीस हजार रुपये देकर यह दुकान तुमने ले ली है?'

'और माल एक कौड़ी का भी नहीं निकला। यही न? यह ठीक है, परन्तु पिताजी की भावना का प्रश्न था। वह समझते हैं कि इसी दुकान पर उनके बाबा

पहले-पहल आकर बैठे थे और इसी में से लाखों पैदा हुए। लाखों दान दिये और तीन पीढ़ियों के सुकृत इसी दुकान की बदौलत उपलब्ध हुए थे। उनका विचार था कि इसी में से पुनः परिवार का अभ्युदय होगा।'

'जब तक राज्य नहीं बदलता, यह तो हो नहीं सकेगा।'

'भैया!' काहनचन्द ने कह दिया, 'यह भी बदलेगा। परन्तु यह व्यापारियों का काम नहीं। यह क्षत्रियों का काम है।'

'परन्तु उनके मुख में लहू लग गया है। जो कुछ भी वे अपने राज्यान्तर्गत कर रहे हैं, छोड़ेंगे नहीं।' वीरेन्द्र का कथन था।

'हाँ, यह स्वाभाविक ही है। परन्तु जब अधिग्रहण किये व्यापार पर अनधिकारियों का अधिकार लेकर डूबने लगेंगे तो ये उस नौका से कूद पड़ेंगे। यदि तो उस समय नौका मँझधार में हुई तो ये अधिकारी उसमें डूब मरेंगे। कोई तैराक हुए तो तैर कर किनारे पर जा लगेंगे।

'और जब ये कूदेंगे तो नौका भी डूब जायेगी। कुछ तो खेने वाले भी इसे छोड़ भाग खड़े होंगे और उनके कूदने-फाँदने से नौका उलट भी सकती है।

'भैया वीरेन्द्र! यह इस समाज में रहने का फल होगा। यह देखने में आता है कि सूखी लकड़ियों के ढेर में एक-आध गीली लकड़ी भी जल जाती है। उसका जल सूखी लकड़ियों के जलने की गर्मी से भाप बन पहले उड़ता है और फिर वह भी सूखी लकड़ियों की भांति जलने लगती है।

'यही बात हमारी हो सकती है। इस पापमय जगत् में हमारे पुण्य भी निःशेष हो जायेंगे और हम भी इस गीली लकड़ी की भांति अग्नि में जलने लगेंगे।'

इस पर लक्ष्मी ने पूछ लिया, 'चाचाजी! कर्म-फल का क्या हुआ?'

'वे रहेंगे। परन्तु एक पापी समाज में रहना और उसके बने रहने में सहायक होना भी तो एक महान पाप है।'

काहन ने धवन के साथ हुए समझौते को बताया नहीं और वीरेन्द्र तथा लक्ष्मी विस्मय करते रहे कि बीस हजार सरकार को फोकट में दे दिया हैं। लक्ष्मी ने कहा, 'पर अब तो गाँव में और दुकानें भी हो गयी हैं और बिक्री बँट जायेगी।'

'मैं इस पर थोक व्यापार करूँगा।'

केवल मकसूद और जगदीश ही नहीं थे जो लाला काहनचन्द की उन्नति से ईर्ष्या कर रहे थे। कई अन्य भी थे जो धनपतराय के परिवार को गाँव के व्यापार पर छा रहा देख मन-ही-मन जल रहे थे।

मकसूद को अपने जैसा एक व्यक्ति और मिल गया। वह गौरीशंकर था। यद्यपि उसने धनपतराय के खेतों की फसल बेच बारह सहस्त्र रुपया प्राप्त कर लिया था और सरकार ने वह रुपया धनपतराय को दिलाया नहीं था, परन्तु धनपतराय की भूमि बोने पर 'इंजंक्शन' लगा हुआ था। वकील ने तो कहा था कि खेत बो लो और पटवारी के यहाँ लिखा दो कि भूमि परती पड़ी है। परन्तु पुलिस अदालत के 'इंजंक्शन' की विद्यमानता में गौरीशंकर को खेत में हल चलाने की स्वीकृति नहीं देती थी।

एक बार गौरीशंकर ने खेत में हल चलाया भी था और पुलिस ने पकड़ लिया था। पुलिस की मुट्ठी गरम करने पर ही छुटकारा हो पाया था। वैसे इस तरीके से वह हल भी चला सकता था, परन्तु थानेदार काहनचन्द से मासिक बीस रुपये रिश्वत के पाता था और वह यह नियमित आय छोड़ना नहीं चाहता था।

गौरीशंकर की मकसूद से भेंट देवेन्द्र मिश्र की बैठक में ही हुई थी। मकसूद सायंकाल वकील साहब की बैठक में पहुंचा तो गौरीशंकर वहाँ पहले ही पहुंचा हुआ था और लाला के विषय में ही बातचीत हो रही थी।

गौरीशंकर कह रहा था, 'मिश्रजी! गाँव में अभी भी एक बहुत बडी संख्या में लोग काहन के दुकान पा जाने से प्रसन्न हैं। वे कहते हैं कि लाला के दुकान पा जाने से पुनः बढ़िया चावल और गेहूँ उचित दाम पर मिल सकेंगे।'

'बात यह है कि पूँजी के बल पर लाला सब-कुछ कर सकता है। हमारे पास जमा-पूँजी तो है नहीं। इस कारण हम वह कुछ नहीं कर सकते।'

'क्या करना चाहिये?' गौरीशंकर का प्रश्न था।

'यह सब तो इनकी व्यापारिक छलना है। यहाँ का गेहूँ मद्रास भेजा जा रहा था। आन्ध्र का चावल यहाँ आ रहा था और यहाँ के चावल के भाव बिक रहा था। यह कैसे होता था, हमें समझ में नहीं आता था। इस पर भी लाला का खज़ाना भरता रहता था।'

'पर वकील साहब! थानेदार कहता है कि यदि बीस रुपये प्रति एकड़ मासिक उसे दूँतो वह मुझे खेत बोने व जोतने से मना नहीं करेगा।'

'पर मैं तो कहता हूँ कि इतना देंगे कहाँ से? एक सौ रुपया महीना तो बहुत अधिक है। मैंने एक दूसरी योजना बनायी थी।

'यही कि लाला के दूसरे खेतों पर से बलपूर्वक फसल काट लूँ?

'हाँ। मैं इसे समाजवादी उपाय मानता हूँ। सब-कुछ समाज की सम्पत्ति है और बहुत से लोग मिलकर जब काम करें तो यह समाज का काम होगा और वह आजकल

के काल में दण्डनीय नहीं है।'

गौरीशंकर को अभी कुछ-कुछ चोरी, डाकू की परिभाषा ज्ञात थी। इस कारण वह भय से काँप चुप रहा, परन्तु समीप बैठा मकसूद इस बात को समझ रहा था।

वह विचार कर रहा था कि युद्ध-काल में शत्रु की धन-सम्पदा को लूट लेना सवाब माना जाता है। इसी प्रकार एक धनी की सम्पत्ति को लूट लेना भी उचित हो सकता है? शर्त वकील साहब ने बता दी थी। वकील साहब के कहा था कि बहुत से लोग मिलकर जो कुछ भी करेंगे वह सामाजिक काम है और इस समाजवादी देश में दण्डनीय नहीं है।

मकसूद दिल्ली में देख आया था कि यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी मिलकर बसों को फूँक देते हैं और पकड़-धकड़ नहीं होती। विद्यार्थी कालेज की छत्त पर चढ़कर पत्थर और खाली बोतलें सड़क पर चलते लोगों पर बरसा देते हैं और नगर के बड़े-बड़े लोग विद्यार्थियों की माँग सुनने के लिये जाते हैं। उन्हें पकड़ने के लिये नहीं।

देवेन्द्र मिश्र की बात सुन ये सब बातें मकसूद के मन में दौड़ गयीं। उसने कहा, 'वकील साहब! मैं भी इसी किस्म की बात सोच रहा हूँ। गाँव के लाला को मैं बचपन से जानता हूँ। मैं तो भूखा मरता हूँ और वह सब-कुछ छिन जाने पर भी कवार गंदल के पेड़ की भाँति दिन-दुगुनी और रात-चौगुनी तरक्की करता दिखायी देता है।'

'फिर क्या इरादा है?'

'मैं तो सोचा करता हूँ कि एक दिन समाज खुद लाला धनपतराय के परिवार पर 'ऐक्शन' करे। मेरा खयाल है कि लालाजी का सब कुछ लूट कर आपस में बाँट लिया जाये।'

देवेन्द्र हँस पड़ा। उसने पूछ लिया, 'मकसूद मियाँ! तुमको ऐसी बातें करने के लिये किसने यहाँ भेजा है?'

'स्कूल के हेड मास्टर जगदीश सहाय ने बातों-ही-बातों में बताया था कि मेरे खयालात आपसे मिलते हैं। इसलिये मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ और यह दो मिनट में ही समझ गया हूँ कि मास्टर साहब का कियास दुरुस्त है।'

'क्या दुरुस्त है?'

'यही कि हम ज्यादा तादाद में मिलकर समाज को हमवार करने के लिये 'स्टीम रोलर' चला सकते हैं।'

'मैं समझता हूँ कि मास्टरजी ने तुम्हें गलत द्वार पर भेज दिया है। तुमको गाँव के मुखिया के पास जाना चाहिये। पण्डित रामावतार तुम्हारे खयाल का आदमी है।'

'उनको मैं जानता हूँ। यदि आपका ऐसा ही खयाल है कि वह आपसे कम डरपोक हैं तो मैं वहाँ भी जा सकता हूँ।'

'मेरी यही राय है। वह इस मामले में कुछ कर भी रहे हैं।'

यह थी प्रतिक्रिया गाँव के रहने वालों के एक अंश पर।

::8::

देवेंद्र मिश्र मकसूद की बात सुन कि वह धनपतराय की सम्पत्ति के लूटने के लिये गाँव के समाजवादियों को लेकर उसके मकान और खेतों पर धावा बोल देगा, भयभीत हो मकसूद को जाते देखता रह गया। वह तो गौरीशंकर की बात को भी पसन्द नहीं करता था, परंतु इसमें उसे एक सहस्त्र रुपया फीस मिली थी। इसके विपरीत मकसूद तो किसी मुकद्दमे की बात नहीं कर रहा था। वह तो सामूहिक कार्य को समाज का कार्य कहकर बिना मुकद्दमे के अधिकार कर लेना चाहता था और विरोध करने वालों की हत्या कर देने की धमकी भी दे गया था।

देवेन्द्र ने भी एक बहुत बड़ी कोठी गाँव में बनवायी थी। वह रहता तो था अपने पुराने मकान में। कोठी के लिये वह कोई किरायेदार ढूंढ रहा था। कोठी के टुकड़े-टुकड़े कर तो किराये पर लेने वाले कई आ चुके थे, परन्तु वह ऐसा करना नहीं चाहता था। इससे कोठी का मूल्य कम होने की सम्भावना थी। उसे भय लग गया था कि यदि मकसूद की बतायी सामूहिक कार्यवाही एक बार गाँव में चल गयी तो फिर यह लाला की सम्पत्ति तक ही सीमित नहीं रहेगी। अन्य की सम्पत्ति पर भी हाथ उठाया जा सकता है।

इस सम्भावना से भयभीत वह परेशानी अनुभव करने लगा था। आखिर उसे एक उपाय सूझा। वह उसी समय उठा और स्टेट बैंक के मनेजर मिस्टर धवन के घर जा पहुँचा। धवन बैंक से घर पहुँच चुका था और अपनी पत्नी के साथ बैठ चाय पी रहा था।

पत्नी ने अपने पति से विस्मय में पूछा था, 'मैंने सन्तराम कानूनगो की जमानत दे रखी है। यह कब तक चलेगी?'

धवन साहब ने मुस्कराते हुए कह दिया, 'मेरे विचार में मुकद्दमा तो 'फाईल' हो

चुका है।'

'क्या मतलब?'

'मतलब यह कि उसके मुकद्दमे की 'फाईल' मुकद्दमा समाप्त लिखकर दाखिल-दफ्तर कर दी गयी है।'

'कब हुआ था यह मुकद्दमा?'

'मुकद्दमा नहीं हुआ। इसी महकमे के मन्त्री की आज्ञा पर मुकद्दमा समाप्त कर दिया गया है।'

'तो ज़मीन का मालिक गौरीशंकर हो गया है?'

'हाँ। परन्तु यह अभी कार्य-रूप में नहीं आया। मेरा विचार है कि आगामी बुवाई के समय तक यह भी हो जायेगा।'

'परन्तु मेरे ज़मानत के कागज़ मुझे वापस मिल जाने चाहिये। मेरे नगर वाले मकान के कागज़ उनमें ही हैं।'

'वे तो अब मिल नहीं सकते। हाँ, रजिस्ट्रार के कार्यालय से मकान की मल्कीयत के कागज़ों की नकल मिल सकती है।'

'तो उसके लिये यत्न कर दीजिये।'

इस समय मैनेजर साहब के चपरासी ने बैठक के द्वार पर खड़े हो कह दिया, 'वकील मिश्राजी मिलने आये हैं।'

सुशीला ने कह दिया, 'उन्हें यहाँ बुला लाओ और उनके लिये भी एक प्याला मेज़ पर लगा दो।'

देवेन्द्र आया तो मेज़ पर बैठते ही अपनी बात कहने लगा, 'मैनेजर साहब! एक बहुत भयानक समाचार है।'

'क्या है?'

'गाँव में एक ज़बरदस्त नक्सलियों का 'सैल' बन गया है। वहाँ यह निश्चय हुआ है कि एक-दो दिन के भीतर बैंक पर धावा बोलकर सब नकदी लूट ली जाये और बैंक को आग लगा दी जाये।'

'सत्य?'

'हाँ, साहब! दिल्ली से एक मकसूद नाम का व्यक्ति गाँव में आया है और वह पंचायत के मुखिया रामावतार और सन्तराम कानूनगो से मिलकर यहाँ संगठन बना रहा है। मुझे तो यह भी सूचना मिली है कि एक सौ से अधिक लोग इनकी संस्था में

सम्मिलित भी हो चुके हैं। योजना यह है कि एक दिन शुगर मिल में हड़ताल करा दी जाये और फिर उस दिन जलूस निकाल कर बैंक पर धावा बोल दिया जाये।'

धवन के पाँव-तले से मिट्टी खिसकने लगी। उसने कहा, 'वकील साहब! कोई प्रमाण मिले तो मैं इसकी रोकथाम का यत्न करूं।'

'ऐसे कामों का प्रमाण देना अपना गला कटवाने के समान है। जो कुछ कलकत्ता की सड़कों पर सम्भव है, वह यहाँ गाँव में सम्भव क्यों नहीं?'

धवन ने वकील साहब को चाय पिलायी और उसे कह दिया, 'बिना किसी ठोस प्रमाण के मैं कोई कार्यवाही नहीं कर सकता।'

'तो न करिये। मैंने आपको समय पर सतर्क कर दिया है। अब आप जाने, आपका काम जाने।'

धवन ने गम्भीर भाव में कह दिया, 'रुपया सरकारी है। मैं किसी विश्वस्त प्रमाण के बिना इस प्रकार की रिपोर्ट अपने अधिकारियों को नहीं दे सकता।'

देवेन्द्र निराश लौट गया। परन्तु सुशीला ने कह दिया, 'आप इस वकील के बच्चे का नाम लेकर अपने चीफ मैनेजर को सूचना तो दे दीजिये। साथ ही कह दीजिये कि यह मुखबरी देवेन्द्र मिश्र लिखकर देने को तैयार नहीं।'

धवन उसी समय उठा और नगर में बैंक के चीफ एजेन्ट को फोन करने लगा। जव फोन मिला तो उसने देवेन्द्र की कही बात को नमक-मिर्च लगाकर बता दिया। चीफ एजेन्ट का प्रश्न था, 'कितना सामान्यतः नकद बैंक में रहता है?'

'आठ-दस लाख तक तो होता ही है।'

'बैंक में रक्षक कितने हैं?'

'एक बन्दूकची है।'

'पुलिस में रिपोर्ट कर दो।'

'कर देता हूँ। परन्तु आपकी हरकत में आये बिना पुलिस कुछ नहीं करेगी। पुलिस के काम में अधिग्रहण विभाग का मन्त्री हस्तक्षेप करता रहता है।'

नगर के मैनेजर ने कहा, 'रिपोर्ट तो अभी कर दो। इधर मैं भी यत्न करता हूँ।'

धवन साहब थाने में जा पहुँचे। थाने में जब रिपोर्ट लिखायी जाने लगी तो मुंशी ने कह दिया, 'मैनेजर साहब! चौधरी साहब से मिल लीजिये।'

धवन थानेदार के घर पर जा पहुंचा। वहाँ धनपतराय बैठा था। मैनेजर ने धनपतराय को देखा तो पूछ लिया, 'लालाजी! किस कारण यहाँ आना हुआ है?'

'एक रिपोर्ट लिखाने आया था। मुंशी ने कहा है कि चौधरी साहब से मिल लूँ। यह कह रहे हैं कि मन्त्री महोदय का मौखिक आदेश है कि ऐसी रिपोर्ट न लिखी जाये।'

'कैसी रिपोर्ट?'

'समाज के समाजवादी ऐक्शन की।'

'मैं भी इसी कार्य से यहाँ आया हूँ। बैंक के लूटे जाने की सूचना है।'

'कब तक?'

'यह मुझे मुखबर ने बताया नहीं।'

'तो रिपोर्ट नहीं लिखी जा सकती।'

'देखो, लिख लो। कच्चे कागज़ पर और मन करे तो पक्के रजिस्टर पर चढ़ा लेना और न मन आये तो फाड़ कर फेंक देना।'

थानेदार ने अपनी डेस्क में से एक कागज़ निकाला और जेब से कलम निकाल लिखना आरम्भ कर दिया। मैनेजर ने जैसी बात देवेन्द्र से सुनी थी बता दी।

थानेदार ने सब रिपोर्ट लिखी और अपनी डेस्क में रख कहा, 'और बताइये?'

'बस, मैं जा रहा हूँ। परन्तु यह याद रखना कि यदि रिपोर्ट दर्ज नहीं की तो नाकों-चने चबवा दूँगा। यह सरकारी माल का सवाल है। लाला धनपतराय के फैसले की बात नहीं है।'

'मैनेजर साहब। घटना घटने से पहले रिपोर्ट नहीं बनती।'

'घटना तो घटी है। न घटी होती तो मुझे यह सूचना कहाँ से मिलती? जब मैं सूचना देने वाले का नाम-धाम बता रहा हूँ तो यह घटना ही है।'

थानेदार ने रिपोर्ट रजिस्टर में तो दर्ज नहीं की, परन्तु मुंशी को बुलाकर दे दी और कह दिया, 'इसको अभी रखो। अफसरों से पूछकर बताऊँगा कि इसका क्या किया जाये?'

'और लालाजी की रिपोर्ट?'

'यह भी कच्चे कागज़ पर लिख लो और इसी प्रकार रख लो।'

::9::

थानेदार बेचारा तो कुछ कर नहीं सका, परन्तु बैंक के चीफ एजेन्ट मैनेजर ने हो-हल्ला किया और गाँव में पुलिस आयी तो मकसूद, गौरीशंकर, सन्तराम, रामावतार और शुगर मिल के मज़दूर यूनियन के मन्त्री मदारीलाल और लगभग पचास अन्य व्यक्तियों को पकड़ कर ले गयी।

अगले दिन समाचार-पत्रों में यह समाचार प्रकाशित हो गया कि स्टेट बैंक की एक शाखा को लूटने का एक महान् षड्यन्त्र पकड़ा गया है। राज्य में नक्सलियों की गतिविधियाँ उग्र हो गयी हैं। इत्यादि।

इन लोगों पर मुकद्दमा नहीं चलाया गया और समाजवाद के नियमानुसार इनको एक-एक वर्ष के लिए बन्दी बना भिन्न-भिन्न जेलों में भेज दिया गया।

धनपतराय को इस समाचार से सन्तोष तो हुआ, परन्तु प्रसन्नता नहीं हुई। सन्तोष इस कारण कि कुछ काल के लिये इन समाजवादियों की गतिविधियों पर रोकथाम लग गयी। इस पर भी वह प्रसन्न नहीं था। वह समझता था कि इन समाजवादियों पर भी समाजवादी न्याय ही हुआ है, जो अन्याय का सूचक ही है।

इससे वह अपनी मिश्रित भावनाओं में आन्दोलित दुनियादारी छोड़ संसार से विरक्त हो परमात्मा के भजन में लीन हो गया।

यही अवस्था थी जब बाबा को हँसते हुए देख, काहन के सबसे छोटे लड़के हंसराज ने बाबा से कहा था कि उसकी माँ कहती है कि उसका 'मिदाग' हिल गया है।

हंसराज तो चीनी लेने पिता की दुकान पर चला गया और धनपतराय ने वही भोंपू उठा लिया, जो हंसराज बाबा के पास तख्तपोश पर ही भूल गया था। धतपतराय भोंपू बजाने लगा- भूं-भूं-भूं-भूं।'

मालती ने समझा कि हंसराज चीनी लेने दुकान पर नहीं गया और बाबा के पास खड़ा भोंपू से खेल रहा है। इस कारण वह पुनः रसोई घर से निकल आयी और बाबा को भोंपू बजाता देख, पहले तो विस्मय में बाबा का मुख देखती रह गयी। फिर समीप आ बोली, 'पिताजी! यह क्या कर रहे हैं?'

'मैं समाजवाद की जय-जयकार मना रहा हूँ।' इतना कह धनपतराय ने भोंपू

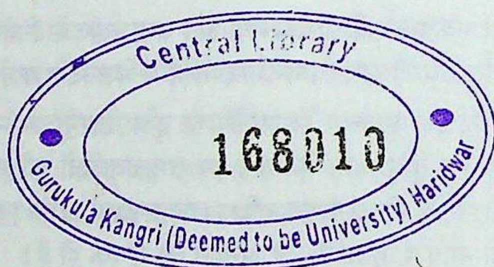
मालती को देते हुए कहा, 'तुम्हें यह जय-जयकार पसन्द नहीं न। अच्छा तो ले जाओ इसे। हंसराज की अलमारी में रख देना।'

बाबा हँसकर बोला, 'जाओ न! हंसराज कहता था कि तुम समझती हो कि मेरा दिमाग हिल गया है। किन्तु ऐसी बात नहीं मालती! यह ठीक है। अपने ठीक स्थान पर ही सही-सलामत रखा है। यह तो सिर के बल चल रहे संसार को मैं उलटा खड़ा हुआ दिखायी देता हूँ। वह समझते हैं कि भूमि उलट गयी है और मैं उस भूमि से सिर नीचे किये लटक रहा हूँ।

'परन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यह ऐसा नहीं है।'

मालती बाबा के व्यंग्य को समझ रही थी। वास्तव में वह भी उनको आकाश से लटक रहा नहीं मानती थी। वह भी संसार को ही सिर के बल चल रहा समझ रही थी।

(समाप्त)





6

6



गुरुदत्त (1894-1989) शिक्षा : एम. एस-सी.

8 दिसम्बर, 1894 को लाहौर (अब पाकिस्तान) में जन्मे, श्री गुरुदत्त हिन्दी साहित्य के एक दैदीप्यमान नक्षत्र थे। प्रथम उपन्यास 'स्वाधीनता के पथ पर' से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं। विज्ञान की पृष्ठभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये। वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है। साहित्य के माध्यम से वेद-ज्ञान को जन-जन तक पहुंचाने का उनका प्रयास निस्सन्देह सराहनीय रहा है।

वह उपन्यास-जगत के बेताज बादशाह थे। अपनी अनूठी साधना के बल पर उन्होंने लगभग दो सौ से अधिक उपन्यासों की रचना की और भारतीय संस्कृति का सरल एवं बोधगम्य भाषा में विवेचन किया। उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नही जा सकता।

श्री गुरुदत्त के साहित्य को पढ़कर भारत की कोटि-कोटि जनता ने सम्मान का जीवन जीना सीखा है। उनके सभी उपन्यासों के कथानक अत्यन्त रोचक, भाषा अत्यन्त सरल और उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं, अपितु जन-शिक्षा भी है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के साहित्य-संस्कृति संगठन 'यूनेस्को' के अनुसार श्री गुरुदत्त हिन्दी भाषा के सर्वाधिक पढ़े जाने वाले लेखक रहे।



ISBN: 978-93-91411-61-9



₹ 250